TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182115
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 M29M Accession No. H3174

Author मंझन

Title मधुमालती 1957.

This book should be returned on or before the date last marked below.

मंझन

कृत

मधुमालती

सम्पादक :

डा० शिवगोपाल मिश्र

एम.एस-सी., डी.फिल्., साहित्यरत्न

प्राध्यापक : प्रयाग विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी ।

प्रकाशक—
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बा० नं० ७०, ज्ञानवापी,
वाराणसी-१

संस्करण—
प्रथम—११०० नवम्बर, १९५७
मूल्य—
आठ रुपए

मुद्रक—
नयासंसार प्रेस
भदैनी,
वाराणसी

समर्पण

प्रेमाख्यानकों की खोज में

उन तमाम शोध छात्रों को,

जिन्हें भविष्य में और

कुछ कर दिखाना है।

प्रमुख हिन्दी प्रेमाख्यान के काव्य

(सूची)

	कृति	कृतिकार	कृतिकाल
१.	चन्दायन	मुल्लादाऊद	मन् १३७० ई० (७७२ हि०)
२.	सत्यवती	ईश्वरदास	सन् १५०१ ई० (सं १५५८ वि०)
३.	मृगावती	कुतुबन	सन् १५०१ ई० (९०९ हि०)
४.	पद्मावती	जायसी	सन् १५४० ई० (९४७ हि०)
५.	मधुमालती	मंझन	सन् १५४५ ई० (९५२ हि०)
६.	रूपमंजरी	नंददास	सन् १५५० ई० के लगभग
७.	माधवानल कामकंदला	आलम	सन् १५९१ ई० (९९२ हि०)
८.	चित्रावली	उसमान	सन् १६१३ ई०
९.	रसरतन	पुहकर	सन् १६१६ ई०
१०.	ज्ञानदीप	शेख नबी	सन् १६१९ ई०
११.	कनकावती	जान	सन् १६१८ ई०
१२.	पुहुप बरिखा	,,	सन् १६२१ ई०
१३.	कामलता	,,	सन् १६२२ ई०
१४.	रतनावली एवं	,,	
	बुद्धिसागर	,,	सन् १६३४ ई०
१५.	छीता	,,	सन् १६३६ ई०
१६.	रूपमंजरी	,,	सन् १६३७ ई०
१७.	कमलावती	,,	सन् १६३९ ई०
१८.	कलंदर	,,	सन् १६४५ ई०
१९.	नलदमयंती	,,	सन् १६५९ ई०
२०.	नलदमन	सूरदासलखनवी	सन् १६५७ ई०
२१.	मृगावती की कथा	मेघराजप्रधान	सन् १६६६ ई०
२२.	पुहुपावती	दुखहरनदास	सन् १६६९ ई०
२३.	हंसजवाहिर	कासिमशाह	सन् १७२१ ई०
२४.	इन्द्रावती	नूरमुहम्मद	सन् १७४४ ई०
२५.	विरहवारीश	बोधा	सन् १७५२–१७५८ ई०
२६.	प्रमरतन	फाजिलशाह	सन् १८४८ ई०

—:०:—

अनुक्रमणिका

भूमिका ... ... १ से ७० तक

(क) मधुमालती की प्रतियाँ १

(ख) मधुमालती नामक अन्य रचनायें ८

(ग) मधुमालती का उल्लेख ९

(घ) मधुमालती का रचना-काल ११

(ङ) मंझन का परिचय १७

१. नाम का निर्णय १७

२. जन्म-स्थानादि १९

३. मंझन के गुरु २१

४. मंझन की तपस्या एवं सिद्धि २१

५. मंझन की विनयशीलता २३

६. रचना का उद्देश्य २५

(च) रचना का मूल-स्रोत २६

(छ) मधुमालती की कथा २६

(ज) मधुमालती का आदि-अन्त २९

(झ) मधुमालती का विस्तार ३१

(ञ) मधुमालती में अन्तर्कथाओं का निर्देश ३२

(ट) मधुमालती के सम्बन्ध में कुछ साहित्यिक मान्यतायें ३३

१. मधुमालती का व्यापक प्रचार ३३

२. मधुमालती की शिल्प-विधि ३४

३. मंझन की अन्य सूफियों से पृथकता ३५

४. मंझन की तथाकथित काव्यगत दुर्बलतायें ३८

१. क. सावन वर्णन ३९

१. ख. भादों का वर्णन ३९

१. ग. कुँवार का वर्णन ३९

१. घ. कातिक वर्णन ४०

१. ङ पूस वर्णन ४०

१. च. माघ वर्णन ४०
१. छ. फागुन वर्णन ४१
१. ज. वैसाख वर्णन ४१
१. झ. जेठ वर्णन ३७
२. संयोग का कायिक पक्ष ३८

(ठ) मंझन के सन्देश ४२
(अ) संयम ४२
(ब) संवेदना ४३
(स) माता की शिक्षा, पुत्री के प्रति ४६
(द) प्रेम ४८
(य) विरह या वियोग ५२
(ङ) मंझन के काव्य की कुछ परम्परायें ५५
(ढ़) मधुमालती का यह पाठ ५१

२. मूल पाठ ... ... १८० पृ० तक
३. परिशिष्ट ... ... १ से ३४ तक

एक —शुद्धि पत्र १ से २
दो —संशोधित पाठ ३ से ७
तीन —कोष्ठकों में रखे शब्द ८
चार —पुनरावृत्ति ९
पाँच —कहावतें, मुहावरें, उपाख्याय या कहतूतें १०
छह —दोहों में अधिक या न्यून मात्रायें ११
सात —चौपाइयों में न्यूनाधिक मात्रायें १३
आठ —शब्दों पर विचार १, २, ३ १५ से १७
नव —व्याकरण—१. सर्वनाम, २. जनि, ज=न, ३. सेती, से,
४. क, का, के, कर, की १८ से २३
दस —१. क्रियाओं के लिंग विचार २४
२. क्रियाओं के विशिष्ट प्रयोग २५
३. 'जाब' क्रिया के विविध रूप ३०
४. 'होब' क्रिया के विविध रूप ३१ से ३४

—:०:—

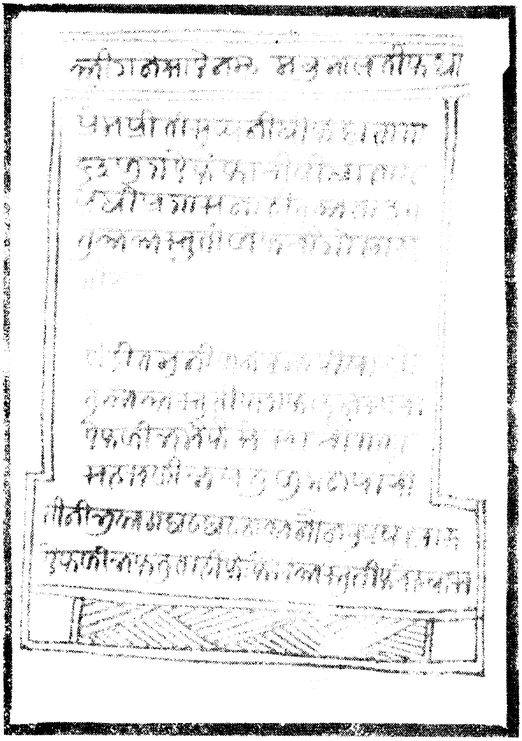

[illegible] में प्राप्त सबसे पुरानी हस्तलिखित प्रति का प्रथम पृष्ठ

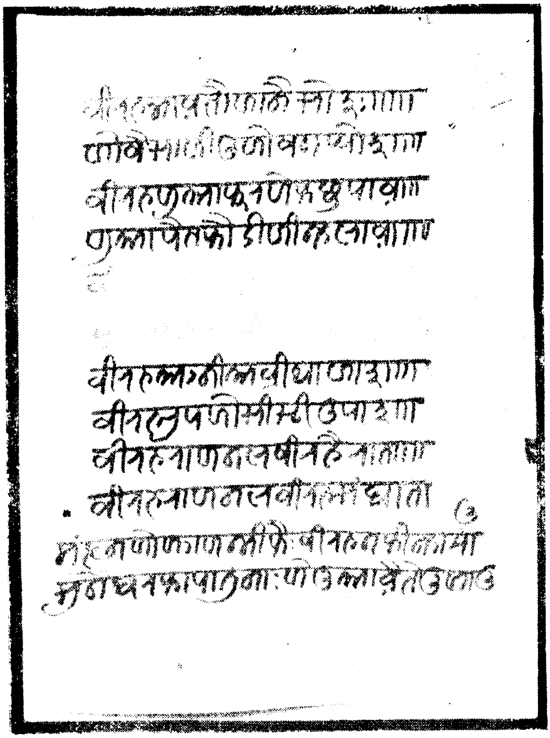

एकडला (फतहपुर) में प्राप्त 'मधुमालती' की हस्तलिखित-प्रति
का ११६ पत्र (पहिली तरफ)

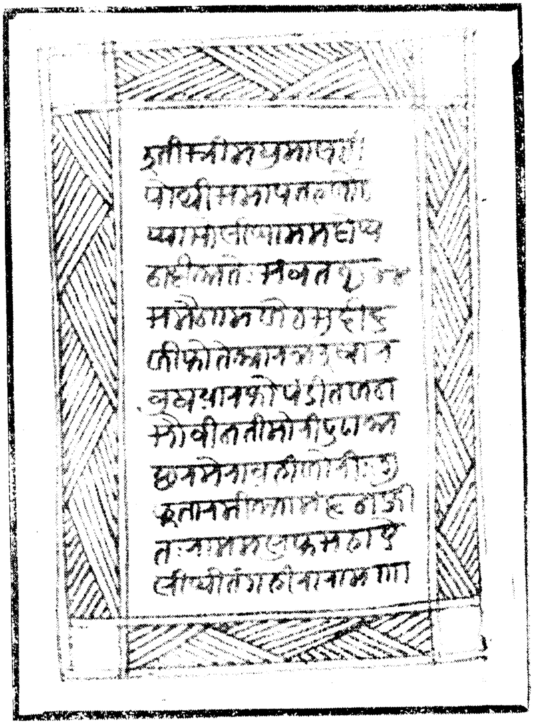

एकडला में प्राप्त 'मधु-मालती' की हस्तलिखित प्रति का अन्तिम पाठ

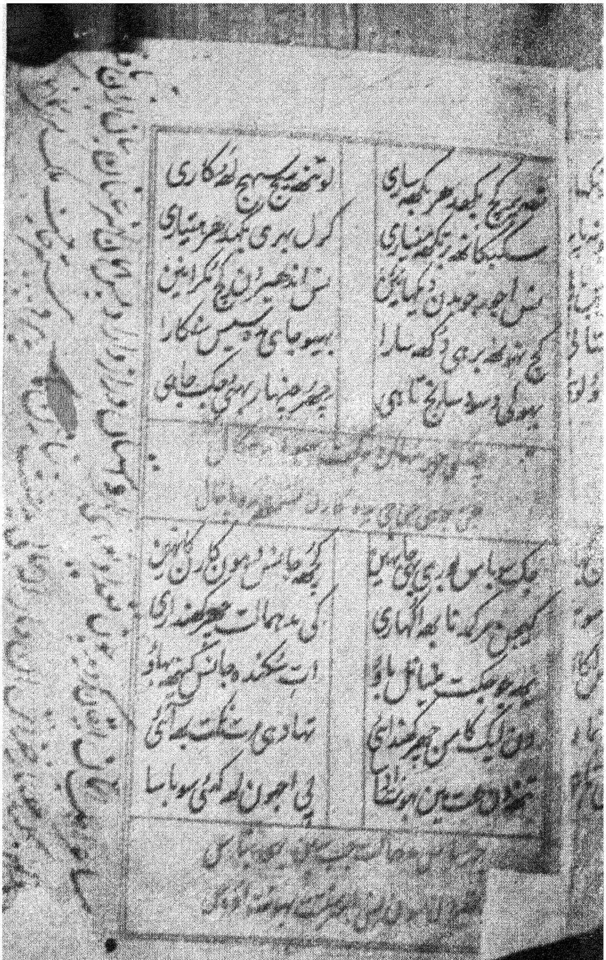

भारत-कला-भवन, बनारस की फारसी-प्रति
का १७ वाँ पत्र (दूसरी तरफ का)

भूमिका

(क) मधुमालती की प्रतियाँ

मंझन कृत मधुमालती का पहला परिचय सन् १६१२ ई० में स्व० श्री जगन्मोहन वर्मा ने दिया। इसके पश्चात् अनेकानेक सूचनायें प्रकाशित हुईं जिनके द्वारा प्राप्त प्रतियों के अथवा मंझन के विषय में सामग्री प्रस्तुत की गई। अब तक प्राप्त प्रतियों की सूचो निम्न है :—

(१) नागर प्रचारणी सभा में सुरक्षित दो प्रतियाँ[१]। ये दोनों प्रतियाँ अपूर्ण हैं। इनमें से—

(क) फारसी में लिखित प्रति के प्रारम्भ के १० और अन्त के १४ पत्र नहीं है।

(ख) देवनागरी में लिखित प्रति के प्रारम्भ के २७३ और मध्य के ८० दोहे नहीं हैं। इसका लिपि काल संवत् १६४४ वि० दिया हुआ है।

(२) पं० चन्द्रबली पांडे को[२] संवत् १६६५ में बनारस की गुदड़ी बाजार से एक प्रति मिली जिसमें १७-१३३ पत्र वर्तमान हैं और लिपि फारसी है। प्रति के आदि के २६ पत्रों में बाँयें पृष्ठ पर दो-दो पंक्तियाँ याददाश्त के रूप में और लिखी हुई हैं। इसके अन्त में ११ रबि उस्सानी सन् १०६६ हिजरी (सन् १६५८ ई०) अंकित है।

(३) श्री रायकृष्णदास जी की "मधुमालती" की खंडित प्रति[३] जो नागरी लिपि मे है और अब "भारतकला भवन" में सुरक्षित है। उसकी

१. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य—डाक्टर कमल कुलश्रेष्ठ पृ० ३३-३८ (सं० १६३५)

२. मंझन कृत मधुमालती—चन्द्रबली पांडे नागरी प्रचारिणी पत्रिका संवत १६६३ संख्या ४३ पृष्ठ २५५

३. आचार्य चन्द्रबली ने अपने लेख मे इसका उल्लेख किया है।

पुष्पिका का निम्न अंश उद्धृत किया जा रहा है जिसके आधार पर यह प्रति सं० १६४४ की लिखी सिद्ध होती है:—

"ईती स्री मधुमालती कथा सेप मंझन कृत समाप्त सं० १६४४ अगहन सुदी १४ वृहस्पति लिखितं माधोदासु कोहली कासी मध्ये पोथी माधोदास कोहली का।"

(४) रामपुर लाइब्रेरी की प्रति[४]। इसमें २४६ पृष्ठ हैं, प्रति पृष्ठ पर १५ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पृष्ठ स्वर्णालंकृत है। केवल प्रथम पृष्ठ गायब है। सम्पूर्ण प्रति फारसी लिपि में है। पुष्पिका से इसका प्रति-लिपि काल सम्राट् मुहम्मदशाह का शासन काल विदित होता है। इस प्रति का फारसी अनुवाद भी हुआ था। रामपुर लाइब्रेरी की प्रति के आधार पर ही नागरी प्रचारिणी पत्रिका में श्री सत्यजीवन वर्मा का एक लेख भी प्रकाशित हुआ था[५]।

उपरोक्त प्रतियों के प्राप्त-विवरणों से यह स्पष्ट है कि कोई भी प्रति सम्पूर्ण नहीं। हाँ, रामपुर लाइब्रेरी की प्रायः सम्पूर्ण है अतः उस पर अधिकाधिक विश्वास किया जा सकता है किन्तु दुख की बात है कि आज तक उपरोक्त प्रति का उपयोग हिन्दी विद्वानों ने अपने शोधग्रन्थों में नहीं किया और न कोई ऐसे प्रयास ही होते दिखाई पड़ते हैं जिनसे "मधुमालती" का कोई प्रामाणिक संस्करण प्रकाश में आ सके। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार की प्रवृत्तियों का बोलबाला है। एकबार तो आवाज उठेगी किन्तु थोड़े काल के अनन्तर वह इस प्रकार दब जावेगी कि उसका अस्तित्व ही खो जावेगा। यही हाल "मधुमालती" का हुआ। प्रेमाख्यानक काव्यों पर अनेकानेक प्रबन्ध लिखे जा रहे हैं और कुछ लिखे जा चुके हैं किन्तु किसी भी विद्वान ने 'मधुमालता' पर निश्चयात्मक सामग्री नहीं प्रस्तुत की। या तो जायसी के 'पद्मावत' के सामने मंझन कृत 'मधुमालती' को भुला ही दिया गया है या इतनी कम सामग्री प्रस्तुत हुई है कि वह शोध-कार्य पूर्ण नहीं माना जा सकता। बहुत से विद्वानों ने तो बिना देखे ही प्रतियों के विवरण अपने इतिहास ग्रन्थों में दे दिये हैं। प्रायः इसी दुर्बल नीति का सहारा हिन्दी-इतिहास के लेखन में प्रत्येक विद्वान ने लिया है जिसके फल-

४. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य—डा० कमलकुल श्रेष्ठ पृष्ठ ६३-३७

५. वही पृ० ६० (देखिये ना० प्र० प० सं० २०२ भाग ६ पृ० २८७

स्वरूप एक ही भूल अनेक बार पिष्टपेषित हुई है। इस सम्बन्ध में "हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह"[६] की एक पाद टिप्पणी का उद्धरण सामयिक होगा:—

"यदि किसी भी साहित्य के इतिहास लेखक ने 'माधवानल कामकंदला' को देखने का कष्ट उठाया होता तो इस भ्रांत का निराकरण कभी का हो गया होता। पर कटु सत्य यह है कि आज हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों के अध्ययन के फलस्वरूप नहीं लिखे गये हैं, बल्कि पिछले लेखकों की नकल के आधार पर। वास्तव में साहित्य के इतिहास लेखन से बढ़कर श्रमसापेक्ष और उत्तरदायित्व पूर्ण कोई दूसरा काम नहीं है, पर हिंदी में तो जितने साहित्य के स्रष्टा नहीं हैं उनसे अधिक इतिहास लेखक हो रहे हैं और नकल से बढ़कर आसान काम होता भी नहीं।"

इसी संबंध में एक और आवश्यक बात पर विचार होले। "हिन्दी प्रेम-काव्य संग्रह" के पृष्ठ १०८–१०९ में 'मधुमालती' से संबंधित निम्न अंश आया है:—

"मधुमालती की भी खंडित प्रति 'चित्रावली' के संपादक श्री जगमोहन वर्मा को मिली थी (सन् १९१२)। इसके आदि अंत के पन्ने गायब होने के कारण रचनाकाल तथा कृति का परिचय आदि ठीक न प्राप्त हो सका। कवि का ठीक नाम भी नहीं मालूम हो सका। 'मंझन' नाम मिलता है जो स्पष्टतः उपनाम सा जँचता है। कवि अपना परिचय आमतौर से आदि अंत के पन्नों में देते हैं और वही पन्ने गायब हैं। प्रतिलिपिकार ने एक जगह ११ रबी उस्सानी सन् १०६९ हिजरी की तारीख लिखी है। इस हिसाब से इसकी प्रतिलिपि सन् १६५३ ई० को ठहरती है तो फिर असल रचना काफी पहले की होगी। पर इस संबंध में ज्यादा से ज्यादा अटकल ही हो सकते हैं।"

उपरोक्त प्रति चन्द्रबली पाण्डेय की प्रति है, इसमे सन्देह नहीं। और जहां तक अनुमान लगता है, नागरी प्रचारिणी सभा की फारसी वाली प्रति और राय कृष्णदास वाली प्रति भी एक हैं। अतः ये चार प्रतियां केवल दो प्रतियों के रूप में बचती हैं। रामपुर वाली प्रति मिलाकर कुल तीन प्रतियां हो जाती हैं।

६. हिन्दी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह—सम्पादक गणेश प्रसाद द्विवेदी सं० १९५३ पृ० १७५।

(काशी नागरी प्रचारिणी सभा में हमें पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि हस्तलिखित ग्रंथागार में मधुमालती की कोई भी प्रति नहीं है। सम्भवतः सभा ने रिपोर्ट तैयार करते समय विवरण प्राप्त किये थे।)

पं० परशुराम चतुर्वेदी ने अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ "सूफी काव्य संग्रह" (पृ० ३२४) में उपरोक्त प्रतियों को आधार न बनाते हुये अन्य तीन प्रतियों का उल्लेख किया है। ये तीनों प्रतियां श्री गोपालचन्द्र जी (लखनऊ) के यहां से उन्हें प्राप्त हुई थीं। दुर्भाग्यवश चतुर्वेदी जी उक्त प्रतियों के विषय में अधिक जानकारी नहीं प्रस्तुत कर सके। किन्तु अन्तःसाक्ष्यों पर इतना कहा जा सकता है कि ये प्रतियां अपूर्ण एवं खंडित हैं। एकाध में अंतिम अंश पूर्ण प्रतीत होता है। प्रतियों के लिपि-काल का भी कोई संकेत नहीं है।

कुछ दिन हुये भ्रमनिवारणार्थ हम स्वतः 'भारतकला भवन' बनारस गये, जहाँ श्री रायकृष्णदास जी के सौजन्य से वहाँ सुरक्षित मधुमालती की ३ प्रतियाँ ही देखने को नहीं मिलीं वरन् उन प्रतियों के सम्बन्ध में और भी जानकारी प्राप्त हुई जिसके लिये हम उनके आभारी हैं।

राय साहब ने बताया कि लखनऊ के गोपालचन्द्र जी के पास जिन प्रतियों का उल्लेख परशुराम चौबे ने किया है वे भारतकला भवन की ही प्रतियां हैं। कुछ कालतक उनके कार्य के लिये लखनऊ भेज दी गई थीं। इन तीनों प्रतियों को हमने रात्रि भर ध्यानपूर्वक देखा और आवश्यक स्थलों को लिख भी लिया। उन प्रतियों का विवरण निम्न प्रकार है:—

(१) १६४४ की लिखी प्रति— यह नागरी अक्षरों में है। इसमें ५३५ अर्द्धालियों तक की संख्या मिलती हैं किन्तु बीच के पत्र नहीं है। २८३ वीं अर्द्धाली से प्रारम्भ होकर ३३८ तक एक क्रम से अर्द्धालियाँ वर्तमान हैं किन्तु पुनः बीच में ४१८ तक की संख्यायें लुप्त हैं। ४१६ से ५३५ संख्याकी अर्द्धालियाँ फिर मिलती हैं।

अब इस प्रति का एक नकल सं० १९९६ अगहन सुदी ११ शुक्रवार को बटुक प्रसाद कायस्थ के हाथा से राय साहब ने करवा ली है, जिसमें ७६ पत्र हैं। ज्ञात हो कि यह वही प्रति है जिसको नागरी प्रचारिणी सभा ने अपने ग्रन्थों की सूची में दिया है और जिसको हमने पिछले वर्णन में रायकृष्ण दास जी की मधुमालती की खंडित प्रति के नाम से अभिहित किया है।

(२) फारसी की खंडित प्रति— चंद्रबली पाण्डेय ने जिस प्रति का

विवरण प्रकाशित किया था। वही अब भारतकला भवन में सुरक्षित है। हमने इस प्रति का आद्यांत अवलोकन किया है, जिसके फलस्वरूप हमें इसमें निम्न आवश्यक बातें मिली हैं:—

१. इसमें १७ से १३३ तक की संख्या तक के पत्र विद्यमान हैं। प्रारम्भ में एक और पत्र जुटा है जिसमें क्रम संख्या नहीं पड़ी। उसका प्रारम्भ है:—

यह खोटी कुल नागिनकारी। त्रिभुवन............यह अर्द्धाली रामपुर वाली प्रति के हिन्दी-प्रतिलिपि के, जो भारत कला भवन में सुरक्षित है, १७वें पत्र की प्रारम्भिक अर्द्धाली है। बीच-बीच में कुछ पत्र गायब हैं जैसे २३ वें तथा ३० वें पत्र के बीच एक पत्र नहीं है। उसी तरह ३९ वें तथा ४३ वें पत्रों के बीच २ पत्र लुप्त हैं। प्रत्येक पत्र में ४ अर्द्धालियां हैं—दो अर्द्धाली प्रति पृष्ठ। दोहे लाल स्याही से लिखे हैं।

२. १७ वें पत्र से ३९ वें पत्र के एक ओर (बांयीं तरफ) बेंडी दो-दो पंक्तियाँ काली स्याही द्वारा फारसी में ही अंकित हैं किन्तु उनकी लिखावट मूल पाठ की लिखावट से सर्वथा भिन्न है।

३. प्रथम पत्र में "सो बसंत संसार न आवा.........." से प्रारम्भ होने वाली अर्द्धाली के पश्चात् निम्न अर्द्धाली है:—

कथा एक चित देउ पानी। सुनहु कान दे कहहुँ बखानी॥

किन्तु रामपुर वाली प्रति तथा एकउली की प्रति में इस अर्द्धाली के पूर्व और 'सो बसंत संसार न आवा' के पश्चात् निम्न अर्द्धाली आती है:—

सन् नव सै बावन जब भये। सुने पुरुप कुल परिहर गये।

बड़े आश्चर्यकी बात है कि इतनी प्राचीन हस्त लिपि में से "९५२ सन्" वाली अर्द्धाली गायब है। यह एक रहस्यमयी घटना है। बहुत कुछ सम्भव है कि प्रतिलिपि-कर्त्ता ने भूल से वह अर्द्धाली छोड़ दी हो; किन्तु अन्यत्र कहीं ऐसी भूल दृष्टिगोचर नहीं होती जिसके कारण मधुमालती का रचनाकाल(इस प्रति के आधार पर) पुनः संशयग्रस्त बन जाता है।

३. १७ वें पत्र के प्रथम पृष्ठ की प्रारम्भिक अर्द्धाली है—

"तेहि पर कच बिषधर बिषधारी,
सो तेहि सेज सहज लहकारी।

काम कमान धनुष कर लीन्हे,
बरस्यों तोर टूक टूक दुइ कीन्हें ।।"

यदि प्रथम पत्र इस पृष्ठ के पूर्व का होता तो उक्त अर्द्धाली के स्थान पर 'पंडित यह मुनि बिनती मोरी" से प्रारम्भ होने वाली अर्द्धाली होनी चाहिये थी। किन्तु वैसा नहीं है वरन् उक्त अर्द्धाली का पाठ रामपुर वाली प्रति की हिन्दी अनुलिपि का ३७ वां पत्र है जब कि प्रथम पत्र इसका १७ वां पत्र। अतः फारसीवाली प्रति का प्रथम पृष्ठ १७ वें पत्र के बहुत पूर्व कहीं बीच का पत्र है।

४—इस प्रति का अन्तिम पृष्ठ रामपुरवाली प्रति की हिन्दी अनुलिपि का २२० वाँ पत्र है या यों कहें कि इसमें २ अर्द्धालियाँ कम हैं।

५—उदाहरण के लिये १७ वें पत्र का एक फोटो दिया जा रहा है।

(३) रामपुरवाली प्रति की हिन्दी अनुलिपि रायसाहब ने बड़े ही यत्न से रामपुर की फारसीवाली प्रति का हिन्दी रूपान्तर सं० २००३ वि० आषाढ़ शुक्ल १० भौमवार को सथवा ग्राम निवासी बटुक प्रसाद के द्वारा कराकर अपने 'भारत कलाभवन' संग्रहालय में सुरक्षित रखा है। इसमें एक ओर लिखे गये २३७ पत्र हैं जिनमें क्रम संख्या पहले १ से १६ है किन्तु फिर एक से प्रारम्भ होकर २२१ तक है। इसमें कुल ५३६ दोहे (अर्द्धाली) हैं। प्रथम पृष्ठ का प्रारम्भ इस प्रकार है:—

एक अनेक भाव परमेसा, एक रूप कछेन यह भेसा।
तीन लोक जहँवँ लहि साईं, भोग के अनूप रूप गोसाईं।
करता करै जगत सब जाही, जस था जस रहे जस आही।
बाज ठाँव सबै जेहि ठाईं, निरगुन एक ओंकार गोसाईं।
गुप्त रूप सब ठाईं, बाज रूप यहै गोसाईं।

तिभुवन पूरा पूर की एक ज्योति सभ ठाँव।
जो जेहि अनवन मूरत मूरत अनवन नाँव॥

इस प्रति के १८ वें पत्र पर निम्न अंश है—

सन नव सै बावन जब भये, सुने पुरुष कुल पर हर गये।

पत्र ६८ में मंझन शब्द दो स्थानों पर आया है। पुनः पत्र में निम्न अर्द्धालियाँ हैं:—

१. कथा जगत जती कवि आई, ...

२. अमर न होत कोइ जग पारै, सो मरि जियै तेहि जम न मारै।.......

अन्तिम पंक्तिः—

जेहि छाजै सो सही सभ ठाँव, कीना कांत जेहि रहै जगह महं नाँव।

इति श्री मलिक मंझन कृत मधुमालती संपूर्ण।

इस अनुलिपि की विशेषता यह है कि स्थान स्थान पर पंक्तियों तथा शब्दों के स्थान रिक्त हैं जिन्हें अनुलिपि-कर्त्ता ने समझ न सकने के कारण उन्हें वैसे ही छोड़ दिया है। परशुराम चौबे ने अपनी कृति में जो मधुमालती के प्रसंग उद्धृत किये हैं वे निश्चित रूप से इसी प्रतिलिपि के हैं।

विषय है कि ४ जुलाई सन् १६५५ को ग्राम एकडला जनपद फतेहपुर में रावत ओ३म् प्रकाशसिंह के यहाँ हमें 'मधुमालती' की एक सम्पूर्ण प्रति कैथी अक्षरों में लिखी, प्राप्त हुई। वैसे हमने इस प्रति की प्राप्ति सूचना हिन्दी जगत को तभी दे दी थी किन्तु उस पर हमारे साहित्यिकों का विशेष ध्यान नहीं गया।

उक्त प्रति सं० १७४४ में प्रतिलिपि की गई थी जिसमें ६"×४½" आकारवाले २७५ पत्र हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर एक-एक अर्द्धाली है। अर्द्धाली में चौपाई की पंक्तियों को तोड़ करके १० पंक्तियों में कर दिया गया है। दोहे की दो-दो पंक्तियाँ हैं, अतः प्रति पृष्ठ पर १२ पंक्तियाँ हैं। हर पृष्ठ पर चौपाई की दो पंक्तियाँ लाल स्याही से लिखी हैं, शेष पंक्तियाँ काली स्याही से। अन्तिम पृष्ठ (पत्र २७५ की पीठ पर) पर निम्न पुष्पिका हैं—

"इति श्री मधुमालती पोथी समाप्त है जो संवत् १७४४ समै नाम जेठ सुदी दुजी को तैआर भई बार बुधवार को। पंड़ितजन सौं बिनती मोरी, टूटा अच्छर मेरवहिं जोरी। गुफतार मिआँ मंझन क्रितः राममलूक सहाय लिखितं गहिराम।"

यद्यपि यह प्रति श्री रायकृष्णदास जी की प्रति से १०० वर्ष पीछे लिखी गई है किन्तु इसकी विशिष्टता यह है कि इसमें सभी पत्र वर्तमान हैं। यही नहीं रामपुर लाइब्रेरी की प्रति में जो प्रथम पृष्ठ लुप्त है वह इसमें

है। दूसरी विशिष्टता यह है कि पुष्पिका में मंझन को "गुफतार मियाँ मंझन" लिखा है, जिससे मंझन मुसलमान-सूफी-कवि सिद्ध होते हैं। वैसे तो रायकृष्णदास की प्रति की पुष्पिका में भी मंझन को "शेखमंझन" लिखा गया है। जिससे उनका मुसलमान होना सिद्ध होता है!

तीसरी विशिष्टता यह है कि इस प्रति में वह भी अंश है जिसमें मंझन ने 'मधुमालती' का रचनाकाल दिया है।

चौथी विशिष्टता यह है कि पाठ के अन्तर्गत मंझन का नाम पाँच स्थलों पर आया है। इस प्रति की लिपि अत्यन्त स्वच्छ एवं सुपाठ्य है। साथ ही अब तक प्राप्त सभी प्रतियों से सम्पूर्ण होने के कारण विशेष महत्वपूर्ण।

(ख) "मधुमालती" नामक अन्य रचनायें

"मधुमालती" नाम की अनेक रचनायें देखने को मिलेंगी, किन्तु सर्व-प्रथम संस्कृत में 'मालतीमाधव' नामक नाटक की रचना भवभूति ने की। भव-भूति की ही परम्परा का अन्य लेखकों ने अनुकरण किया हो, ऐसी कोई बात नहीं। कालान्तर में "मालती-माधव" को उलटकर "मधुमालती" कर दिया गया। यही नहीं, चरित नायक मधु या माधव न होकर कुछ कथाओं में 'मनोहर' होने लगा और उसका उपनाम 'मधु' या 'माधव' रखा गया। हिन्दी काव्य साहित्य में मंझन की 'मधुमालती' के पूर्व चतुर्भुजदास कायस्थ की 'मधुमालती' का प्रचार मध्यभारत तथा मालवा में हो चुका था। अगरचन्द-नाहटा को इस ग्रंथ की ९ प्रतियों के देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिनमें सबसे प्राचीन प्रति सं० १७८९ की है।[1] सबसे प्राचीन प्रति सं० १७०७ की है जो हमें अकस्मात् प्राप्त हुई थी और जिसकी सूचना पं० हरिहरनिवास द्विवेदी (ग्वालियर) को हम बहुत पहले दे चुके हैं। वे चतुर्भुजदास की 'मधुमालती' का संपादन कर रहे हैं और यह पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित भी हो रही है। द्विवेदी

१. हिन्दुस्तानी पत्रिका जनवरी सन् १९३९। मधुमालती नामक दो रचनायें पृष्ठ ६५-६६

जी का मत है कि यह रचना १५ वीं शती की है । नाहटाजी ने उसी लेख में किसी अज्ञात कवि द्वारा लिखित "मधुमालतीनी कथा" की गुजराती प्रति का भी उल्लेख किया है । डा० माता प्रसाद गुप्त ने अपने एक लेख में[1] मधु-मालती के दो गुजराती संस्करणों का उल्लेख किया है किन्तु वे अब सर्वथा अप्राप्य हैं ।

हिन्दी साहित्य के सबसे पुराने इतिहास लेखक गार्सां दतासी ने सं० १८९६ तथा पुनः १९२७-२८ (द्वितीय संस्करण) में प्रकाशित अपने इतिहास ग्रंथ 'इस्त्वार दला लितरात्यर ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी" में लिखा है कि 'मधुमालती' के लेखक चतुर्भुजदास मिश्र हैं[3] और इसके नायक-नायिका वे ही हैं जो दखिनी के प्रसिद्ध कवि नुसरती के गुलशन-ए-इश्क के हैं ।[4]

मंझन की रचना का समय सं० १६०२ (हिजरी ९५२) है और नुसरती की रचना का समय सं० १७१४ या हिजरी १०८६ । अतः 'गुलशने इश्क' मधुमालती के बाद की रचना है । दोनों की कथाओं की तुलना करने पर ज्ञात होगा कि उन दोनों में कोई साम्य नहीं । हां, मधुकर और मालती नामों का सादृश्य है । इस प्रकार से मंझन के बाद भी विभिन्न भाषीय क्षेत्रों में "मधु-मालती" से प्रेरणा पाकर अनेक रचनायें होती रही हैं । ग्वालियरी के प्रसिद्ध प्रेमाख्यानककार कवि "जान" ने ७० से अधिक प्रेम-काव्य लिखे हैं, जिनमें से एक है—"मधुकर मालति" । केवल नामों के अतिरिक्त कथानकों में कोई भी साम्य नहीं मिलता । 'जान' की इस कृति का रचनाकाल सं० १६९१ है । (देखिए 'जान ग्रंथावली' (हस्तलिखित) हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग)

(ग) मधुमालती का उल्लेख

हिन्दी इतिहास लेखकों के अतिरिक्त 'मधुमालती' का उल्लेख

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका हीरक जयंती अंक सं० २०१० "चतुर्भुज दास की मधुमालती" पृ० १८७-१९२

३. द्वितीय संस्करण (सं० १९२७) पृ० ३८८

४. वही (सं० १९२८) जिल्द २ पृ० ४८५

विभिन्न कवियों द्वारा समय समय पर हुआ है। जायसी ने 'पद्मावत' में लिखा है:—

'साधा कुँवर मनोहर जोगू। मधुमालति कहँ कीन्ह वियोगू'[1]

बनारसी दास जैन ने अपनी आत्मकथा "अर्द्ध कथानक" में सं० १६६० की घटनाओं का उल्लेख करते हुये लिखा है:—

तब घर में बैठे रहैं जाहिं न हाट बजार
मधुमालति मिरगावति, पोथी दोइ उदार
ते बांचहिं रजनी समै, आवहि नर दस बीस।
गावैं अरु बातैं करहिं, नित उठ देहिं असीस॥[2]

दुखहरनदास की पुहुपावती (सं० १७२६) में भी एक प्रसंग आता है:—

जौ नहाइ आवहिं यहि ठाईं। होइ बात मधुमालति नाईं।

कविवर उसमान ने 'चित्रावली' की रचना हि० १०२२ या सन् १६१५ (सं० १६७२) में की। उसी में मधुमालती' का उल्लेख इस प्रकार से है[3]:—

मृगावती मुख रूप बसेरा, राजकुँअर भयो प्रेम अहेरा।
सिंघल पद्मावति भो रूपा, प्रेम कियो है चितउर भूपा॥
मधुमालति होइ रूप दिखावा, प्रेम मनोहर होइ तहँ आवा।

उपरोक्त उद्धरणों में से जायसी का संकेत मंझन की मधुमालती की ओर कदापि नहीं, क्योंकि 'पद्मावत' मधुमालती से ४ वर्ष पूर्व की रचना है। यह संकेत चतुर्भुजदास की भी मधुमालती की ओर नहीं, क्योंकि चतुर्भुजदास की रचना के नायक-नायिका कथा भर में कहीं वियुक्त वर्णित नहीं हुये और न नायक कहीं भी योग साधना करता है[4]। शेष तीनों उल्लेख मंझन

१. जायसी ग्रन्थावली - डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित पृ० २७६।
२. "अर्द्धकथा" दो० ३३५—३३६।
३. हिन्दी प्रेम गाथा काव्य संग्रह—संपादक गणेशप्रसाद द्विवेदी १६५३ पृ० १०६।
४. डा० माताप्रसाद गुप्त का लेख चतुर्भुजदास की मधुमालती। काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका हीरक जयंती अंक सं० २०१० पृ० १६१

कृत मधुमालती की ओर संकेत करते हैं। जायसी का उल्लेख यदि चतुर्भुजदास की मधुमालती के लिये नहीं है तो निश्चित रूप से कोई अन्य मधुमालती रही होगी जिसका पता अभी तक नहीं चल पाया। संभव है दखिनी में या ग्वालियरी में कोई इसी नाम की दूसरी रचना अत्यधिक प्रचलित रही हो, जिसकी ओर जायसी ने संकेत किया हो। इस प्रकार से 'मधुमालती' नामक रचनाओं की एक लम्बी परम्परा है और उसके सम्यक् अध्ययन की सामग्री अभी तक पूर्ण नहीं।

(घ) मधुमालती का रचनाकाल

प्रायः जितनी भी प्रतियाँ 'मधुमालती' की प्राप्त होती रहीं, अपूर्ण थीं, अतः प्रारम्भ मे उसका रचना-काल ठीक ठीक न ज्ञात हो सका। यही कारण है अनेक लेखों मे अटकल पच्चियों द्वारा 'मधुमालती' को 'पद्मावत' के पहले की रचना भी मान लिया गया था। सत्यजीवन वर्मा ने[1] अपने एक लेख में मंझन का काल सं० १५६६ से सं० १५९५ के बीच माना है, अतः इस काल के अन्तर्गत ही 'मधुमालती' की रचना होनी चाहिये। किन्तु ब्रजरत्नदास ने[2] इसका रचना काल सं० १६५० के आसपास माना है। ये दोनों ही काल वास्तविक रचना संवत् से पीछे या आगे हैं। अनेक प्रकार के अनुमान लगाते हुए आचार्य चन्द्रवली पाण्डे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि 'मधुमालती' 'पद्मावत' से पुरानी है।

ऐसे ही अनुमानों का सहारा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिया है। उनके "हिन्दी साहित्य का इतिहास" का निम्नांकित अंश प्रस्तुत किया जा रहा है:—

"मंझन की रचना का यद्यपि ठीक-ठीक संवत् नहीं ज्ञात हो सका है

---

१. आख्यानक काव्य—श्री सत्यजीवन वर्मा। नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० १६-२ भाग ६ पृ० २८७

२. हिन्दुस्तानी अप्रैल १९३८ पृ० २१२

पर यह निस्संदेह है कि इसकी रचना विक्रम संवत् १५५० और १५९५ (पद्मावत का रचना काल) के बीच में और बहुत सम्भव है मृगावती के कुछ पीछे हुई। इस शैली के सबसे प्रसिद्ध और लोक प्रिय ग्रंथ 'पद्मावत' में जायसी ने अपने पूर्व के बने हुए इस प्रकार के काव्यों का संक्षेप में उल्लेख किया है—

विक्रम धंसा प्रेम के बारा, सपनावति कहं गयउ पतारा।
मधू पाछ मुगधावती लागी, गगन पूर होइगा बैरागी।
राजकुँअर कंचन पुर गयऊ, मिरगावती कहं जोगी भयऊ।
साधे कुंवर खंडावति जोगू, मधुमालति कर कीन्ह वियोगू।
प्रेमावती कर सुरबर साधा, उषा लागि अनरुध बर बाँधा।

इन पद्यों में जायसी के पहले के चार काव्यों का उल्लेख है—मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती। इनमें से मृगावती और मधुमालती का पता चल गया है, शेष दो अभी नहीं मिले हैं। जिस क्रम से ये नाम आये हैं वह यदि रचना काल के क्रम के अनुसार माना जाय तो मधुमालती की रचना कुतुबन की मृगावती के पीछे की ठहरती है।"

"···· उसमान की चित्रावली" में मधुमालती का जो उल्लेख है उसमें भी कुँअर का नाम "मनोहर" ही है—

मधुमालति होइ रूप दिखावा, प्रेम मनोहर होइ तहं आवा।

यही नाम मधुमालती की उपलब्ध प्रतियों में भी पाया जाता है।

"पद्मावत के पहले मधुमालती की बहुत अधिक प्रसिद्ध थी। जैन कवि बनारसीदास ने अपने आत्म चरित मे संवत् १६६० के आसपास की अपनी इश्कबाजीवाली जीवनचर्या का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उस समय मैं हाट बाजार में जाना छोड़, घर में पड़े-पड़े "मृगावती" और मधुमालती नाम की पोथियाँ पढ़ा करता था—

तब घर में बैठे रहैं, नाहिंन हाट-बजार।
मधुमालती, मृगावती, पोथी दोय उचार॥

इसके उपरान्त दक्षिण के शायर नसरती ने भी (सं० १७००) "मधु-मालती" के आधार पर दक्खिनी उर्दू में "गुलशने-इश्क" के नाम से एक

प्रेम कहानी लिखी।"[३]

उद्धृत अंशों से यह स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल जी के लेखन-काल तक (सं० २००७) मधुमालती की कोई ऐसी प्रति न मिल पाई थी जिसके द्वारा उसका निश्चित रचना-काल दिया जा सकता और यही कारण है कि शुक्ल जी की निम्न बातें अब निराधार हो चुकी हैं :—

(१) मधुमालती का रचना-काल पद्मावत के पूर्व अथवा सं० १५५० और सं० १५९५ के बीच है।

(२) रचना-काल के क्रमानुसार जायसी का मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती की ओर संकेत।

(३) पद्मावत के पूर्व मधुमालती की अधिक प्रसिद्धि और बनारसीदास के द्वारा सं० १६६० में बांची जाने का साक्ष्य।

हो सकता है कि जायसी के काल में मधुमालती या मृगावती नाम की अनेक लोक गाथायें प्रचलित रही हों, अतः यह आवश्यक नहीं कि वह अपने पूर्व लिखे गये काव्यग्रंथों का ही निर्देश करता। संयोगवश जिस 'मृगावती' की चर्चा जायसी ने की वह कुतुबन की 'मृगावती' के रूप में 'पद्मावत' के पूर्व की रचना सिद्ध हो चुकी है। किन्तु इस आधार पर भी, कि जायसी ने सूफी कवियों के द्वारा ही लिखित प्रेम-काव्यों की चर्चा की, मधुमालती के संकेत से मंझन की 'मधुमालती' की ओर ही यह संकेत नहीं हो सकता, क्योंकि अब निश्चित रूप से यह ज्ञात हो चुका है कि 'मधुमालती' पद्मावत के बाद की रचना है। इसलिये मुग्धावती या प्रेमावती की भी खोज लगाना उतना महत्त्वपूर्ण कार्य न होगा। सम्भावना यही है कि बहुत सी लोक-प्रचलित कथाओं को साक्षी के रूप में केवल गिना दिया गया हो और कृतियों के रूप में न तब उनकी उपस्थिति रही हो और न अब ही हो। फिर बनारसी दास जैन के द्वारा सं० १६६० में मधुमालती का पठन इस ओर तनिक भी इंगित नहीं करता कि वह 'पद्मावत' के पूर्व की रचना है। शुक्ल जी को और पहले के यानी पद्मावत के पूर्व (सं० १५९५ के पूर्व) के कुछ उदाहरण देने थे किन्तु वैसा सम्भव नहीं था। जान पड़ता है जायसी ने एक साथ अनेक रूपक खड़ा करके विभिन्न नायकों के प्रेमों की गम्भीरता की जांच की है।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल पृ० ९५-९६ (संवत् २००७)

सम्भव यह भी है कि उपरोक्त सभी कृतियां वर्तमान रही हों किन्तु यह आवश्यक नहीं कि नामों में साम्य होने के कारण किन्हीं दो रचनाओं में कोई एक किसी एक विशिष्ट कवि के द्वारा पहले लिखी गई हो और दूसरे के द्वारा पीछे निश्चित रचनाकाल के अभाव में हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं जिसके द्वारा हम ऐसी विश्लेषणा कर सकें। दोनों ही कृतियां एक दूसरे की पूर्ववर्तिनी या परवर्तिनी हो सकती हैं और यदि किसी एक का निश्चितकाल ज्ञात हो जाता है तो दूसरी का भी काल निर्धारण हो सकता है। चूंकि 'मधुमालती' का काल सं० १६०२ सिद्ध हो चुका है अतः जायसी द्वारा वर्णित मधुमालती मझन की न होकर कोई दूसरी ही रचना जान पड़ती है। पिछले अध्याय में चतुर्भुज दास की मधुमालती की ओर अथवा अन्य किसी कृति की ओर ही यह संकेत सम्भव बताया गया है।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने अपने शोध ग्रथ में सम्भवः सर्वप्रथम मधुमालती की निश्चित तिथि का वर्णन करते हुये लिखा है[४] :—

"शेख मंझन ने सलीमशाह सूर के राज्यकाल में सन् ९३२ हिजरी (सन् १५४५ ई०) में मनोहर एवं मधुमालती की प्रेम कथा लिखी थी।"

डा० कुल श्रेष्ठ ने यह नहीं बताया कि यह तिथि उन्हें कहां से मिली किन्तु उन्होंने यह स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने बनारस की दोनों प्रतियों एवं रामपुर लाइब्रेरी की प्रति के आधार पर कथा जोड़ कर तैयार की। रामपुर वाली प्रति में ही, सम्पूर्ण होने के कारण, यह तिथि उन्हें मिली होगी क्योंकि पं० परशुराम चतुर्वेदी ने अपने ग्रंथ "सूफी काव्य संग्रह" (पृ० ११९) में इसी ओर संकेत करते हुये लिखा है :—

"मधुमालती की खंडित प्रति होने के कारण मलिक या शेख मंझन के सम्बन्ध में विवादग्रस्त बातें सुनी जाती हैं। रामपुरवाली प्रति से केवल दो-एक बातों का निपटारा हो पाया है। अब इतना निश्चित है कि मंझन ने उसकी रचना हिजरी ९५२ में की थी, उस समय शाह सलीम का राज्यकाल था और इस कवि के पूज्य पीर शेख बद्दी, शेख मुहम्मद आदि कतिपय मुसलमान महात्मा थे जिनकी उस प्रति में केवल प्रशंसा मात्र ही पाया

४. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य—डा० कमलकुलश्रेष्ठ पृ० ३६–३८ (सन् १९५३)

जाती है। इस हस्तलिखित प्रति की भी अनेक पंक्तियों का शुद्ध रूप अभी तक प्रकट नहीं हो पाता और उनके कई स्थल बहुत कुछ अस्पष्ट से हैं। परन्तु उपर्युक्त नाम अथवा ग्रंथ के रचना काल के सम्बन्ध में अब कोई सन्देह नहीं रह जाता। सलीमशाह शेरशाह का उत्तराधिकारी था जो उसकी मृत्यु के पश्चात् सन् १५४५ ई० राजगद्दी में बैठा था और यही समय मधुमालती का रचना काल भी ठहरता है।"

पुनः आगे चलकर पृ० १२० में चौबे जी लिखते हैं:—

"इस प्रकार इतनी बातें अब स्पष्ट हो जाती हैं कि मधुमालती की रचना जायसी की पद्मावत के पीछे हुई थी ....।"

हमें जो प्रति एकडला में प्राप्त हुई है वह सम्पूर्ण है और उसमें सलीम शाह तथा ग्रन्थ रचना-तिथिवाले प्रसंग वर्तमान हैं जिनके आधार पर उपरोक्त मत की परिपुष्टि हो जाती है। सलीमशाह का प्रसंग "पातिशाह की सिफति" शीर्षक के अन्तर्गत आया है:—

"साहि सलेम जगत भुअ भारी, जेइ भुआ बर मेदिनी तारी॥"

ग्रन्थ-रचना तिथि निम्न प्रकार से दी गई है:—

"संबत नौ से बावन भयऊ, सती पुरुष कलि परिहर गयऊ।
तौ हम चित उपजा अभिलाखा, कथा एक बाँधउ रस भाखा।
सुरस बचन जहाँ लगि सुने, कवि जो समाने ते सब गुने।
जो सभ कहै सुरस रस भाखो, सुनहु कान दे पेम अभिलाखो।

अतः यह निश्चित है कि मंझन ने मधुमालती नामक प्रेम कथा की रचना हिजरी सन् ९५२ तदनुसार सन् १५४५ अथवा संवत् १६०२ वि० में की। जायसी के 'पद्मावत' की रचना तिथि हि० सन् ९४७ है, अतः वह 'मधुमालती' से ५ वर्ष पूर्व लिखा गया। यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि मंझन ने कहीं भी 'पद्मावत' का उल्लेख तक नहीं किया। सम्भव है कि तब तक ५ वर्षों के अल्प व्यवधान में 'पद्मावत' की लोक-प्रसिद्धि न हो पाई थी। फिर 'मधुमालती' की शैली भी 'पद्मावत' से उतना साम्य नहीं रखती जितना 'मृगावती' से। अतः मंझन की शैली कुतुबन से अधिक प्रभावित हुई जान पड़ती है। पद्मावत में ७ चौपाइयों के पश्चात् दोहे का क्रम है किन्तु 'मृगावती' के समान 'मधुमालती' में पाँच पंक्तियों के बाद दोहा आता

है । बारामासा तथा अन्य वर्णनों में भी 'मधुमालती' 'मृगावती' के समीप है । वैसे जायसी का 'पद्मावत' भी कुतुबन की 'मृगावती' से यथेष्ट मात्रा में प्रभावित है, जिसकी चर्चा हमने 'मृगावती' की भूमिका में की है। (देखिए मृगावती विद्यामन्दिर प्रकाशन, ग्वालियर)

प्राप्त प्रति मंझन की ही मधुमालती है सिद्ध करने के लिए निम्न तर्क एवं प्रमाण पर्याप्त होंगे ।

१. पुष्पिका, जिसमें गुफ्तार मियाँ मंझन कृत 'मधुमालती' की प्रतिलिपि करने का काल संबत् १७४४ दिया हुआ है ।

२. पाँच स्थलों पर मंझन का नाम । मंझन उपनाम है या असली नाम, कहा नहीं जा सकता । जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी' माना जाता है किन्तु जायसी ने 'पद्मावत' में अपना नाम 'जायसी' न देकर 'मुहम्मद' ही दिया है जो पूरे नाम का पूर्वार्द्ध है । उपनाम नाम का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध दोनों ही हो सकता है। तुलसी और सूर ने अपने नामों के पूर्वार्द्ध ही सदैव प्रयुक्त किये । अतः मंझन का पूरा नाम मंझन से प्रारम्भ होकर भी समाप्त हो सकता है और नाम के अन्त में भी मंझन आ सकता है । किन्तु पुष्पिका (प्राप्त प्रति— एकडलाकी) में "गुफ्तार मियां मंझन" नाम दिया है अतः मियां गुफ्तार मंझन या शेख गुफ्तार मंझन भी उपयुक्त जान पड़ता है । वैसे डा० कुलश्रेष्ठ ने मंझन के अपभ्रष्ट रूप जम्मन का भी उल्लेख किया है ।

पांच स्थलों में जहां-जहां मंझन का नाम आया है, वे 'बिछोह खंड' (दो बार), प्रेमा का दुख खंड (दो बार) एवं 'प्रेमा मधुमालती मिली खंड' (एक बार) हैं ।

१—मंझन यहि कलि दुख बिना, सुख मति चाहै कोइ ।
पहिले तरु पतझार हो, तौ नौ पल्लौ होइ ॥
२—इहां कुंवर के निस दिन, विरह दग्ध उत्पात ।
उहां कुंवर के जागे, मंझन कहु कैसी है बात ॥
३—मंझन अमर मूरि सो, विरहा जम पावै आस ।
निश्चै अंबर होइ सो, जुग जुग काल न आवै पास ॥
४—मंझन जो जग जनमि कै, विरह न कीन्हा चाउ ।
सूने घर का पाहुना, ज्यों आवै त्यों जाउ

५—पाछिल बात समुझि जिउ मंझन, उपजा बिरह बिकार।
थांभि न सकी लगी गिउ पेमा, रोई धालि डंफोरि॥

नाम की प्रयुक्तियों के विषय में सत्यजीवन बर्मा ने लिखा है कि मधु-मालती में मझन का नाम दो जगहों में आया है जिनमें एक जगह "मलिक" के साथ। अतः वह मुसलमान था। मुझे "मालिक" के साथ 'मंझन' नहीं मिला। 'मलिक' के साथ तो 'जायसी' का ही मानों प्रगाढ़ प्रेम हो। दो के बजाय चार स्थलों पर मंझन शब्द की प्रयुक्ति मुझे देखने को मिली। श्री परशुराम चौबे, मध्यम-मार्ग स्वीकार करते हुये एक ही साथ शेख या मलिक का प्रयोग करते नहीं हिचके। इसके क्या प्रमाण हैं, वे नहीं बताना चाहते।

(ङ) मंझन का परिचय

१ नाम का निर्णय—मंझन के विषय में अभी तक कोई ऐसी सामग्री प्राप्त नहीं हुई थी जिसके आधार पर उनके जीवन का कुछ भी परिचय दिया जाता। पं० रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य के इतिहास" में (पृ० ९५-९७) मंझन के विषय में लिखते हैं:—

"इनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। केवल इनकी रची मधु-मालती की एक खंडित प्रति मिली है जिससे इनकी कोमल कल्पना और स्निग्ध सहृदयता का पता लगता है। आध्यात्मिक प्रेमभाव की व्यञ्जना के लिए प्रकृति के भी अधिक दृश्यों का समावेश मंझन ने किया है।"

"कवित्त-सवैया बनानेवाले एक "मंझन" पीछे हुए हैं जिन्हें इनसे सर्वथा पृथक समझना चाहिये।"

इस प्रकार सर्वप्रथम श्री शुक्लजी ने दो 'मंझनों" की चर्चा की। वैसे हिन्दी साहित्य के प्रेमी हिन्दी संसार के दो "आलमों" से भलीभांति परिचित हैं। कवित्त-सवैयेवाले मंझन के द्वारा श्री शुक्लजी ने संभवतः जब्बरत्नदास की स्थापनाओं की ओर संकेत किया है। "हिन्दुस्तानी" के

अप्रैल १६१८ के अंक में दासजी का एक नोट पृ० २११ पर प्रकाशित हुआ था जो इस प्रकार है:—

"कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल हाल में संख्या ७४५ पर खान-खाना के पुत्र दाराब खाँ का एक चित्र है जिसमें हिन्दी में एक कवित्त है।

दर्प दरबार आयो औचक ही हरबर
अंबर अनीक बर बरबर करकै।
तरपि तुरकमान साहसी दराबखान
कीनो कतलान घमसान उग्र करिकै॥
'मंझन' सुकवि कहै चहै चाह पाई जहां
जीत को नगारयो बज्यौ बीतत समर कै।
जौ लौं हिमाञ्चल तौ लौं डमरू बजावै संभु
तौ लौं डाक चौकी डंकि मारयौ हर हरकै॥

चूँकि यह घटना सन् १६२० की है अतः मंझन संवत् १६७८ विक्रमी तक जीवित रहे होंगे।"

यही नहीं श्री ब्रजरत्नदास जी मंझन को मुसलमान न मानकर हिन्दू मानते हैं क्योंकि मधुमालती के प्रारम्भ में कुछ पृष्ठों में मंगलाचरण गाया गया है।

विवाद अब इसमें नहीं है कि मंझन हिन्दू थे या मुसलमान किन्तु भ्रमात्मक बात तो यह है कि ब्रजभाषा लिखनेवाले कवित्त सवैयोंवाले मंझन को अवधी के लेखक मंझन से मिलाया जा रहा है। इस प्रकार की अन्धा-धुन्धी साहित्य के वास्तविक विकास के समझने में बाधक होती है। हम श्री ब्रजरत्नदास जी के कथन से बिल्कुल सहमत नहीं। श्री शुक्ल जी का अभिमत ही हमें तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक प्रतीत होता है। मधुमालती की रचना सं० १६०२ में हुई और यदि मंझन का देहावसान सं० १६७८ माना जाय तो रचना के पश्चात् वे ७६ वर्ष और जीवित रहे। मधुमालती जिस कोटि की रचना है और मंझन ने जिस आत्म-संयम का वर्णन प्रारम्भ में किया है उससे स्पष्ट है कि उन्होंने उसे अल्पवयस्क होकर नहीं लिखा वरन् वह उनकी वृद्धावस्था की ही रचना हो सकती है। वैसे सौ वर्ष से अधिक जीवित रहना उस काल के लिए कोई अपूर्व बात न थी किन्तु साधारणतया

ऐसी कल्पना करने से हमें हिचकिचाहट होती है और होनी भी चाहिये। फिर 'मधुमालती' की अवधी भाषा और उसकी शैली का इस सवैये से कोई साम्य नहीं। यह ब्रजभाषा का सवैया-छन्द है, जब कि प्रेमाख्यानकों में केवल दोहा और चौपाई ही उस काल तक प्रयुक्त हो पाये थे। इन सब तर्कों से कवित्त-सवैयेवाले मंझन मधुमालती के लेखक (मंझन) से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं। दूसरे यह कि मधुमालती के लेखक निश्चित रूप से मुसलमान थे, कवित्त-सवैयों वाले मंझन भले ही हिन्दू रहे हों।

पं० परशुराम चौबे ने मंझन के मुसलमान होने का निम्न तर्क प्रस्तुत किया है: –

"पुस्तक के प्रारम्भ में की गई ईश्वर की वन्दना तथा हजरत मुहम्मद-पीर की स्तुतियों से इस बात की पुष्टि होती है और इन सबके अन्त में की गई निर्गुण की चर्चा के कारण इसमें (मुसलमान होने में) कोई सन्देह नहीं रह जाता।"[१]

२—जन्म-स्थानादि

"फिर भी मलिक मंझन के जन्म स्थानादि का स्पष्ट परिचय नहीं मिलता, न उनके पिता अथवा मित्रादि की ओर किया गया कोई ऐसा संकेत ही मिलता है जिसके आधार पर उनके सामाजिक जीवन पर कुछ भी प्रकाश पड़ सके।"

उपरोक्त पंक्तियाँ, जो चौबे जी के द्वारा मंझन के सम्बन्ध में लिखी गई हैं, वास्तविक स्थिति का बोध कराती हैं। वैसे चौबे जी ने रामपुर लाइब्रेरी की प्रति की निम्न दो पंक्तियों के आधार पर मंझन की जन्मभूमि की ओर कुछ संकेत सा पाया है, किन्तु यह उनका भ्रममात्र है:—

"गढ़ अनूप बस नगर ...... ढी, कलजुग महं लंका सो गाढी।
पुरब दिसा जाकी गहराई, उत्तर पच्छिम लहा गढ़ खाईं॥"

'ढी' के पूर्व के कुछ शब्द लुप्त हैं अतः चौबे जी ने 'गढ़ अनूप' एवं 'नगर' से अनूपगढ़ शहर की कल्पना की है। यही नहीं 'ढी' पर समाप्त होनेवाले अन्य किसी नगर की भी धारणा सम्भव है। किन्तु चौबे जी ने

१. परशुराम चतुर्वेदी—सूफी काव्य संग्रह पृ० १२०।

प्रसंग नहीं देखा। जिस प्रसंग में ये पंक्तियाँ प्रयुक्त हैं, वह राजा सूर्यभान के कनैगिरि गढ़ का वर्णन है। अनूप से तात्पर्य अनुपम है, गढ से-किले का। अनूपगढ़ आज का अनूपगढ शहर नहीं है। कनैगिरि के किले का वर्णन (एकडला में प्राप्त प्रति में) इस प्रकार है:—

गढ़ कनैगिरि नग्र सोहावा, सुरजभान तहां राज बनावा।

× × ×

गढ़ अनूप बस नग्र चर्नाढ़ी, कलयुग भो लंका जो गढ़ी।
पूरब दिसा जगरो फिरि आई, उतर पच्छिम गंगा गढ़ खाई।
देखत बनै जाइ नहिं कहई, गढ़ भीतर गंगाजल रहई।

× × ×

नगर अनूप सोहावन औ गढ़ विषम अगंम।
बरबस हाथ न आवै पै बिन पुरब करंम॥

× × ×

उपर्युक्त अंशों से स्पष्ट है कि 'अनूप' और 'गढ़' अलग-अलग प्रयुक्त हुए हैं—एक विशेषण और दूसरा संज्ञा के रूप में। गढ़ का नाम कनैगिरि है और नगर का नाम चर्नाढ़ी। अतः चौबे जी का अनुमान कि 'ढी' से अन्त होनेवाला कोई नगर मंझन की जन्मभूमि हो सकती है, 'चर्नाढ़ी' नामक नगर के रूप में एकडला की प्रति में वर्तमान है किन्तु यह मंझन की जन्मभूमि न होकर सुरजभान की राजधानी है। उक्त प्रति में 'चर्नाढ़ी' स्पष्ट शब्दों में लिखा है किन्तु इसकी स्थिति कहाँ है, किसी भौगोलिक नगर के रूप में आसानी से नहीं ढूँढ़ निकाली जा सकती। वैसे गंगा के किनारे का ही नगर होना चाहिए (संभवतः चुनारगढ़ ही हो) क्योंकि गंगा का पानी किले के भीतर भरा रहता था। किन्तु कथा किसी ऐतिहासिक राजा का चित्रण न करके कल्पना मात्र है अतः 'चर्नाढ़ी' की स्थिति का पता लगाने में आकाश-पाताल बाँधने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

जिस प्रकार तुलसी कृत रामचरित मानस में 'तेहि अवसर तापस एक आवा' से तापस का अर्थ तुलसीदास लगा लिया जाता है, वैसे ही यदि 'गढ़' के वर्णन से मंझन की जन्मभूमि की ओर किसी को संकेत मिले, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

३—मंझन के गुरु

'मधुमालती' के प्रारम्भिक अंश में मंझन ने अपने गुरु के विषय में बहुत कुछ कहा है जिससे ज्ञात होता है कि उनके गुरु कोई 'शेख' या 'शेख महंमद' अथवा 'गौस मुहम्मद' थे। उनके ही संसर्ग से मंझन को सिद्धि प्राप्त हुई थी।

'सेख बड़े जग पीर अपारा, ग्यान गरुअ के रूप अपारा।
सौंरि पाँव परसै जो आवै, ग्यान लाभ हो पाप गँवावै ॥

× × ×

सेख महमद पीर अपारा, सात समुंद नाव कंडहारा।

× × ×

दाता गुन गाहक, गौस मुहम्मद पीर।
दुइ कुल निरमल सापुरुष, गरुअ गरिष्ट गंभीर ॥

× × ×

जैसे पाहन के परसत, ताम हेम होइ जाहि।
तिमि मैं शेख जो परसत, बिनु साहस सिधि पाइ ॥

× × ×

इन्ह दूनौ सिर ठाकुर, गौस महंमद पीर।

× × ×

जेहि सिर पूर्व कर्म के रेखा, ते जग सेख महमंद देखा।

× × ×

४—मंझन की तपस्या एवं सिद्धि

किसी भी लेखक या समालोचक ने अब तक उस अंश पर प्रकाश नहीं डाला जो सचमुच मंझम से सम्बन्धित है। एकडला में प्राप्त प्रति का निम्न अंश इस अभाव की पूर्ति करता प्रतीत होता है:—

"बारह बरिस धुन्ध केदरी
जहाँ सूर ससि दिष्टि न परी।
विकट विषम भयावन ठाऊँ
कलिजुग धंधलर जों नाऊँ ॥

चहुँ दिस प्रबत बिषम अगंमा
तहाँ न कतहुँ मानुस संगमा।
तहाँ जाइ कै जपा बिधाता
कै अहार बन जामुनि पाता।
मन मतंग मारि बस किया
ग्यान महारस अंब्रित पिया।

साहस उठै अपान जो लीन्ह सिधिरिधि।
बारह वर्ष रहे बन, पर्वत लाये ब्रह्म समाधि॥

अरे अरे बचन तोर कहा बसा
अरु कहाँ हुनं तार प्रकासा।
अरु कहाँ तें उतरति भौ तोरी
जहाँ न संचरै बुधि मोरी।
आरज एक मोर मन अहई
कोई न अरथ ताहि कर कहई।
बचन कै उतपति मोहि सेऊ
मानुस बोल अंबर हो कोऊ।
रहै न बचन कै पतिआहा
कैसे बचन अमर हो ताहा।

देखा मनहिं बिचारि कै बचनै बचन हिय माँहि।
बचन ऐस बिधना के जो बरतत सब माँह॥

× × ×

पंडित सुन बिनती एक मोरी
बिनवौं पाँव दुऔ कर जोरी।
जहाँ न आखर पुरै संभारहु
मलया भये मंद प्रति पारहु।

मूरख जौ रे उछेदहि, ताकर नाहीं सोच।
धन जग ताकर औतरब, अरथ लगावै पोच॥

× × ×

तब हम भौ दोसर घर बासा
जब रे पितै छोडा कबिलासा।
बूझि पढ़े मोर आखर लोई
बिन बूझे मति दुलखै कोई।
दसभो एक बोझ जो हाई
ताके सीस चढ़ै मति कोई।

× × ×

संबत नौ सै बावन भयऊ
सती पुरुष कलि परिहर गैऊ।
तौ हम चित उपजा अभिलाखा
कथा एक बाँधउ रसभाखा।

× × ×

उपरोक्त अंशोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मंझन ने बारह वर्ष तक कठिन तपस्या की और उन्हें आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ। पिता के स्वर्गवासी होने पर उन्हें दूसरा घर बसाना पड़ा जिससे यह ध्वनित होता है कि पिता के न रहने पर ही अगम पर्वत की कन्दरा में जाकर तप प्रारम्भ किया। ज्ञानोदय के पश्चात ही "स्वान्तः सुखाय" सन् ९५२ हिजरी में मधुमालती की रचना की। "बूझि पढ़े मोर आखर लोई" से यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'मधुमालती' की कथा मे मंझन ने ज्ञान की चर्चा की है अतः समझ बूझ कर ही उसको पढ़ना चाहिये। यही नहीं रचना करते समय उन्हें यह आभास मिल चुका था कि कलियुग अपने उग्ररूप में है, एक भी सत्यवादी पुरुष नहीं अतः सम्भव है कि जो कुछ वह कह रहे हैं लोग विश्वास न करें। "सती पुरुष कलि परिहर गैऊ" का यही तात्पर्य है।

५—मझन की विनयशीलता

जिन्होंने रामचरितमानस पढ़ा है उन्हें भलीभाँति ज्ञात है कि विनयखंड में गोस्वामी तुलसीदास ने कितने विनीत थे "अब के कबिन" को प्रणाम किया है और अपने को 'सकल कला औ विद्याहीना' घोषित किया है। जायसी ने भी हम सब कबिन केर पछुलगा' लिखकर अपनी विनम्रता प्रदर्शित की है। सूफी कवियों में तो ऐसी विनम्रता सहज है। मझन भी उससे अछूते नहीं। उन्हें अपनी कवित्वशक्ति का भरोसा नहीं, अतः वे बार बार टूटे अक्षरों

को मिला लेने की विनती करते हैं। उन्हें यह भी विश्वास है कि पंडितजन इसे दोष न समझ कर काव्य का आनन्द लेंगे किन्तु जो रसविहीन एवं मूर्ख हैं, वे अवश्य ही इस काव्य की निंदा करेंगे। परन्तु जिस प्रकार से गोस्वामी जीने कहा है, 'खल परिहास होय हित मोरा', मंझन इन मूर्खों के लग ये दोषों की परवाह ही नहीं करते—

"जो पंडितजन होय बनाये, का मूरख के दोष लगाये।"

× × ×

पंडित मोहिं न दोस लगाइहिं, मूरख से जो आपु जनाइहिं।

× × ×

मूरख जौ रे उछेदहिं, ताकर नाहीं सोच।
धन जग ताकर औतरब, अरथ लगावै पोच॥

× × ×

"जो जेहि रस कै जान बाता तेहि ते रस अनरस उत्पाता।"

त्रुटियों को सुधारने के लिये याचना करते हुये मंझन को विश्वास है कि काव्य में कम या अधिक मात्रायें आसानी से छिप जावेंगी:—

जो भल बचन सराहि न जाई, बोल न दुलखै दोस लगाई।
जहाँ न आखर पुरैं संवारहु, मलया भैं मन्द प्रति पारहु।
"दसमों एक वोछ जो होई, ताके सीस चढ़ै मत कोई।"

× × ×

"वोछ परत जे अच्छर, कबि महं लेव छुपाय।"
"विनवौ पाँव दुओ कर जोरी"

× × ×

तात्पर्य यह कि 'मधुमालती' की भूमिका में मंझन ने एक ओर जहाँ अपने गुरू की आराधना की चार यारों की बन्दना की है वहाँ रसिकों के प्रति अपना विनम्र निवेदन करते नहीं चूके। गोस्वामी तुलसीदास की ही यह विशेषता नहीं है कि वे रामचरित लिखने के पूर्व 'खल बन्दना' करते नहीं अघाते वरन् उस काल में इस प्रकार की विनयशीलता का प्रदर्शन कवि कर्म के अन्तर्गत समझा जाता था।

जैसा कि आगे चल कर बताया जायगा कि मधुमालती के मूल-पाठ में अनेक चौपाइयों एवं दोहों में अधिक या न्यून मात्राओं के होने से काव्य की गेयता नष्ट हो गई है, अतः यदि उपरोक्त कथन को सत्य मान लें तो मंझन का काव्य सदोष होते हुये भी निर्दोष बन जाता है किन्तु गोस्वामी तुलसीदास ने "कवि न होउ नहिं चतुर कहाऊँ" लिखकर भी कोई ऐसी त्रुटि नहीं आने दी जो इस कथन की पुष्टि कर सके। रामचरित मानस से २६ वर्ष पूर्व लिखी 'मधुमालती' में तुलसी की सी छन्दःशास्त्र में परिपक्वता का न तो हमें आग्रह करना चाहिये, न वैसी आशा ही की जा सकती है।

६—रचना का उद्देश्य

"तौ हम चित उपजा अभिलाखा
कथा एक बाँधउं रस भाखा"

के अनुसार मंझन ने 'स्वान्तस्सुखाय' ही मधुमालती की रचना की। उन्होंने जो कुछ भी देखा-सुना था और जो भी उन्हें प्रिय लगा, सब कुछ लिख दिया। मधुमालती में प्रेम की कथा है जो पियूषवर्षिणी है। इसमें रसराज 'प्रेमरस' या शृङ्गार रस का वर्णन है।

सुरस बचन जहाँ लगि सुने
कवि जो समाने ते सब गुने।
जो सभ कहै सुरस रस भाखी
सुनहु कान दै पेम अभिलाखी॥

अंब्रित कथा सुरस रस, सुनहु कहौं जो गाइ।
बोछ परत जो अच्छर, कबि महं लेब छपाइ॥

+ + +

रस को बात रसिक पै जानै
बिना रसिक नीरस कै मानै।
रस अनेक संसार कर, सुनहु रसिक दै कान।
जो सब रस महं राउ रस, ताकर करौं बखान॥

(च) रचना का मूल-स्रोत

मंझन कृत 'मधुमालती' की कथा का क्या स्रोत है, ढूँढ़ निकालना कठिन काम है। इतना तो निश्चित है कि यह कोई ऐतिहासिक आख्यान नहीं। हाँ, इसकी पौराणिकता में हमें कोई सन्देह न होना चाहिए। स्वयं मंझन ने एक स्थान पर इस कथा की उत्पत्ति द्वापर में बतायी है और कलियुग में अपने द्वारा भाषा में रूपान्तरित।

'आदि कथा द्वापर मो भई, कलिजुग मो भाखा जो लाई ॥'

द्वापर से हम पौराणिक काल की ओर निर्देश पाते हैं अतः बहुत कुछ सम्भव है कि संस्कृत में ऐसा कोई आख्यान रहा हो। या यह भी कहा जा सकता है कि संस्कृत में लिखित भवभूति के नाटक 'मालती माधव' को द्वापर की ही कथा मानकर ऐसा कहा गया हो।

(छ) मधुमालती की कथा

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में (पृ० ६५) मधुमालती की कथा को अधिक जटिल एवं लम्बी बताते हुए उसका संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है, जो आगे ज्यों को त्यों दी जा रही है। बाद के इतिहास लेखकों या शोधकों ने अपनी ओर से कहानी में कोई हेरफेर किये बिना इसी का पिष्टपेषण किया है। किसी ने भी रामपुर की प्रति या अन्य प्रति के आधार पर कोई नवीनता नहीं दिखाई। डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने अन्तिम दो पंक्तियों में थोड़ा हेरफेर किया है, क्योंकि शुक्ल जी की पंक्तियाँ हैं—

"इसके आगे प्रति खंडित है। पर कथा के झुकाव से अनुमान होता है कि प्रेमा और ताराचन्द का भी ब्याह हो गया होगा।" 'कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर नामक सोये हुए राजकुमार को अप्सरायें रातोंरात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में रख आई। वहाँ जागने पर दोनों मिले और परस्पर मोहित हो गये। राजकुमारी

के पूछने पर मनोहर ने अपना परिचय दिया और कहा—'मेरा अनुराग तुम्हारे ऊपर कई जन्मों का है। जिस दिन मैं इस संसार में आया, उसी दिन से तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ। बातचीत करते दोनों एक साथ सो गये और अप्सरायें राजकुमार को उठाकर फिर उसे घर रख आईं। जागने पर दोनों अपने स्थान पर प्रेम में व्याकुल हुए। राजकुमार वियोग से दुःखित होकर अपने घर से निकल पड़ा। उसने समुद्र की यात्रा की। तब तूफानों के कारण उसके इष्ट मित्र अलग हो गये। राजकुमार एक पटरे पर बहता हुआ एक जंगल में जा लगा, जहाँ पलंग पर एक सुन्दर स्त्री लेटी दिखाई पड़ी। जब उसने पूछा तो पता चला कि वह चितबिसरामपुर के राजा चित्रसेन की कुमारी प्रेमा थी, जिसे एक राक्षस उठा लाया था। इस पर मनोहर ने उस राक्षस को मारकर प्रेमा का उद्धार किया। प्रेमा ने मधुमालती को अपनी सखी बतलाकर उसका पता दिया और दोनों को मिलाने का वचन दिया। तब वे दोनों प्रेमा के पिता के नगर में आये। प्रेमा के पिता के मनोहर के प्रेमा पर किये गये उपकार को सुनकर उसका विवाह मनोहर से करना चाहा, पर मनोहर को अपना भाई मानकर प्रेमा ने इसे अस्वीकार कर दिया।

दूसरे दिन मधुमालती अपनी माता रूपमञ्जरी के साथ प्रेमा के घर आई और प्रेमा ने उसके साथ मनोहर कुमार का मिलाप करा दिया। सबेरे रूपमजरी ने चित्रसारी में जाकर मधुमालती को मनोहर के साथ पाया। जगने पर मनोहर ने अपने को अन्य स्थान पर पाया, पर रूपमञ्जरी ने अपनी कन्या को ऐसे व्यवहार पर बुरा भला कहकर प्रेम छोड़ने को कहा। पर मधुमालती के न मानने पर माता ने उसे पक्षी हो जाने का शाप दिया। जब वह पक्षी बनकर उड़ गई तब उसकी माता अति व्याकुल हुई, पर मधुमालती का कहीं पता न लगा। मधुमालती पक्षी रूप में उड़ती बहुत दूर निकल गई तो ताराचन्द नामक एक राजकुमार ने उसे अत्यन्त सुन्दर पक्षी समझ पकड़ना चाहा। इधर मधुमालती भी ताराचन्द को मनोहर समझकर रुक गई और वह पकड़कर एक सोने के पिंजरे में बन्द कर दी गई। एक दिन पक्षी रूप मधुमालती ने अपने प्रेम की सारी कहानी ताराचन्द को कह सुनाई. इस पर उसने इसे मनोहर से पुनः मिलाने हेतु प्रतिज्ञा की। अंत में वह उस पिंजड़े को लेकर महारस नगर में पहुँचा। मधुमालती की माता पुत्री को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा उसने मन्त्र पढ़कर उस पर जल छिड़का। वह फिर पक्षी से मनुष्य हो गई। मधुमालती के माता पिता ने

उसका विवाह ताराचन्द के साथ करने का विचार किया, पर ताराचन्दने कहा, 'मधुमालता मेरी बहन है और मैंने उससे कुँअर मनोहर को मिलाने की प्रतिज्ञा की है।' तब मधुमालती व उसकी माता ने यह सारा हाल प्रेमा को लिखकर भेजा। प्रेमा इस स्थिति से खिन्न होती है परन्तु उसी समय उसे अपनी सखी द्वारा मनोहर के एक योगी के वश में आने का समाचार मिलता है। अन्त में मधुमालती के पिता ने राजा चित्रसेन के यहाँ आकर मधुमालती का मनोहर के साथ धूमधाम के साथ विवाह कर दिया। मनोहर मधुमालती और ताराचन्द बहुत दिनों तक प्रेमा के यहाँ अतिथि रहे। एक दिन आखेट से लौटने पर ताराजन्द प्रेमा और मधुमालती को एक साथ झूले पर झूलते हुए देखकर प्रेमा पर मोहित होकर मूर्छित हो गया। मधुमालती और उसकी सखियों ने उसका उपचार किया।"

"अन्त में ताराचन्द व प्रेमा का भी विवाह हो जाता है।" (डा० कमल-कुलश्रेष्ठ की कृति—हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य से।)

चौबे जी ने उपरोक्त कथा के अन्तिम अंश को (सूफी काव्य संग्रह पृ० २५०) थोड़ा सा और परमार्जित कर दिया है—'अन्त में प्रेमा पर ताराचन्द के मोहित हो जाने पर उन दोनों का भी विवाह हो गया और फिर सभी अपने-अपने यहाँ जाकर सुख भोग करने लगे।' चौबे जी ने स्वयं प्रतियों के अवलोकन करने का कष्ट उठाया है और यही कारण है कि उनकी कथा का अन्तिम अंश अधिक पूर्ण है, दूसरों की अपेक्षा।

एकडला में प्राप्त प्रति के आधार पर यद्यपि इस कथा में अनेक परिमार्जन किये जा सकते हैं किन्तु अधिक विभेद न होने के कारण अन्तिम अंश संक्षिप्त करके यहां दिया जा रहा है। यह अंश चौबे जी के द्वारा निर्दिष्ट अंश से साम्य रखता और शुक्ल जी की कल्पना कि ताराचन्द और प्रेमा का ब्याह हो गया होगा. पूरी ही नहीं होती बल्कि मधुमालती का भी मनोहर के यहाँ गमन होता है। अन्त में वे सुखपूर्वक जीवन बिताने लगते हैं।

प्रेमा पर मोहित होकर ताराचंद के मूर्छित होने के पश्चात् ६ खण्ड और हैं जिनमें कथा का तारतम्य चलता रहता है। मधुमालती ताराचन्द से उसकी मूर्छा का हाल पूछती है। वह प्रेमा पर विमोहित है अतः प्रेमा का रूपवर्णन मधुमालती से कह सुनाता है। मधुमालती अपने पिता के समक्ष उन दोनों के

ब्याह का प्रस्ताव रखती है। दोनों का ब्याह हो जाता है और राजकुंवर, मधुमालती, प्रेमा तथा ताराचंद सुखपूर्वक साथ ही रहने लगते हैं। कुंवार माह के लगते ही दोनों-युग्म चित्रसेन राजा से बिदा मांगने के लिये जाते हैं। राजा बड़े ही संताप में पड़ जाता है। अन्तःपुर भी बिदा की बात सुनकर क्षुब्ध होता है। मधुमालती की माता बिदा के समय उपदेश देती है :—

'साईं सेवा करब चितलाये, जनि डोले चित दाहिने बांये।

मधुमालती को बिदा होते देख सखियां भी आ जाती हैं। मधुमालती कहती है—

'जौ बिछुरत दुख जनतिउं एहा, कत करतिउं बालापन नेहा।

बिदा होते समय घर की प्रत्येक वस्तु को भेंटती है। माता आशीष देती है :—

'जौ लगि धरती गंग जल, औ ससि सूर अपार।
तौ लगि राज सोहाग तुअ, राखौ सिरजनिहार॥'

चारों साथ ही बिदा होते हैं किन्तु कुछ दूर जाकर दो मार्गों में विभक्त हो जाते हैं। उस समय जो वियोगजन्य वातावरण उपस्थित होता है वह अत्यन्त कारुणिक है। ताराचन्द और कुंवर गले लगते हैं। मधुमालती ताराचन्द के पांव पड़ती है। उसे अपने ऊपर किये गये सारे उपकारों की स्मृति सजग हो उठती है। प्रेमा भी राजकुंवर के पांवों पर गिर कर अपने ऊपर किये गये उपकारों की याद करती है। फिर 'कोउ पूरब कोउ पच्छिम जाई।' राजकुंवर दो साल में कनैगिरि पहुँचता है। राजा भंडारी गुणनिधान तिवारी से नगर के बाहर उसकी भेंट होती है। राजकुंवर अपने माता पिता का कुशल क्षेम पूछता है। पहुँचने पर महल में बड़ा आनन्द मनाया जाता है। फिर राजतिलक कर दिया जाता है। इस प्रकार कथा का अन्त हो जाता है।

(ज) मधुमालती का आदि अन्त

चौबे जी ने लखनऊ से प्राप्त तीन प्रतियों के आधार पर मधुमालती के कुछ अंश अन्तिम भाग से उद्धृत किये हैं। किसी भी प्रति के प्रथम

पृष्ठ पर लिखे अंश का कहीं भी कोई उद्धरण अभी तक प्रकाश में नहीं आया। रामपुर वालों प्रति में भी यह पृष्ठ नहीं है। एकडला में प्राप्त प्रति का प्रथम पृष्ठ इस प्रकार है:—

श्री गणेशायनमः मधुमालती कथा

प्रेम प्रीति सुख निधि के दाता
दुइ जुग एकंकरी विधाता।
बुधि प्रगास नाहीं तुअताई
तुअ अस्तुति जो करौं गोसाईं।
तीनि भुवन चहुँ जुग तैं दाता
आदि अंत जग तोहि पै छाजा।
पंडित मुनि जन ब्रह्म विचारी
तुअ अस्तुति जग काहु न सारी।
एक जीभ मैं कैसे सारौं
सहस जीभ चहुँ जुग न पारौ।

तीनि भुअन घट घटन, अनौन रूप बेलास।
एक जीभ कहु ताहि के कैसे अस्तुति करै हवास॥

× × ×

अन्तिम पृष्ठ में निम्न अर्द्धाली है:—

उतपति जग जेती चलि आई
पुरुखै मारि ब्रज सती कराई।
मैं छोहन्ह येहि मारि न पारेउ
सहीं मरिहि जे कलि औतारेउ।
सत सुनौ संसार सुभाऊ
जो मरि जिये सो मरै न काउ।
सकति काल तेहि नियर न आऊ
सो जग पेम सजीवन पाऊ।
पेम अमिअ जे पाइअ बासा
सेस काल तेहि आवन सोसा।

जेहि भै पेम अमी सौं, परिचै करै क पार।
औती सहस दल कलो, सो त्रिअहिं पेम अधार ॥

× × ×

परन्तु परशुरामजी चौबे ने लखनऊ से प्राप्त प्रतियों के आधार पर मधु-मालती का अन्त निम्न अर्द्धाली में दिखाया है:—

अमर न कोऊ काहू के पारै
मरी जो जिअै तेहि जमु न मारै।
पेम की आगी सही जिन आँच
सो जग जनमो काल से बाँच।
पेम सखी जिनि आयु उधार
सतत मरै न कोहु कर मार।
एक बेर जो मरि जीउ पावे
काल बहुरि तेहि नेर न आवे।
जो जीअ आनहु काल भै पेम सरन करु नेम।
मिटै दुहु जग क भै, सब सार जग पेम ॥२॥

वास्तव में एकडला की प्रति में यह अर्द्धाली प्रथम अर्द्धाली (अर्थात् इस प्रति की अन्तिम अर्द्धाली) के पूर्व की अर्द्धाली है। चौबे जी ने इस अर्द्धाली को पत्र भेद के कारण बाद में रखा है या उस प्रति में ऐसे ही है, कुछ निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। किन्तु इतना कहा जा सकता है कि हेरफेर के बावजूद भी अन्तिम अंश एक सरिखे हैं। वास्तव में लखनऊ की प्रतियाँ पाठ भेद-निर्धारित में अधिक सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

(झ) मधुमालती का विस्तार

एकडला की प्रति में २७४ पत्र हैं। सम्पूर्ण कथा ३८ खण्डों में विभाजित है जिसमें ४४८ अर्द्धालियाँ हैं। प्रथम के कुछ पत्र जिनमें ईश्वर की बन्दना या निर्गुण ब्रह्म का निरूपण किया गया है इन खण्डों में सम्मिलित नहीं हैं। ये खण्ड क्रमशः—

चारि यार की सिफति, पातिसाहि की सिफति, गढ़ का बखान, तपाखंड, जन्मौती खंड, अपछरा खंड, सिंगार खंड, मधुमालती जागी सो खंड, बिछोह खंड, सहजा खंड, मनथा खंड, जोगी खंड, बोहित खंड, प्रेमा खंड, चित्रसारो खंड, पेमा का दुख खंड, कुंवर का दुख खंड, राकस खंड, राकस मारि पेमहिं लै चला, पेमा मधुमालती मिली, भाव खंड, कुंवर मधुमालती मिले, पंछी खंड, ताराचंद पंछी बझाई, ताराचंद मधुमालती लै चला, मधुमालतो पंछी ते आदमी भई, मधुमालती का बारहमासा, विक्रम चला पेमा पास, ब्याह खंड, दायज खंड, अहेरा खंड, सिंगार खंड, पेमा का ब्याह खंड, बहुर खंड, गौन खंड, समदन खंड, घिछोह खंड, ताराचंद अपने देश को चले हैं।

विभिन्न खण्डों का विस्तार पृथक-पृथक है—कोई कम कोई ज्यादा।

(ञ) मधुमालती में अन्तर्कथाओं का निर्देश

कुतुबन की 'मृगावती' में २४ से अधिक अन्तर्कथाओं का उल्लेख है जिनमें से ८ तो विशुद्ध रूप से प्रेमाख्यानक इतिवृत्तों की ओर संकेत करती हैं। जायसी के 'पद्मावत' में भी १६ से अधिक अन्तर्कथाओं का उल्लेख है (देखिये—प्रेमाख्यानक काव्य—डा० कमलकुल श्रेष्ठ पृ० ३१) मंझन भी अपनी कृति 'मधुमालती' में ऐसी कथाओं के निर्देश किये बिना कैसे रहते ? ये कथायें रामायण या महाभारत के पात्रों से सम्बन्धित हैं और इतनी प्रसिद्ध हैं कि पात्र के नाम स्मरण-मात्र से ही सम्पूर्ण कथा आंखों के सामने आ जाती हैं। राम, सोता, लछमन, रावन, हनुमान, दसरथ आदि के नाम या तो उपमा देते समय या रूपक की भांति प्रयुक्त हुये हैं। केदलीबन और सिंघलद्वीप निश्चित रूप से 'पद्मावती' की ओर संकेत करते हैं। हेतिम, करन, भोज तथा राजा बलि तो दान एवं त्याग की मूर्तियां हैं ही। हरिश्चन्द्र एवं युधिष्ठिर के नाम सत्यवादिता के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। सहदेव, अमरु एवं कोक के नामों से उनके पांडित्य की छाप लग जाती है। योगियों में श्रेष्ठ 'गोरख' सूफियों की लेखनी से बार-बार प्रस्फुटित होते रहते हैं। निम्न सूची में नामों के आगे कोष्टकों में पृष्ठ संख्या और पंक्ति संख्या दी जा रही है जिससे सरलतापूर्वक मूल पाठ में ढूंढ़ा जा सके :—

हेतिम, करन, भोज और बलि (८–१), हरिश्चन्द, दुदिस्टिल (८–२) विक्रम (८–३), सिंघलदीप (२३–१५), दशरथ (५३–४), गोरख (५५–११), केदली वन (५६–६), राजा नल (७२–१०), लखन (७४–२०), हनिवंत (७४–२१), सिया, राम, रावन (८७–२),

(ट) मधुमालती के सम्बन्ध में कुछ साहित्यिक मान्यतायें

१—मधुमालती का व्यापक प्रचार

पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ में (पृ० ९९) लिखा है कि 'पदुमावत' के पहले मधुमालती की बहुत अधिक प्रसिद्धि था। जैन कवि बनारसीदास का मधुमालती की पोथी बांचना और दक्षिण के शायर नसरती का 'मधुमालती' के आधार पर दक्खिनी में 'गुलशने इश्क' की रचना करना इस प्रसिद्धि के द्योतक हैं।

पं० परशुराम चतुर्वेदी ने 'सूफी काव्य संग्रह' (पृ० १२१) में लिखा है कि यह प्रसिद्धि है कि यह कवि (मंझन) बड़ा लोकप्रिय रहा। इसके पीछे उर्दू कवियों ने मसनवियों की रचना की। इसने प्रेमभाव को प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर जागृत कराया है। फिर आगे चलकर जान कवि की 'मधुकर·मालति' में यही दिखता है जिसका कथानक इससे भिन्न है।

इतना तो निश्चित है कि प्रेमाख्यानकों में और विशेष कर सूफी काव्य ग्रन्थों में 'मधुमालती' का विशिष्ट स्थान रहा है जिसके कारण समय समय पर 'मधुमालती' का उल्लेख विभिन्न कवियों ने किया है (देखिये —(ग) मधुमालती का उल्लेख) किन्तु मधुमालती नाम की एक से अधिक रचनायें होने के कारण किस एक की अधिक प्रसिद्धि रही, ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। फिर भी मंझन की मधुमालती का पक्ष सबल ही बैठता है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि का दूसरा कारण है विभिन्न कालों में की गई अनेक प्रतिलिपियों की प्राप्ति। एकडला नामक ग्राम में एक साथ सत्यवती, पदु-मावती, मधुमालती, मृगावती, माधवानल कामकन्दला तथा अन्य प्रेमा-

ख्यानकों की प्राप्ति इस ओर संकेत करती है कि 'मधुमालती' प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रमुख काव्य समझा जाता था। चूँकि एकडला के रावतवंश में सं० १८६०—१९०० के काल में राजसी-प्रवृत्तियों का प्राधान्य रहा अतः यह स्वाभाविक था कि तत्कालीन जनरुचि के अनुकूल प्रेमाख्यानकों का अध्ययन होता। यही हुआ भी। साथ ही साथ तुलसीकृत अनेक ग्रन्थों की प्राप्ति जनरुचि की भक्तिमयी प्रवृत्ति की सूचिका है।

दुख की बात है कि हमारे प्रदेश में हस्तलिखित प्रतियों का सम्यक रीति से संग्रह अभी तक नहीं हो पाया अतः ऐसी परिस्थिति में हम मधुमालती की व्यापक-ख्याति पर अधिक कुछ नहीं कह सकते। सम्भव है कि सरकारी प्रयासों के फलस्वरूप बहुत सी पुरानी प्रतियों के संकलन हो जाने के पश्चात् हमें इस दिशा में कुछ और जानकारी प्राप्त हो सके।

२ – मधुमालती की शिल्प-विधि

डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने अपनी थीसिस 'हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास' में (पृ० ३० पुस्तकाकार में प्रकाशन सन् १९५३) विभिन्न प्रेमाख्यानकों की कथा-शिल्प की चर्चा करते हुए, मधुमालती के विषय में भी कुछ लिखा है और अन्य प्रेमाख्यानकों की अपेक्षा उसमें कुछ विशिष्टतायें भी देखी हैं—

'पद्मावती, मृगावती, मधुमालती, इन्द्रावती आदि प्रेमाख्यानकों का कथा शिल्प प्रायः एक ही भांति है। क्योंकि इन सबमें मूल कथा प्रारम्भ से विभिन्न आरोह-अवरोहों के साथ अन्त तक चलती रहती है तथा अपने संयोग विन्दु पर आकर रुक जाती है। इनके पात्र, कथानकों की संधियाँ तथा इनके वर्णन सब प्रायः एक ही प्रकार हैं लेकिन मंझन की मधुमालती के कथा-शिल्प पर 'कथा सरित्सागर' और 'हितोपदेश' के कथा-शिल्प का प्रभाव है। अर्थात् मूल कथा के विकास के साथ साथ तमाम अन्तर्कथायें और उपकथायें उससे फूटती रहती हैं और इन कथाओं की चरम परिणति मूल कथाओं में ही होती रहती है।'

ज्ञात हो कि एक ओर जहाँ कथा शिल्प के विकास पर ध्यान देते समय हमें मधुमालती में उपरोक्त विशिष्टता प्राप्त होती है वहीं पर हमें अपने मस्तिष्कों से यह नहीं भुलाना चाहिये कि मधुमालती का महत्व कथा या

कहानी के रूप में नहीं वरन् काव्य-सौन्दर्य के लिए है। शुक्लजी की निम्न पंक्तियों से हम सहमत हैं:—

'आध्यात्मिक प्रेमभाव की व्यञ्जना के लिए प्रकृति के भी (अधिक) दृश्यों का समावेश मंझन ने किया है।

कवि ने नायक और नायिका के अतिरिक्त उपनायक और उपनायिका की योजना करके कथा को तो विस्तृत किया ही है, साथ ही प्रेमा और ताराचन्द के चरित्र द्वारा सच्ची सहानुभूति, अपूर्व संयम और निःस्वार्थ भाव का चित्र दिखाया है। जन्म-जन्मांतर और योन्यंतर के बीच प्रेम की अखंडता दिखा कर मंझन ने प्रेमतत्त्व की व्यापकता और नित्यता का आभास दिया है।'

कवि ने प्रेम के जिस शुद्ध रूप को पाठकों के समक्ष रखा है वह आत्मानुभूति द्वारा प्राप्त किया हुआ है। उसका कथन है

पेम दीप जाके हिय बरा, ते सब आदि अंत उजियरा।
बिरह जीव जाके घट होई, सदा अमर पुनि मरै न कोई॥

× × ×

जगत जन्म फल जीवन ताही, पेम पीर जिय उपजा जाही।
जेहि जगत बिरह दुख दैऊ, त्रिभुवन केर राउ सो भयऊ॥

यही सूफी मत का आदर्शवाद है जो सगुण भक्ति की कोरी उपासना से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। न तो यहां 'राम भजन' की जल्पना है और न मूर्ति-पूजा की कल्पना। संयोग और वियोग या प्रेम एवं प्रेमजन्य विरह की सच्ची अनुभूति ही मानों अमरत्व की प्राप्ति हो। कथा या कहानी तो उन्हीं स्थापनाओं के लिये आधार स्वरूप है अन्यथा सम्पूर्ण काव्य का लक्ष्य ही प्रेम सम्बन्धी तत्वों का दिग्दर्शन है। इसमें मंझन जायसी से बढ़कर है क्योंकि जायसी ने जिस प्रकार रूपक बांध कर सम्पूर्ण कथा को माध्यमिक या रहस्य-मय बनाने की कोशिश की है मंझन ने उसका बहिष्कार कर कथा को सत्य रूप में प्रस्तुत किया है और उन्हें जो भी संदेश देने थे उन्हें खुलकर रख दिया है। इसे हम मंझन की महानता कहेंगे। किन्तु जायसी का साहित्य में आज इतना सम्मान है कि सम्भवतः हमारी दलीलों पर विज्ञ पाठकगण हंसेंगे। किन्तु यथार्थ की आंखों पर कब तक पट्टी चढ़ी रखी जाय? अभी तक

मंझन के काव्य को परखने का अवसर किसे मिला ? न तो मधुमालती का कोई संस्करण ही प्रकाशित हुआ और न शिक्षित समाज द्वारा मंझन पढ़ा ही गया। स्फुट उद्धरणों से ही साहित्य के विद्यार्थी परिचित हैं। यह जान लेना कि मधुमालती अवधी भाषा में लिखा प्रेमाख्यानक काव्य है जो मसनवी शैली के आधार पर पांच चौपाई और एक दोहा--कुल मिलाकर सात-सात पंक्तियों की अर्द्धालियों में लिखा गया—न तो हमारी मानसिक चेतना का उन्नायक है और न प्रायोगिक क्षेत्र से परिचित होने का उपकरण। आज के विज्ञानवादी युग में प्रत्येक मनुष्य अपने पड़ोसी के हृदय की भावनाओं से परिचित होना चाहता है और इसी परिचय द्वारा विश्वबन्धुत्व की कल्पना भी की जा रहा है। अतः हमें प्रेमतत्व को साकार करने के लिये प्रेमाख्यानकों का अध्ययन करना पड़ेगा। यही समय है जब हम काव्यों में निहित मानवीय तत्वों को परखकर उनके अनुकूल जीवन को बनाने का प्रयास करें। संभावना यही है कि ये सारे के सारे प्रेमाख्यानक काव्य हमारी आज की अणु-भट्टी में भी खरे उतरें और विश्वबंधुत्व या विश्व मैत्री को सुदृढ़ करने में ब्रह्मास्त्र सरीखे कारगर हों।

मंझन के काव्य 'मधुमालती' में कोई बनावट नहीं। यों, कथावस्तु काल्पनिक तो है ही। भाषा की दृष्टि से भी यह सहज, सुबोध एवं गम्य है। जायसी के 'पद्मावत' के समान इसकी किसी 'संजीवनी' या व्याख्या या टीका की आवश्यकता नहीं। जनता के हृदयों के समीप ही नहीं समीपतर होने के कारण अत्यन्त प्रभावशालिनी है—मंझन की मधुमालती। जायसी ने पद्मावत की भाषा को अधिक साहित्यिक एवं अलंकारिक बना दिया है।

३ मंझन की अन्य सूफियों से पृथकता

कुतुबन और जायसी तथा अन्य सूफी लेखकों ने संयोग के पश्चात् स्त्रियों या रानियों को सती होते अंकित किया है किन्तु इस बात में मंझन सर्वथा भिन्न हैं। उन्होंने मधुमालती को मनोहर से मिला तो दिया है किन्तु उसे सती नहीं होने दिया। इसका कारण स्वयं उन्होंने इस प्रकार दिया है :—

'उत ति जग जेती चलि आई,
पुरुष मारि ब्रज सती कराई
मैं छोड़न्ह यहि मार न पारेउ',
सहौं मरिहि जो कलि औतारेउ

सति सुनौ संसार सुभाऊ,
जो मरि जियै सो मरै न काऊ।'

इतना बड़ा आदर्श होते हुये भी मंझन के पूर्ववर्त्ती कवियों ने उसे इतनी स्थिरता से पुष्ट नहीं किया। मंझन का अभिमत है कि कलियुग में सभी प्राणी नाशवान हैं अतः मधुमालती को मारने का अधिकार वह अपने हाथों क्यों ले, वह तो स्वयमेव मर जावेगी। किन्तु सत्य और प्रेम ये अनादि और अनन्त हैं। मंझन में मनुष्य का कितना प्रेम विद्यमान है, इसी से आंका जा सकता है।

(झ) जेठ वर्णन

जेठ सखी मोहि निस दिन दहना
सीतल सेज साँइ जेहि लहना ॥

× × ×

एक वियोग दूसरे बनवास, तिसरे कोइ न साथ।
चौथे रूप बिहूनी, मरौं तो म्रित्यु न हाथ ॥

पाठक यह अनुभव करेंगे कि यदि उपरोक्त अंशों की तुलना रामायण में वर्णित सीता के अशोक वाटिका में हनुमान से विरह वर्णन अथवा रामचन्द्र जी का सीता हरण के पश्चात् अरण्यकांड में वियोग-अनुभव से की जाय तो किसी भी दशा में वे कम न उतरेंगे। 'चहुँ दिसि घहरि घोर घहराने' में वही लालित्य है जो 'दामिनि दमक रही घन माँहीं' अथवा 'कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि' में है। 'कुबलय बिपिन कुन्त बन सरिसा' की बराबरी की पंक्ति 'मोहि तन आगि बिरह परजारा, सरद चाँद मोहि सेज अंगारा' है।

''धन जोबन दुपहरि की छाँहा' अथवा 'जोबन तुरे जात दौराये बहुरि न गिरै आय पछताये' आदि उपमायें इतनी सबल हैं इनकी बराबरी की उपमायें पूरे हिन्दी काव्य क्षेत्र में न मिलेंगी। फिर भी हम 'बारह मासा' को कमजोर कहें, तो हमारी न्यायकारिणी शक्ति या बुद्धि की बलिहारी!

हाँ हम यह मानते हैं कि अन्य सूफियों के विपरीत इस बारहमासा में एक वैचित्र्य यह है कि अषाढ़ से प्रारम्भ न होकर सावन से प्रारम्भ हुआ है और वर्णन सूक्ष्म है, अधिक विशद नहीं। प्रसंग से बाहर न जाकर संकुचित क्षेत्र में ही बारामासा समाप्त हो जाता है। किन्तु सम्पूर्ण बारामासा, कुछ पंक्तियों को छोड़ कर अत्यन्त मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक है।

२—संयोग के कायिक-पक्ष के अभाव की बात समझ में नहीं आती। सम्पूर्ण कथा ही संयोग को लक्ष्य में रख कर लिखी गई है फिर उसमें भी अभाव ? हाँ, वह वीभत्स रूप जिसके चित्रण में अधिकतर सूफियों को मजा मिलता था, मंझन की मधुमालती में अल्प मात्रा में है। वैसे हम कोई भी समाजिक पुस्तक इतनी अश्लील नहीं देखना-सुनना चाहते जिससे संस्कार ही दूषित हो जाय अतः यदि अश्लील अंशों का मधुमालती में अभाव है तो खटकने की बात ही कैसी ? संभवतः मंझन ऐसे भौतिक-मिलन या संयोग के पक्ष में नहीं हैं वे तो प्रेम की दीपशिखा को अक्षुण्ण मानते हैं। उनके काम-क्रीडा के वर्णन में भी मर्यादा है।

४ मंझन की तथाकथित काव्यगत दुबलतायें।

यद्यपि डा० कमलकुलश्रेष्ठ ने जायसी के आगे मंझन के तत्व ज्ञान पर कुछ भी कहने का प्रयास नहीं किया किन्तु अनायास ही, जहाँ उन्होंने जायसी को मंझन से श्रेष्ठ बताने की कोशिशें की हैं, कुछ ऐसे विचार उनकी कलम की नोंक से निकल पड़े हैं जिनके उल्लेख आवश्यक हैं:—

१. "मंझन की मधुमालती का बारहमासा कमजोर है।" (हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पृ० ३१४)।

२. "संयोग के कायिक-पक्ष का मंझन में अभाव है।" (वही पृ० ३००)।

हमें इस सम्बन्ध में यही कहना है कि मंझन कुतुबन का सच्चे अर्थ में पिछलगुवा है। जायसी की भाँति 'हम सब कबिन केर पिचलगुवा' नहीं। यदि मंझन ने जायसी की 'पदुमावती' को देखा होता तो संभवतः आलोचक महोदय को मंझन का बारामासा कमजोर न दिखाई पड़ता! फिर जिसकी आँखों में जायसी की पद रज का अंजन लगा हो उसे दूसरे की वस्तु क्यों अच्छी लगने लगी ? संभवत उन्हें यह ज्ञात नहीं कि 'मुण्डे मुण्डे मतिभिंन्ना, तुण्डे तुण्डे सरस्वती। यदि जायसी के ही अनुरूप बारामासा मंझन लिख

पाता तो कवि की स्वच्छन्दता और विशिष्टता कहाँ रह जाती ! आइये, मंझन के बारामासा की पंक्तियों पर निष्पक्ष रीति से विचार-विमर्श किया जाय:—

(क) सावन का वर्णन

सावन घटा जो घन घहरानी
सौंरि नेह चखु अंगवा पानी।
अगम दुख दिन जात न काढे
लोयेन गगन जमुन मैं बाढ़े॥
रकत आँसु धर परे जो टूटी
सावन भये ते बिरह बहूटी।
मैं पिक रूप फिरी सब बारी
नैन रकत तन विरहे जारी॥

सावन घटा तरंग जल, दामिनि छया अनंत।
कठिन प्रान जो घट रहत, सखि हे बिछुरे कंत॥

(ख) भादौं का वर्णन

चहुँ दिसि घुमरि घोर घहराने
मैं निजु प्रान गौन कै जानै।
भादौं निसि जेहि पीउ न पासा
सखि तेहि जीवन कौन आसा॥

मैं अरन्य बन एकसरि, बिरह अधिक तन पीर।
निलज प्रान अति पापी, तजत नाहिं जो शरीर॥

(ग) कुँवार का वर्णन

सखी हे घट मो विरह दुख, वकति न आवै मुक्ख।
औ तापर लोयन चुवै, लिखै न पावै दुक्ख॥

(घ) कातिक वर्णन

मोंहि तन आगि विरह पर जारा
सरद चाँद मोंहि सेज अंगारा।

सरद रैनि तेहि सीतल, जेहि पिउ कंठ नेवास।
सबके परब देवारी, मोहि सखी बनवास॥

(ङ) पूस वर्णन

पूस रैनि अति दूभर भारी
मैं अवला नहिं जाइ संभारी।
किमि निरबहै जुवति की जाती
पहरहिं पहर चारि जुग राती॥
सब चित चाउ जो प्रीतम केरा
मैं अरन्नबन वृत्त बसेरा॥
आइ पूस रितु बेलसै नाहा
धन जोबन दुपहरि की छाँहा।
जोबन तुरै जात दौराये
बहुरि न फिरि आये पछताये॥

(च) माघ वर्णन

विरह डार पर बैसी बाला
रैनि गँवावै बरिसै सिर पाला।
माघ रैनि जो पिउ बिन जाही
मरना भला न जीवना चाही॥

सुख सखि पीउ संग गा, दुखजे रहा मोहिं पासु।
तापर काँतो विरह कै, खन्न हाड खन मासु॥

(छ) फागुन वर्णन

फागुन सखी विपति सुनु मोरी
विरह आगि जरि भौजे होरी ।

× × ×

जगत माँह अस बिछु न होई
जाहि डारि मैं लाग न रोई ।

(ज) बैसाख वर्णन

जेहि सुख सेज सखी है कन्तू
तेहि आनन्द बैसाख बसन्तू ।

× × ×

लज्या विहित मदन भौ गाता
सगरो सिस्टि केर अहिवाता ।

× × ×

सुनत सुनत रस भाव क बाता
जागा मदन बिआपा गाता
मदन कुसुम ग्यान बिगासा
जाके यह जग भोग बिलासा
कामचेष्टा ब्यापेउ गाता
रति पति डरा सुने रसबाता
राते नैन निलज भा नैना
दुइ दिस रची काम की सैना
संकर जीउ जाहि ते हारा
तासौं को जग जीतै पारा

+ + +

वीर राग मनमथ बिगासा
धुकधुकि जीउ भे सांसा

काम बान बेधा न संभारेसि
बर कामिनि उर हाथ पसारेसि ॥

\+ \+ \+

(ठ) मंझन के संदेश

(अ) संयम

गिरते हुए मनुष्य को बचा लेना परोपकार है। मंझन ने कामान्ध ंवर को मधुमालती के उपदेशों से सचेष्ट कर पहले भौतिक सुख से तो किया किन्तु अन्त में उसे अलौकिक प्रेम की प्राप्ति करा दी है। लती राजकुंवर को अपनी सतीत्व-रक्षा की याद दिलाती हुई रोकती

कहेसि कुंवर एक कर्म न कीजै
माता पितहिं अकलंक न दीजै

तिल एक सुख के कारण, जनि आपुहिं नसाउ।
त्रिअहिं थोरे अपकरम, जन अपकीरति पाउ ॥

\+ \+ \+

पाप पंथ चढ़ि जे सत राखा,
सुरस अमी रस ते पै चाखा।

\+ \+ \+

प्रीति तो ऐसी कीजिये, आदि अंत जेहि नेह।
जन्म जन्म निरबाहौं, तौ यह जन्म संदेह ॥

\+ \+ \+

भारतीय नारियों का यही आदर्श रहा है। मंझन ने इस तत्व को समझ जायसी ने रूप को बाजारू वस्तु बनाकर पदुमावती पर अलाउद्दीन व

आसक्त दिखाया है। उसे सफलता मिलती है या नहीं—यह विचारणीय नहीं। विचारणीय तो यह है कि पदुमावती में सतीत्व की भावना होते हुये भी उसे उसके पति के साथ विलासिता का वह सुअवसर प्रदान नहीं किया गया, जो अलाउद्दीन के साथ उसके विजयी होने पर दिया जाता। इस प्रकार की कल्पना ही न जंचने वाली और खरी उतरने वाली है। 'पदुमावती' को अपने पति के साथ अधिकाधिक रहने का सुअवसर प्रदान कर यदि उसके आदर्श नारी तत्वों का निरूपण किया जाता तो भारतीय-नारी-समाज के लिये जायसी की अनुपम देन होती। वैसे तो राजपूती इतिहास ही ऐसे आक्रमणों एवं जौहरों से भरा पड़ा है किन्तु काव्य का मुख्य उद्देश्य न तो इतिहास का पिष्टपेषण है और न अलंकार दिग्दर्शन। ऐसे मानवीय तत्वों का उभाड़ एवं चित्रण, जो शाश्वत हैं, उसका लक्ष्य है।

रामायण की महत्ता नारी वर्ग के लिये इसलिये है कि उसमें सीता-अनुसूया की जो वार्ता है वह युग युगों के लिये स्त्रियों को सचेष्ट करके उचित मार्ग पर चलने की शिक्षा देती रहेगी। 'छण-सुख लाग जनम सत कोटी, जो न समुझ तेहि सम को खोटी' के ही अनुरूप मधुमालती का राजकुमार से आग्रह कितना आदर्शवादी है। नारीत्व का यही आदर्श है और यही मर्यादा। आज के इस उन्नत समाज में ऐसे ही आदर्शों की आवश्यकता है। प्रेमी-प्रेमिकाओं के युग्म एक ओर जहां प्रेम की अग्नि में जलते-भुनते रहते हैं वहीं यदि उन्हें अनधिकृत-संयोग का अवसर प्राप्त हो जाता है तो वे संभोग से वंचित नहीं रह पाते। यदि मंझन की मधुमालती से किसी भी प्रकार की शिक्षा ली जा सकती है तो वह है कुमारियों के दृढ़-व्रत एवं आत्मनिष्ठ होने की। चरित्र निर्माण एवं उन्नयन में मधुमालती विशिष्ट योग देगी ऐसी हमारी धारणा है।

(ब) संवेदना

मंझन के काव्य का जो दूसरा पक्ष है, वह है हृदय की संवेदना। जिस प्रकार शकुन्तला के विदा होने पर कण्व ऋषि के आश्रम का कण-कण परितप्त एवं व्याकुल हो उठा था उसी प्रकार मधुमालती की विदाई के समय परिजन एवं पुरजन अभितप्त हो उठते हैं। मधुमालती भी अपनी मातृ-भूमि को त्यागने में संकोच करती है, उसे घर का कोना से कोना प्रिय दिखने लगता है और वह उनसे अपना सम्बन्ध नहीं तोड़ना चाहती। किन्तु

विधि का विधान। वह सोचती है कि यौवन के कारण ही यह बाधायें समक्ष आईं अन्यथा यदि वह स्वतन्त्र होती तो शायद विदा न होती। सचमुच विदाई के अवसर पर सभी विवाहिताओं की यही मनोदशा होती है।

सुना सखी मधुमालती चली
सुनते मया मोह जिउ जरी।
जो जैसहिं सो तैसहिं आई
रोइ सखी सब अंकम लाई॥
रोवै सभ गले लाइ सहेली
सौरि सँग साथ जो खेली।
काहू सुख बाले संग माना
वोह सुख यहु दुख दुनौ विसाना॥
सुख अंम्रित रस खेलि जो पिया
वोह सुख यहु दुख कैसे जिआ।

+ + +

बरु संतति विधि राखत बारे
सकति आनि तिन्ह जोबन घाले॥
जो न रहत जोबन तन गोवा
हम दुह होत न ऐस बिछोवा।
जोग जोग मिलत पिआरा
नातरि जोबन जन्म असारा॥

+ + +

जौ बिछुरम दुख जनतिउँ एहा
कत करतेउ बालापन नेहा।

+ + ×

देखि कुँअरि के कुटुम्ब बिछोवा
पर आपन जे गहबरि रोवा॥
जेइ देखा सो हिये कर रोवा
नैन सलिल रकत तन धोवा।

पाथर केर हिया जेहि केरा
आँसु न रहा नैन तेहि वेरा ॥

दूनौ चलिहहिं ससुरे, राखे रहहि न काउ।
चलिहि कंत संग लै कै, हम कछु कहत न भाउ ॥

+ + +

सुनत गौन मधुमालती, परा महा असरार।
राजकुँवर तब रोइ कै, समदा सब परिवार ॥

+ + +

निशि सोवै जहं राजदुलारी
समदैं पाँव परी चित्रसारी।
निसरत जीउ थके मधु बोला
तौ समदै गोव लाइ खटोला ॥

सब घर बार समदि कै, पुनि समदै परिवार।
समदै सब जन परिजन, सो किछु जग बेवहार ॥

+ + +

मधुमालती छाँड़ा घरबारू
छाँडा सब परिजन परिवारू।
छाँड़ी पुतरी भरी पेटारी
छाँड़ी सब संग खेलनिहारी ॥

+ + +

कर्म न होइ माय बाप के हाथे
भुज जहि लिखा दैअ जो माथे।
माता पिता कर एतनै अहई
सुत दुहिता प्रति पारत अहई ॥

+ + +

जननि कंठ नहिं छाँड़ै बारी
अधिकौ दै दै अंकम सारी।

जननी असीस दीन्ह मन जानी
सदा सोहाग राज घर रानी ॥
\+ + +
बहुरि पिता पाँ लागी बारा
राय हेतु सौं अंकम सारा ।
राजा चखु नहि रहा पनारा
कहै बिधि कत जग धी औतारा
\+ + +
देखि कुंअरि कै कुंटुब बिछोवा
सगरो लोग नग्र कै रोवा ॥
रोवै नग्र छतीसो जाती
बारबूढ़ रोवैं अहिबाती ।
नग्र क जीव काढ़ि कै लीन्हा
बिना जीव कया सून सब कीन्हा ॥

(स) माता की शिक्षा पुत्री के प्रति

तीसरा सन्देश जो मंझन सम्पूर्ण काव्य के माध्यम से भारतीय-समाज को देना चाहते हैं वह है माता की पुत्री को शिक्षा। आज भी अपनी लड़कियों को विदा करते समय मातायें सजलनयन हो पति सेवा का प्रथम पाठ पढ़ाती हैं। वे उसे कहाँ तक कार्य रूप में परिणत करती हैं कहा नहीं जा सकता किन्तु शिक्षा का अक्षर-अक्षर अमूल्य रहता है और यदि वे उसे सुनकर सच्चा अर्थ समझ लेती हैं तो अपना ही नहीं आने वाली पीढ़ियों का भी भविष्य उज्ज्वल कर देती हैं। वर्तमान युग में शिक्षा और विलम्ब से ब्याह होने के कारण सम्भवतः ऐसे उपदेशों की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती किन्तु मातायें अनुभवगम्य होने के कारण सदैव ही मान्य रहेंगी और उनकी शिक्षायें विपत्ति के समय आलोकस्तम्भ।

सांई सेवा करब चित लाये
जनि डोलै चित दाँयें बायें।

महादुष्ट जो पुरुष को जाती
चित परखत रहबै दिन राता ॥
कहेहु सेवादि न जानेहु जैसे
जागरी रैनि गोड चापब वैसे ।
जौ धै बांह उलारै संगा
बेलसि सेज सुख मानेहु रंगा ॥

\+ \+ \+

साईं सेवा किये सुख होई
साईं सेवा दुख जा सोई ।

\+ \+ \+

साईं सेवा जीवन राखेहु
पूछत बात मधुर सौं भाखेहु ।

\+ \+ \+

सोइ सुहागिनि दुइ जिव नाहा
जो सेवा कै राधा नाहा ।

\+ \+ \+

साईं सेवा कीजिये, कै जिव अपने हानि ।
साईं सेवा जो जिउ बँधा, सो चारौं जुग रानि ॥

\+ \+ \+

(द) प्रेम

'तसव्वुफ अथवा सूफीमत' (१६४५) में श्री चन्द्रबली पाण्डेय की कुछ स्थापनाओं पर यहाँ विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है । पृष्ठ ३,४ पर पाण्डेय जी लिखते हैं: —

"जो जन्म से मुसलमान और कर्म से सूफी हो, उसे ही सूफी माना जाय...... ...इस प्रकार से हिन्दी के सूफियों में दो वर्ग निकल आये और

उनके नाम भी सूफी परम्परा के अनुकूल ही रख दिये गये, 'सालिक' 'आजाद'। प्रथम से हमारा तात्पर्य उन सूफियों से है जो वस्तुतः स्वतन्त्र विचार के थे और अपने अनुभव के सामने किसी कुरान-पुरान अथवा विधि-विधान को कुछ नहीं मानते थे और दूसरे से उनसे जो इसलाम के पक्के भक्त पर उदार और हृदयालु थे और कुरान की बात हृदय में भी खूब देखते थे। हम इन्हीं इसलामी सूफियों को सच्चे अर्थ में सूफी कह सकते हैं, ऐसी बात नहीं। हाँ, तसव्वुफ का इसलामी प्रचार इन्हीं में है, इसमें सन्देह नहीं।

पुनः पृष्ठ ८२ पर त्याग एवं उपासना के स्रोतों पर पाण्डेय जी का अभिमत है कि:—

"जकात में त्याग का संकेत पा सूफियों ने त्याग की ऐसी धारा बहा दी जिसमें इसलाम के सारे ध्येय बह गये। सूफियों ने जीविका के लिये भी काम या कुछ अर्जन करना छोड़ दिया। सूफी अपनी धुन में मस्त रहे। उन्होंने अपने आप तक को उस प्रियतम के नाम पर बख्श कर दिया।.........सौम या रोजा में सूफियों को उपासना का ढंग मिला। उन्हें प्रियतम के वियोग में तपना भाने लगा। भजन उनका भोजन हो गया।...........सौम के तिल को सूफियों ने ताड़ कर दिया। सूफी उपवास मात्र में सत्वशुद्धि समझने लगे।"

सूफियों में चाहे मौलिक रूप से अथवा कृत्रिम रूप से, कहीं से भी त्याग एवं उपासना की भावनायें आई हों, इतना तो निश्चित है कि ये दोनों भावनायें सूफीमत की आधार-शिलायें हैं। इसी पृष्ठभूमि में प्रेम और विरह के अनुभव किये जा सकते हैं, जिनसे सारे सूफी ग्रंथ ओत-प्रोत हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सूफी मन की शुद्धि पर बड़ा जोर देते। वैसा करने पर उनकी सहज प्रवृत्ति ईश्वर के लिये जागरूक होती। फिर विभिन्न अवस्थाओं को पार करता हुआ तद्जन्य प्रेम न जाने कितने-कितने आलम्बन बनाता, किन्तु उन सबको प्रेय परमात्मा ही होता। सूफी काव्यों के कथानकों की विविधता से ही इस विषय की विराटता का पूर्व-परिचय मिल जाता है।

"सूफीमत और हिन्दी साहित्य" (१९५५) में डा० विमल कुमार जैन ने (पृ० १८४-८५) सूफियों की साधना में प्रेम को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। वे चार प्रकार के प्रेमों की व्याख्या करते हुये प्रायः चतुर्थ प्रकार से ही सम्पूर्ण सूफी काव्यों में प्रेम का आयोजन बताते हैं। वे पद्मावती में गुण

श्रवण, चित्रावली में चित्र दर्शन, अनुराग बाँसुरी में मोहन माला का दर्शन, इंद्रावती में स्वप्न दर्शन एवं मधुमालती में दर्शन से प्रेम का उद्भव दिखाते हैं। अन्त में वे यह भी लिखते हैं कि इन काव्यों में प्रेम-कथायें अवश्य लिखी गई हैं परन्तु इनसे ईश्वरीय प्रेम की ही व्यंजना की गई है। निश्चित रूप से, सूफियों में प्रेम की अनुभूति गहरी है।

प्रेम-प्रस्फुटन मनुष्य या स्त्री जाति के जीवन में समान रूप से एक नवोन्मेष का युग होता है। उसकी उत्पत्ति वय के अनुसार हृदयस्थल में स्वतः होती है, किन्तु उसमें प्रखरता लाने वाले अनेक कारण बन जाते हैं। परन्तु प्रेम की धारा किन्हीं भी व्यवधानों को मार्ग में न तो देखना चाहती है और न उन्हें अछूता छोड़ती ही है। किन्तु, वह यौवन की नदी, दोनों तटों को तोड़कर सीमा उल्लंघन नहीं करना चाहती। उसमें प्रखरता के साथ संयम रहता है। यही त्याग है। त्याग की भावना प्रेम को नैसर्गिक बना देती हैं। प्रेमी के लिये बड़ा से बड़ा त्याग विजय की चरम सीमा में गणित होता है। एकबार प्रेम की चंग चढ़ी कि उसका उतरना कठिन हो जाता है। साधक उसी में मादक बन जाता है। अहर्निश प्रेम की ही धुन रहती हैं। एक अवस्था ऐसी भी आती है जब अभीष्ट अत्यन्त समीप दिखता है प्रेमी बाग बाग होने लगता है, किन्तु दूसरे ही क्षण वह प्रतिभा विलुप्त भी हो जाती है। फिर भी प्रेमी में असन्तोष के लक्षण नहीं दिखाई देते। अपनी साधना को वह और तीक्ष्ण बनाता है, अन्त में उसे प्रीतम के संयोग का अवसर प्राप्त होता है। उस समय उसे अपनी अवस्था का ज्ञान नहीं रह जाता, वह उसी में लीन हो जाता है। यही संयोग-पक्ष की चरम गति है। इसी के लिये प्रत्येक प्रेमी-साधक विह्वल रहता है। चाहे यह प्रेम या प्रेमी-जन शुद्ध लौकिक हो चाहे अलौकिक। समान दशाओं से होकर उन्हें गुजरना पड़ता है। वह प्रेम ईश्वर के प्रति हुआ तो, जनकल्याण के लिये समक्ष वृहत्तर क्षेत्र रहता है परन्तु यदि वासनामय एवं व्यक्तिवादी हुआ, तो निजोद्देश्य की पूर्तिमात्र। 'मधुमालती' में मंझन ने प्रेम की प्रखरता, त्याग की भावना, उसकी निर्बाध-गति एवं उसकी परिणति पर विशद रूप से चित्र प्रस्तुत किये हैं।

प्रेम की प्रखरता के आगे प्रेमी अपने शिरश्छेद तककी परवाह नहीं करता:—

प्रथमहिं सीस हाथ कै लेई, पाछे वहि मारग पगु देई।

७

प्रेम की लपेट में आकर राजपाट, यौवन, जीवन—सभी का मोह दूर भाग जाता है:—

राजपाट जो परिहरी, जिउ जोबन खोइ ।
चढ़ा प्रेम पंथ पेमा, दहुँ आगे का होइ ॥

× × ×

मंझन चढ़िके कै पेम पंथ, करिअ न जिव कर लोभ ।
प्रीतम काज जो जिउ घटै, सोइ दुऔ जुग सोभ ॥

प्रेम के पुजारी को प्रीतम का वियोग पल-पल दुखदायी होता है किन्तु उसकी प्राप्ति के बिना उसके प्राण नहीं निकल पाते, क्योंकि उसके प्राण प्रेम के तानों-बानों में उलझे रहते हैं:—

प्रेम वियोग न सहि सकौं, मरौं तौ मरे न जाइ ।
दुइ दूभर मो हौं परी, दगधि न हिये बुताइ ॥

× × ×

कहै प्रीतम लाग दुख सहिये, दस गुन आगे लाहा लहिये ।
यह सुख लागि सहस दुख सहिये, सहस सुख एक दुख निरबहिये ॥

प्रेम छिपाने की वस्तु नहीं । अन्ततः आँखें सारा भेद बता देती हैं:—

राखे प्रेम न रहा छुपाना, उमड़े नैन जगत सब जाना ।

अन्त में जब संयोग की बेला आती है तो प्रेमी आत्म-विभोर हो जाता है । उसे विश्वास ही नहीं बँध पाता कि उनका वह मिलन स्थायी होगा । अज्ञात कारणों से वह भयभीत रहता है । किन्तु इसी अनिश्चितता में भी वह तादात्म्य स्थापित कर लेता है । उसे अपने अंगों, यहाँ तक कि अपनी स्थिति का पता नहीं रह जाता:—

मिलहु आजु हमें गल बाहीं, काल्हि आजु अस होइ कि नाहीं ।

× × ×

प्रान एक भौ एक जो देही मिलते दूनौ प्रेम सहेली ।
बिरहे बिछुरे अहे जो ओऊ, साँते पियत अमीरस दोऊ ॥

× × ×

बिबि सरीर एकै भै गैऊ, बैंठे पहर एक दुइ भयेऊ ।

× × ×

अधर अधर उर उर सौं, मेरै रहे मुख सोइ ।
देखि, समुझ ना मन परै, दहु हहिं एक कि दोइ ॥

इस प्रकार के तादात्म्य का सफल चित्रण जायसी ने भी 'पद्मावत म (जायसी ग्रंथावली—डा० माता प्रसाद गुप्त, पृ० ३२१) किया है:—

मन मन सौं तन सौं तन गहा, हिय सौं हिय बिच हार न रहा
दुइ घट मिलि एकै होइ जाहीं, अैस मिलन तउहूँ न अघाहीं ।

प्रेम के रङ्ग में रँग जाने पर भूख और नींद किस प्रकार हर जाती है और प्रेम पंथ पर चढ़ने से किस प्रकार मोक्ष हो जाता है इसका भी जायसी ने मार्मिक चित्रण किया है—

जेहि के हिये प्रेम रंग जामा, का तेहि नींद भूख बिश्रामा ।
× × ×
प्रेम पंथ जो पहुँचे पारा, बहुरि न मिलै आइ एहि छारा ।

कुतुबन ने 'मृगावती' में प्रेम की नैसर्गिकता एवं मिलन के आह्लाद का सफल चित्रण किया है:—

बिसमौ लाज हरख नहिं रहा, प्रेम आय चित चिंता गहा ।
× × ×
प्रेम सुरा जिन अंचयो, तिन्हैं कुछौ नहिं सुधि ।
× × ×
कहिया प्रीतम पेखिहौं दुइ लोयन बिहसंत ।

उपरोक्त उद्धरणों के विवेचनों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सूफियों ने समान रूप से प्रेम की नैसर्गिकता, उसकी त्याग-भावना, उसकी प्रखरता एवं उसकी परिणति पर अपने विचार व्यक्त किये हैं । केवल भिन्न-भिन्न कालों में होने के कारण उनकी वाणियों के स्वर कुछ भिन्न हैं, किन्तु उन सबों में एक-सा सन्देश है ।

प्रेम की महिमा अकथनीय है । मानव-विकास के आदि काल से ही प्रेम की व्याख्या ने विद्वानों एवं मूर्खों को समान रूप से आकृष्ट किया है, और उन्होंने अपने अभिमत भी प्रकट किए हैं । वैज्ञानिक एवं भौतिकवादी समाज की भी यही रीढ़ है । हाँ, दृष्टिकोणों में भेद एवं झुकाव स्वाभाविक है । यही कारण है कि आज भी प्रेमाख्यानक काव्य हमारे मनों के इतने अनुकूल एवं

सन्निकट हैं। उनमें मानवीय तत्वों का विश्लेषण एवं चित्रण है जो सनातन से हमारी सम्पत्ति के रूप में चले आ रहे हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन्हें अधिकाधिक पढ़ें और समझें।

(य) विरह या वियोग

प्रेम प्राप्ति का चरम है तादात्म्य; किन्तु संयोग की घड़ियाँ अपरिमित नहीं होतीं। यदि ऐसा होता तो सृष्टि की प्रगति एकांगी होती। अतः संयोग के बाद वियोग या वियोग के बाद संयोग – यह क्रम चलता रहता है। जहाँ संयोग आत्म-विभोरता एवं सुख देने वाला है, वहीं वियोग आत्मग्लानि, स्मरण एवं दुख का उत्प्रेरक। जहाँ प्रेम की कल्पना मात्र हुई कि वियोग उसमें अन्तर्हित हुआ। चाहे प्रारम्भ में अभीष्टपूर्ति के पूर्व यह दुख भोगना पड़े, चाहे बादमें, दोनों में अन्तर केवल इतना है कि पहले दुख सह लेने पर संयोग-जन्य सुखानुभव के समक्ष पुराने दुख नगण्य जान पड़ते हैं। किन्तु, संयोग के पश्चात् विघटन की पूर्वकल्पना ही दहला देने वाली होती है। प्रेमी को फिर अपने इष्ट की प्राप्ति के लिये विकल रहना पड़ता है। परन्तु क्रम के वृत्त में संयोग-वियोग साथ-साथ एवं पास-पास घूमेंगे। संयोग दो वियोगों के बीच या वियोग दो संयोगों के बीच पड़ सकता है। यहि सृष्टि का नियम भी है और इसीलिये सूफियों ने बड़े ही विनीत भाव से वियोग-जन्य दुख या विरह को एक नैसर्गिक देन समझ कर उसे सहने का विधान-सा बना लिया है। उनका विश्वास है कि विरह की ज्वालाको एक बार सह-लेने पर आगे सुख ही सुख मिलेगा। उनकी यह भी धारणा है कि जिन्हें प्रेमपंथ में वियोग या विरह नहीं हुआ, उनका जीवन अधूरा है। विरह-जन्य दुखों को वे ईश्वर-प्रदत्त समझते हैं। और विरह को 'राजा' की संज्ञा से विभूषित करते हैं। वे दूसरों की विरहावस्था पर वेदना एवं सद्भावना प्रकट करते हैं। कुतुबन, जायसी और मंझन तीनों ने समान रूप से विरह की व्यवस्था की है। 'मधुमालती' में मंझन के तत्संबंधी दृष्टिकोण का परिचय निम्न उद्धरणों से मिल जावेगाः—

विरह घाय जा एक न मारा, विरह खरग दुहुँ दिसि है धारा।
जहाँ भेउ विरहा मन राजा, तहाँ न रहै सुधि बुधि लाजा॥

विरहजन्य अग्नि इतनी प्रखर होती है कि वह अन्तरतम को भस्म कर देती है—

जम को म्रितु खनक निरबाहै, यह रे बिरहा खिन खिन दाहै ।

× × ×

पीर करेजे हिये दुख, बिरह दग्ध उत्पात ।
दैया कैंड कर जियौं, यह दुख बिरह संताप ॥

विरह का अनुभव विरही ही ठीक से कर सकता है:—

दुखिया सो दुख जानै, जेहि दुख होइ सरीर ।
बिनु दुख क्यों कर जानै, दुख दाधे की पीर ॥

सात समुंद जो होइ मसि, कागद सात अकास ।
चहुँ जुग कहत जन निघटै, पेमा बिरह उदास ॥

जिसमें बिरह उपजता है, वह धन्य है। कोटि में से एक को ही विरह उत्पन्न होता है और विरह दुख के पश्चात् सुख ही सुख है:—

जेहि जगत बिरह दुख भैऊ, त्रिभुअन केर राउ सो भैऊ ।

× × ×

धन जोबन तेहि केरा भारी, जो जग भौ बिरह भिखारी ॥

× × ×

कोटिन्ह महँ बिरुली जन कोई, जेहि सरीर बिरहा दुख होई ।
सरग बिन्दु सब होहिं न मोती, सब घट बिरह देइ न मोती ॥
बिरह दुख दुख कहै न कोई, पाछे दुख ताहि सुख होई ।
जेहि जिव दैव बिरह दरसावै, दुख सुख तेहि तैसे मन भावै ॥

× × ×

मूरख लोग न जानै ऐसो, जहाँ बिरह तहँ सिख बुधि कैसी ।
बुधि बिरह की सरबरि पावै, बिरह पौन मिसु दिया बुतावै ॥

× × ×

मंझन जो जग जन्मि कै, बिरह न कीन्हा चाउ ।
सूने घर का पाहुना, ज्यों आवै त्यों जाय ॥

कुतुबन ने 'मृगावती' में वियोग-जन्य दुख की इतनी कराल-कल्पना की है कि उसके पढ़ने में ही भीषण दुख का अनुभव होने लगता है। कुतुबन प्रेम के विरह पक्ष को और पैनी दृष्टि से परखने के आदी प्रतीत होते हैं:—

आगि कै औषध सब कोइ जाना, यह न कोरे औषध के माना।
और आगि जल सींचि बुझाई, यह न बुझाइ समुद लै जाई॥

समुदौ जरी गगन सब जरा, और बासुकी जर नाउँ बरा।

भावंता नहिं मेटियै, उठी जो नख सिख आगि।
बसुधा जरै न उबरै, आगि बिरह की लागि॥

जायसी ने भी बिरहाग्नि की प्रखरता का चित्र प्रस्तुत किया है:—

जग महँ कठिन खड्ग कै धारा, तेहि ते अधिक बिरह कै झारा।
बिरह के दगध कीन्ह तन भाठी, हाड़ जराय कीन्ह सब काठी॥

× × ×

पद्मावती तेहि जोग सजोवा, परी पेम बस गहे बियोगा।
नींद न परै रैनि जौं आवा, सेज केंवाच जानु कोइ लावा॥

कलप समान रैनि तेहि बाढ़ो, तिल तिल भर जुग जुग जिमि बाढ़ी।

इस भौतिकवादी युग में साधनों की बहुलता के कारण प्रेमी या प्रेमिकाओं के भी हृदयों में ऐसी भीषण विरहाग्नि नहीं उपज पाती। वातावरण उनको इस अग्नि को प्रशमित करता प्रतीत होता है; किन्तु सच्चे प्रेम की पीर या विरह न तो छिपाये छिपता है और न कृत्रिम साधनों से शमित ही होता है। सूफियों द्वारा निर्दिष्ट विरह के स्वरूप की इस युग में वह स्थिति है या नहीं, हमारा वर्ण्य विषय नहीं, किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि मानवीय तत्वों की एक शाश्वत परम्परा है और उसमें प्रेमजन्य वियोग की शृंखला निश्चित रूप से उलझ गई है। चित्रपटों में प्रेम एवं विरह के थोथे स्वांग नित्यप्रति जनता के समक्ष आते हैं। उनका अनुकरण मानो आज की सभ्यता का अंग बन चुका हो। मानवीय तत्वों के उचित मूल्यांकन एवं सच्ची दिशा के निर्देशन के लिये प्रेमाख्यानक ग्रंथ अमूल्य निधि हैं। उनके अध्ययन से आँखें खुलेंगी। जनकल्याण होगा और अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम भाव बढ़ेगा।

(ङ) मंझन के काव्य की कुछ परम्परायें

अनेक कवियों के भावों में पारस्परिक साम्य ढूँढ निकालना विज्ञ पाठकों के लिए दुष्कर नहीं। भिन्न देशों की विभिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न कालों में कवियों में वैसी समानताएँ देखी गई हैं। इस साम्य का प्रमुख कारण विचारों की अनुकूलता एवं उनकी परम्परा का प्रश्न है। किसी जाति या राष्ट्र विशेष की अपनी कुछ विशिष्टताएँ होती हैं। वे उन्हें जितने दीर्घ काल तक सुरक्षित रखते हैं सभ्य एवं उन्नत कहे जाते हैं। भारत की कुछ ऐसी ही विशिष्टताएँ हैं। अतः कवि एवं गायकों के संस्कार किसी भी काल में उनसे अछूते नहीं रह पाये। जब-जब विचारों की व्यक्ति के माध्यम—भाषायें—बदलीं, वे ही विचार दूसरी भाषा में अवतरित हुए।

प्राचीन कविगण अनेक भावों को अनेक स्रोतों से ग्रहण करते हुए भी उनके प्रति कृतज्ञता न प्रकट कर पाते क्योंकि काव्य में संकेत तो किए जा सकते हैं किन्तु स्पष्टीकरण नहीं। जाने या अनजान रूपसे कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों या लेखकों की अमूल्य विचारधाराओं एवं भावनाओं का सम्मान अवश्य किया जिसके फलस्वरूप हमें किसी भी कवि के काव्य का अध्ययन करते हुए उसमें प्राचीन साहित्य से अनेक साम्य मिलने लगते हैं। यही नहीं यदि परवर्ती साहित्य का भी सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो उसमें भी वैसे ही भाव मिल जायेंगे। किन्तु प्राप्त प्रमाणों के आधार पर हम किसी कवि या लेखक पर 'चौर वृत्ति' का आरोप नहीं लगा सकते, यद्यपि साहित्य के क्षेत्र में समय-समय पर ऐसी कुप्रवृत्तियों का बोलबाला रहा है। मंझन के काव्य 'मधुमालती' में भी अनेक भाव ऐसे आये हैं जो उनके पूर्ववर्ती कवियों - कबीर, कुतुबन तथा जायसी—से मिलते हैं। यही नहीं, अनेक दोहे तो संस्कृत श्लोकों के अनुवाद मात्र दिखेंगे। किन्तु ऐसे तत्व केवल मंझन की अध्ययनशीलता एवं संस्कृत आदि से घनिष्ठता की ओर ही संकेत करनेवाले हैं। कुछ साम्य और हैं। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' में जो मंझन की 'मधुमालती' के बाद की रचना है, जो नारी-प्रसंग आया है वह अनेक भारतीयों को तुलसी बाबा की मौलिक सूझ जान पड़ती है। किन्तु मंझन ने इस प्रसंग में इतना लिखा है कि उसे देखकर कभी-कभी जी चाहता है कि कहदें—तुलसीदासजी ने भावों की यहाँ से चोरी की। किन्तु बात वैसी नहीं। मंझन एवं तुलसी, दोनों के

विचारों के मूल में हमारी भारतीय समाज की अविच्छिन्न विचार-परम्परा थी। वे समानरूप से उससे परिचित एवं प्रभावित हुए। अपने काल एवं समाज का उचित चित्रण यही है। उस कालकी सामाजिक प्रवृत्तियों की रूपरेखा ऐसे वर्णनों से हमारी आँखों के सामने आ जाती है। ऐसे ही विचार-साम्य का एक उदाहरण हमें ईश्वरदासकृत 'स्वर्गारोहण' एवं तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड के कलियुग-प्रसंग में मिला है। याद रहे ईश्वरदास तुलसीदास से पूर्व के अवधी प्रेमाख्यानककार हैं।

फिर कुछ ऐसे विचार, कुछ रूढियाँ एवं कुछ उपमायें ऐसी हैं जो समान रूप से सभी कालों में कवियों द्वारा प्रयुक्त होती रही हैं। इन्हें हम उनकी 'पैतृक सम्पत्ति' या लेई-पूंजी भी कह सकते हैं। ये वह पाथेय हैं जिसके बल पर कवि प्रगति पथ पर चलना प्रारम्भ करते हैं। फिर काव्य को अलंकृत करने का भारी भार कवियों के कंधों पर रहता है। उसका उन्हें निर्वाह करना होता है। इसके लिए परम्परागत प्रतीकों, रूपकों, उपमानों एवं छंदों के प्रयोग करने पड़ते हैं, जिसके फलस्वरूप परम्परा विशृङ्खलित नहीं हो पाती। किन्तु कोई-कोई कवि स्वतन्त्र प्रकृति का भी अनुसरण कर सकते हैं। परन्तु सूफियों में ऐसे सीमोल्लंघन कम मिलेंगे। कारण स्पष्ट है - सूफियों ने काव्यगुणों या उसके अलंकरण की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना विचारों की उत्कृष्टता एवं प्रेम की अनुभूतियों को ठूँस-ठूँस कर उसमें भरने की ओर। यही कारण है कि सूफी-साहित्य मर्मज्ञ सदैव सूफी काव्य के भावों पर ही ध्यान देते हैं, भाषा या अलंकार पर नहीं। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि भाषा की सजीवता एवं अलंकरण के आकर्षण इन काव्यों में नहीं हैं। जायसी ने भाषा एवं भावों के क्षेत्र में समान रूप से सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया है। किन्तु एक की प्रशंसा करते हुए उसके पूर्ववर्ती या समकालीन कवियों का न तो उपहास होना चाहिये और न उपेक्षा ही। कुतुबन एवं मंझन ने भावों की उच्चता एवं भाषा की प्राञ्जलता में विशिष्ट योग दिया है। वे अपने भावों को लोक के अधिक निकट लाना चाहते थे।

मंझन ने मधुमालती में कितना सजीव चित्र खींचा है :—

ढाँके अधर सबन्ह के, अकुतानी बर नारि।
आगे मधुकर घेरे, पाछे गहे पुकारि॥

विहारी तथा अन्य परवर्ती रीतिकालीन कवियों ने न जाने ऐसे कितने चित्र खींचे हैं।

कबीर के एक दोहे "सात समुद की मसि करौं........" के ही अनुरूप मंझन का निम्न दोहा उल्लेखनीय है:—

सात समुन्द जो होइ मसि, कागद सात अकास।
चहुँ जुग कहत न निघटै, पेमा बिरह उदास॥

कबीर के एक दूसरे दोहे "यह तो है घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं" के समान मंझन की निम्न पंक्ति है:—

प्रथमहिं सीस हाथ कै लेई, पाछे वोहि मारग पगु देई।

संस्कृत के एक श्लोक "मौक्तिकं न गजे गजे" का भावान्तर भी मंझन की लेखनी से देखें:—

रतन कि सायर सायर, गजमानिक गज कोइ।
चंदन कै बन-बन उपजै, बिरह कि तन तन होइ॥

गीता में जिसे सात्विक सुख कहा गया है, मंझन के शब्दों में वही:—

दुइ दुख बीच सुख है, निजु जानहु संसार।
जौ अति रैनि अंधेरी, तौ इंजोर भिनुसार॥

भारतीय समाज में त्याग को सदैव ही महत्व प्रदान किया गया है। संतों में इस त्याग की भावना का चरम रूप मिलता है। वे जनता कवि एवं दार्शनिकों द्वारा समादरित होते रहे हैं। तुलसीदास जी ने रामायण में सन्तों के लक्षणों का लम्बा ब्योरा देते हुए उनकी परार्थवृत्तिकी प्रशंसा की है। मंझन ने भी एक स्थल पर त्यागी पुरुषों का यशोगान किया है:—

कारन आपु दुखी सब होई, पर दुख दुखी बिरला जन कोई।

× × ×

पर सुख लागि जो दुख सहै, गनै ताहि संसार॥

पूर्व सदैव से भाग्यवादी रहा है। भारत का प्रत्येक नागरिक अब भी भाग्य एवं कर्म की रेखा पर विश्वास करने का आदी है। मंझन सच्चे सूफी होने के साथ ही, कट्टर भारतीय भी थे—कम से कम विचारधारा में। उनका विश्वास था—

"जो रे लिखा लिलार, सो को मेटै पार।"

अतिशयोक्तियों के माध्यम से कवि तिल का ताड़ बना सकते हैं। किन्तु कभी कभी वे अपने को असमर्थ पाते हैं, कतिपय वर्णनों में। विशेषतया रूप-वर्णनों में—उसमें भी युवती के रूप में - न उन्हें शब्द मिलते हैं, न उपमायें मिलती हैं और न उनकी जीभ ही हिल सकती है। वे अदृश्य रूप से रूप-छटा से इतने प्रभावित एवं मंत्रमुग्ध हो जाते हैं कि उस समय उनका बुद्धि-कौशल या कवित्व-दर्प चूर-चूर होकर छितरा जाता है। चाहते हुए भी शब्द नहीं मिल पाते। यह 'ब्रह्मानन्द' जैसी स्थिति होती है। मनुष्यों का जन्मजात स्वभाव है रूप पर मुग्ध होना। मन में विकार लाने से वासना उत्पन्न हो सकती है किन्तु कवि या लेखक अपनी आदर्श नायिका को मनोनुकूल वातावरण में रखकर संरक्षक को भाँति सतर्क रहते हुए उस पर मुग्ध भले ही रहे, स्वप्न में भी पारस्परिक संबन्धों में कलुषता नहीं लाता। किन्तु उसे उसके आकर्षक व्यक्तित्व के प्रति मोह अवश्य होता है। उसको दिव्यता प्रदान करने के लिए वह अच्छी से अच्छी उपमायें ढूँढता है किन्तु उनके द्वारा वह पारलौकिकता ला सकने की सामर्थ्य न रखने के कारण छवि का चिन्तन करता हुआ उसे अस्पष्ट बना देता है। तब अपनी असमर्थता को शब्दों में लिख देता है। तुलसीदास जी ने सर्वत्र सीता या पार्वती की रूप-छटा को अनिर्वचनीय कहकर छोड़ दिया है। मंझन ने मधुमालती के रूप-वर्णन में भी वैसी ही कला का प्रयोग किया है:—

मैं मतिहीन बरनि ना जाई। मुख कपोल बरनौं केहि लाई।
मानुस दहुँ बपुरा केहि माहीं, देउता देखि कपोल लजाहीं॥

× × ×

विपरीत बन केदली, औ गज सुंड सुभाउ।
उपमा देत लजानेउं, सुनहु कहौं सतभाउ॥

वर्णाश्रम धर्म के अनुसार वृद्ध होने पर राजा संन्यास ले लेता था और अपने युवक-पुत्र को राजा बनाता था। बाद के समाज में भी ऐसी ही

प्रवृत्तियों का बोलबाला हुआ। आज भी वृद्ध एवं अनुभवी पुरुषों को यही चिन्ता सताती रहती है कि वे अपने आगे ही अपने पुत्रों को गृहस्वामी बना दें। 'मधुमालती' में राजकुँअर का पिता सोचता है:—

आयु मोर पियर धुप आई............

अब संपति मोरे केहि काजा. कहहु कुँवरहिं करौं मैं राजा।

लड़कियों या पुत्रियों का भी सम्मान पुत्रों के बराबर होता किन्तु दोनों के क्षेत्रों में पृथकता होती। कन्यायें महिलाओं द्वारा पोषित एवं आदृत होतीं। वे उनसे सरलता का व्यवहार करतीं, उनकी सुकुमारता का ध्यान रखते हुये 'दीप बाति' भी टालने न कहतीं:—

मात पिता कर प्रान अधारी, और कहा तैं बारि कुमारी।

नैन ओट ते तिल न कराऊँ............

किन्तु आज की परिस्थिति कुछ दूसरी है। कन्यायें कुल के लिये भारस्वरूपा समझी जाती हैं। सामन्तशाही समाज में ही कन्याओं का ऐसा आदर सम्भव है। पहले सामन्तशाही समाज में लड़कियों को अपनी उच्चता, अपने कुलादि का अहंकार होता था। मधुमालती से जब एक सखी उसके गुप्तप्रेम का स्पष्टीकरण करती है तो वह उस पर बाज की तरह टूट पड़ती है और यथार्थ को अस्वीकार करती है। सत्य को इस प्रकार छिपाने की प्रवृत्ति स्त्री समाज में है—और विशेषकर प्रेम-व्यापार को। यथार्थ या कटु-सत्य कहने वाला ऐसे समाजमें कभी समादरित नहीं होता। समाज की यही परम्परा आज भी है, उसके अवशेषों ने उसमें कुछ और उलझनें बढ़ाई ही हैं, कभी नहीं की। प्रेमव्यापार तो आत्मघात एवं हत्याओं का कारण बन चुका है।

मधुमालती अपनी सखी को फटकारती है:—

मैं कुलवंति राज घर धिआ, कहत लाज तोरे आई न हिआ।
अजहुँ जननि कोरा मैं बारी, का जानौं पर पुरुख हिआरी॥

जस तैं बात कहत हंसि, अस जग कहै न कोउ।
त्रिआ जाति अपजस पर, कुल पै नासै सोउ॥

पिता के द्वारा कन्यादान का महत्व अब भी शेष है। अल्पवयस्का

कन्याओं का दान दे-दे कर तर जाने के स्वप्न सदैव से उनके पिता देखते आये हैं:—

सबन्ह कहा धी बैस जो होई, पिता ग्रिह भल बोल न कोई।
आठ बरिस लहि दुहिता बारी, नवए रहै पिता कहं गारी॥

× × ×

जौं लगि पिता न संकल्पै, करै न कन्यादान।
तौ लगि होइ न सुरत रस, और सबै रस मान॥

एक ओर जहाँ नारियाँ पुरुषों के लिए आकर्षण-केन्द्र हैं, वहीं दूसरी ओर पुरुष स्त्रियों के अवगुणों की चर्चा करते नहीं अघाते। महाकवि तुलसीदास ने भी "ताडना की अधिकारिणी" बनाकर नारी जाति के प्रति अपने रोष का प्रदर्शन किया है। मंझन ने भी महथा के मुख से स्त्रियों के अवगुणों का वर्णन कराया है:—

त्रिया जाति महा राकसिनी, जनि पतिआहि उपर देखि बनी।
आपन सुख जो वोहि लगि पावै, अधिक त्रिया पुरुहि मन भावै॥
बरबस पेम करै बरिआई, पै सब अपनी चांड की ताईं।
त्रिया पेम ब्रिथा संसारा, त्रिया ताकैं मन्द बेवहारा॥

अन्यत्र भी मंझन ने ऐसे ही भाव व्यक्त किए हैं:—

पाप कै घर त्रिया कै जाती, राखै कुल जो होय संघाती।
नातरि त्रिया राखि को पारा, कुल पै अकरम बज्र निहारा॥

किन्तु सब दूषणों के होते हुए भी मंझन ने स्त्रियों को क्षम्य एवं पूज्य माना है क्योंकि वे महापुरुषों की जननियाँ होती हैं। मंझन की इस सदाशयता के समकक्ष नारि-वर्ग पर कलंक ही कलंक मढ़नेवाले कवि नहीं ठहर पाते। मझन अवगुणों के साथ-साथ स्त्रियों के महान गुण का भी वर्णन कर देते हैं।

त्रियहिं सबै अलच्छन, एक सुलच्छन सार।
महापुरुख जग माही, त्रियहीं ते औतार॥

मंझन ने नारिवर्ग के ही समान पुरुष-जाति को भी धिक्कारने से नहीं छोड़ा। पुरुषों को 'महादुष्ट' कहकर मानों 'ताड़ना की अधिकारिणी' स्त्रियों के लिये सान्त्वना की सामग्री जुटा दी हो।

"महादुष्ट जो पुरुख की जाती ...."

संक्षेपतः, मंझन के काव्य की ये कतिपय विशिष्ट परम्परायें हमें तत्कालीन समाज अथवा मानवीय संस्कारों एवं विचारों के शाश्वत क्रम का परिचय कराने में समर्थ हैं। गहन अध्ययन करने पर पाठकों को ऐसी अनेक विशिष्टतायें एवं कहीं-कहीं दुर्बलतायें दृष्टिगोचर होंगी जिनका समर्थन या समाधान उन्हीं के हाथों होगा।

(ढ़) मधुमालती का यह पाठ

प्रथम दृष्टि पर ही पाठकों को मधुमालती के पाठ में अनेक विचित्रतायें मिलेंगी, जिनकी ओर वे खुलकर संकेत करना चाहेंगे। किन्तु इसके पूर्व कि कोई आंगुल्यानिर्देश न हो, उनकी तुष्टि के लिये निम्न प्रकरण जोड़ा जा रहा है और यह स्वीकृत किया जा रहा है कि ये विचित्रतायें कई कोटि की होंगी—कुछ शब्द-सम्बन्धी, कतिपय लिपि-सम्बन्धी, कतिपय अर्थ-सम्बन्धी और शेष छन्दशास्त्र तथा अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली।

जहाँ तक शब्दों का सम्बन्ध है, उनके विषय में पूर्व सूचना आवश्यक है। मधुमालती की जिस प्रति से यह पाठ लिया गया है वह कैथी लिपि में है और आज से २७० वर्ष पूर्व लिखी गई थी। कैथी लिपि एक ओर जहाँ सर्वसाधारण द्वारा सुपाठ्य नहीं, वहीं उस लिपि की कुछ अन्य परिमित सीमायें भी हैं। ह्रस्व एवं दीर्घ अ, इ, उ वर्णों की लिपि में भेद तो है किन्तु जब शब्द लिखे जाते हैं तो विपर्यय देखा जाता है। एक ही शब्द को ह्रस्व एवं दीर्घ दोनों रूपों में, विवेक के साथ, पढ़ा-समझा जाता है। अतः स्वभाविक है कि १६४ पृष्ठों के मूल पाठ में अनेक शब्द ऐसे आये हों जो उक्त प्रकार की कठिनाइयों के कारण कुछ के कुछ हो गये हों। फिर शब्दों में अधिक या न्यून वर्णों को जोड़ने-घटाने से एक दम नये शब्दों की सृष्टि हो जाती है। इसके लिये हम पहले से क्षमा-प्रार्थी हैं। भरसक प्रयत्न यही किया गया है कि सार्थक एवं उपयुक्त शब्द ही बनें किन्तु कहीं-कहीं प्राचीन अवधी के शब्दों से पूर्ण परिचित न होने, लिपि की दुरूहता एवं प्रतिलिपिक की त्रुटियों के कारणवश वैसा

नहीं हो पाया। अतः शब्दों को 'जैसे का तैसा' रूप में रखने का प्रयास किया गया है। ऐसे स्थल पाठकों को खटकनेवाले प्रतीत होंगे क्योंकि ऐसे ही स्थलों में तुक भंग, छंद भंग आदि सभी दोष एकत्र होते मिलेंगे।

कैथी और नागरी लिपि में वर्णों की संख्या समान नहीं। कैथी लिपि में ब और व, श और स, ष और ख (कभी कभी स) के लिये व, स और प के ही प्रयोग होते हैं। अतः स्पष्ट है कि 'दोष' को चाहे दोप पढ़ें या दोख और देषा को चाहे देखा या देसा।

संयुक्ताक्षरों की परिस्थिति और विकट है। क्ष के स्थान पर छ, ज्ञ के स्थान परग्य, और त्र के स्थान पर त के प्रयोग कैथी की विशिष्टतायें हैं। 'प्रगास' शब्द को लेकर बनारस में काफी द्वन्द्व हुआ। कुछ लोग 'परगास' के पक्षपाती दिखे। वैसे ही 'प्रगट' शब्द है। प्रवान, प्रथम तथा प्रेम पर भी परिशिष्ट (८-१) में विचार किया गया है। मूल पाठ में परगास और प्रगास, प्रगट और परगट, प्रम और परम······ दोनों ही रूप मिलेंगे। ऐसा होने के प्रधानतया तीन कारण हो सकते हैं। एक तो छन्दशास्त्र के निर्वाह-हेतु मात्राओं का ध्यान, दूसरे प्रतिलिपि करनेवाले की दोनों रूपों से जानकारी और तीसरे प्रतिलिपि करते समय किन्हीं-किन्हीं स्थलों में अशुद्धि का होना। किन्तु इन तीनों में से किसी भी एक कारण को प्रधानता नहीं दी जा सकती जैसा कि परिशिष्ट में उद्धृत प्रमाणों से स्पष्ट है।

कुछ लोगों का मत है कि अधिकांश सूफी ग्रन्थ पहले फारसी लिपि में थे और फिर कैथी या नागरी लिपि में प्रतिलिपित हुए, जिसके कारण परगास को प्रगास, परगट को प्रगट, परम को प्रम आदि पढ़ा-लिखा गया। यह तर्क मनोवैज्ञानिक है क्योंकि इन उद्धरणों के अतिरिक्त भी कई एक और भ्रान्तियाँ हैं जो दो लिपियों के आधार पर ही सुलझाई जा सकती हैं। उदाहरणार्थ, मूल पाठ में 'मोकलाई', 'दोसर', 'बस्तर', 'शास्तर' तथा 'अनेग' शब्द आये हैं। मोकलाई' और दोसर' के दूसरे रूप 'मकुलित' तथा 'दूसर' भी प्रयुक्त हुए हैं। उर्दू या फारसी लिपि में दूसर को दोसर ही लिखा जायगा। वैसे ही मुकुलित को मोकलिता, वस्त्र और शास्त्र को बस्तर और शास्तर आज भी उर्दूवाले लिखते एवं इसी रूप में बोलते हैं। अरबी लिपि में काफ और गाफ अर्थात् क और ग में भेद नहीं अथवा दोनों के लिए काफ ही प्रयोग में आता है, अतः 'अनेक' का 'अनेग' सरलता से हो

जाता है। किन्तु उपरोक्त तर्क के आधार पर हम तथ्यों का परीक्षण ही कर सकते हैं, निश्चित मत पर नहीं आ पहुँचते। सूफी ग्रन्थ फारसी में थे या हिन्दी में अथवा प्रारम्भिक प्रति जिससे एकडलावाली कैथी की प्रतिलिपि तैयार की गई फारसी-अरबी या हिन्दी में थी, स्पष्ट नहीं हो पाता। दूसरे रूप हमें निश्चित मत पर आने में अवरोधक हैं। सबसे विचित्र प्रयोग "सभ" का है जो 'सब' का द्योतक है।

और अधिक छानबीन पर हमें 'य' के स्थान पर 'अ' का सर्वत्र प्रयोग मिलेगा, यथा—त्रिआ, अमिअ, अजिआर आदि। (किन्तु अवधी भाषा में इन शब्दों का इस रूपमें भी उच्चारण होता है) 'य' के स्थान पर 'व' का प्रयोग भी मिलेगा, यथा 'बिवोग'। कहीं-कहीं 'अ' अधिक प्रतीत होगा। यथा 'गरुअ' एवं 'तुअ'। विसर्ग न होने के कारण 'दुःख' सर्वत्र 'दुख' के रूप में मिलेगा। यद्यपि अधिकांश स्थलों में मात्राओं की पूर्ति के लिए 'दुक्ख' जैसे रूप की आवश्यकता वाञ्छित प्रतीत होती है। द्वित्व वर्णवाले सम्पूर्ण स्थल एकहरे रूप में मिलेंगे; यथा पच्छ (पछ), उत्तर (उतर), दक्खिन (दखिन), चित्त (चित), सुद्ध (सुध), बुद्धि (बुधि) आदि। कहीं-कहीं 'व' जब बीच में आता है तो उसकी पूर्ति 'औ' की मात्रा से की गई है यथा नवल = नौल; और कँवल = कौंल।

मात्राओं के विषय में भी विचार आवश्यक है। ए और ऐ स्वरों की उपस्थिति होते हुए भी अधिकांश शब्दों में (प्रायः प्रारम्भिक ए और ऐ) 'अ' में ए और ऐ की मात्राओं का प्रयोग हुआ है। किन्तु ऐसे शब्दों का हमने प्रस्तुत पाठ में बहिष्कार करते हुए उसे ए या ऐ का रूप ही प्रदान किया है। भाषा-विज्ञान किस रूप को अधिक उपयुक्त मानेगा, इसकी परवाह नहीं की गई, क्योंकि मुद्रण में नाना प्रकार की भ्रान्तियों की सम्भावना थी। ए और ऐ के बीच की एक स्वर दूसरे ही रूप में मूल पाठ में दृष्टिगोचर होगा। और वह है 'ये'। इसका अधिकांश प्रयोग 'यह' को 'येह' लिखने में हुआ है। कई स्थलों पर यह रूप मिलेगा किन्तु अधिकतर स्थानों में इस रूप की पुनरावृत्ति को रोका गया है। विद्वान पाठकों को यदि ये दोनों रूप मिलें तो उसके मूल में हमारे संशोधन ही हैं—यह पूर्वसूचना आवश्यक है।

चन्द्र-विन्दुओं का अभाव मूल प्रति में है, क्योंकि सर्वत्र पूर्ण विन्दुओं के प्रयोग हैं। कहीं कहीं तो ये अनावश्यक रूप से भी प्रयुक्त हुये

हैं। प्रस्तुत पाठ में शब्दों की उपयुक्तता के अनुसार यत्र-तत्र चन्द्र-विन्दुओं के प्रयोग किये गये हैं। अधिकांश पूर्ण विन्दु जैसे के तैसे रखे गये हैं।

मूल प्रति में रेफ का प्रयोग भी बड़े विचित्र प्रकार से हुआ है। सूरज के लिए सूर्ज, विक्रम के लिए विर्कम, वज्र के लिए ब्रज और कर्म के लिए क्रम प्रयुक्त मिलेंगे। इसी प्रकार भ्रम को भर्म, द्रव्य को दर्ब और निभ्रम निर्भम रूप थी मिलेंगे। इनमें से अधिकांश रूपों को शुद्ध करके प्रस्तुत पाठ में रखा गया है।

तात्पर्य यह कि जो अनेक दोष पाठ में मिलेंगे वे कैथी लिपि के मूलगत दोष हैं या मूलप्रति में लिखित रूप, अतः उनका बहिष्कार नहीं हो पाया। ऐसा न करने का मुख्य कारण यह भी है कि एकडलावाली प्रति की मौलिकता की सुरक्षा और साथ ही साथ शब्दों को उसी रूप में रखकर कैथी लिपि की कुछ विशिष्टताओं का दिग्दर्शन हो। यत्रतत्र नागरी लिपि और विशेषतया खड़ी बोली से प्रभावित होने के कारण अनजाने ही अनेक संशोधन हमसे प्रतिलिपि करते हुए हो गये हैं, जिनके संकेत शुद्धिपत्र में हैं।

परिशिष्ट में संशोधित पाठ भी दिया गया है। ऐसा करने का मुख्य उद्देश्य यही है कि मूल पाठ में आये कतिपय शब्द बड़े ही कुतूहलपूर्ण हैं, अतः उनके शुद्धरूपों को सामने रखना अथवा यदि पाठ में अशुद्धि रह गई है (जो मूल प्रति के पाठ को सुरक्षित रखने के ध्येय से ही है) तो उसका परिहार किया गया है। ऐसे संशोधनों में 'राजकुँअर' शब्द प्रमुख है। प्रति में इसके कई रूप हैं, कहीं कुंवर, कुमार, अथवा कहीं कुँअर भी। किन्तु सर्वत्र 'कुंअर' या कुँअर रूप का ही व्यवहार किया गया है। अन्य संशोधनों में ह्रस्व और दीर्घ मात्रायें विशेष आकर्षण रखती हैं। 'मधुमालती' को कहीं 'मधुमालति' करना पड़ता है, क्यों कि वैसा न करने पर छंद भंग हो जाता। अन्य अनेक स्थलों पर कोई परिवर्तन नहीं किये गये जिससे अशुद्धियां भी रह गयी हैं किन्तु इस प्रकार को ह्रस्व-दीर्घ की अशुद्धियों को पाठक स्वतः पढ़ते समय ठीक कर लेते हैं। फिर अवधी में मात्राकी गिनती तो पठन-क्रिया पर अवलम्बित है। कई बार पढ़ने पर वही शब्द अशुद्ध और फिर शुद्ध लगने लगता है। पाठक-वर्ग ऐसी अशुद्धियों की ओर अधिक ध्यान न दे।

संशोधन कार्य अत्यन्त दुस्तर कार्य है। आज के युग में सम्पादक से बड़ी बड़ी आशायें की जाती हैं। भाषा-विज्ञान के अध्ययन ने तो मानो अध्ययन का क्षेत्र और विस्तृत कर दिया हो। दुर्भाग्यवश 'मधुमालती' के इस सम्पादन द्वारा हम कोई ऐसी नवीन सामग्री पाठकों को नहीं दे पा रहे, जो स्तम्भित करने वाली हो। अधिकांश मित्रों की राय थी कि 'पाठान्तर' विधि का अनुसरण करते हुये मधुमालती का प्रामाणिक पाठ प्रस्तुत किया जाता किन्तु स्पष्ट शब्दों में यहाँ यह बता दिया जाता है कि वैसा कार्य कोई खेल नहीं। उसके लिये कई मूल-प्रतियाँ चाहियें, प्रचुर श्रम और समय भी। साथ ही अनुभव। वैसे यह कार्य हमारे लिये भी इतना दुष्कर न होता किन्तु ऐसे दुस्साहस की हमें आवश्यकता नहीं। यह कार्य डा० माताप्रसाद गुप्त जैसे अनुभवी एवं परिश्रमी विद्वान् का सदैव ही मुँह ताकेगा। येन-केन प्रकारेण शोध छात्रों के लिये यह पाठ प्रस्तुत किया गया है, जिसकी सार्थकता उनके उद्देश्यों की पूर्ति से सिद्ध होगी फिर पाठक वृन्द को तो कुछ भी कहने की छूट है।

इच्छा थी कि प्रत्येक पृष्ठ में कुछ पादटिप्पणियाँ दी जातीं किन्तु पाठान्तर की समस्या पर ध्यान न देने के कारण, वैसा आवश्यक न समझा गया। यदि आवश्यकता हुई तो अगले संस्करण में कठिन शब्दों के अर्थ सम्मिलित कर दिये जावेंगे।

परिशिष्ट में बहुत सा स्थान क्रियाओं के स्वरूप-चिन्तन में घिरा मिलेगा। इसका मुख्य लक्ष्य है मंझन की अवधी के विशिष्ट अध्ययन की आवश्यकता की ओर संकेत। भाषा-विज्ञान के विद्यार्थियों को उनमें अनेक नवीनताएँ मिलेंगी। क्रियाओं में से अनेक ऐसी हैं जो अब बिल्कुल प्रयुक्त नहीं होतीं। परिशिष्ट में दी हुई ४० से अधिक क्रियाओं में से अधिकांश क्रियाएँ न अब पूर्वी अवधी क्षेत्र या पश्चिमी अवधी क्षेत्र में ही प्रयुक्त होती हैं। किन्तु यदि कुतुबन और जायसी की कृतियों में आई क्रियाओं से उनकी तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि मंझन द्वारा प्रयुक्त अधिकांश क्रियायें समानरूप से समानार्थों में प्रयुक्त हुई हैं। आज भी उपरोक्त क्रियाओं में से ६० प्रतिशत अन्तर्वेद (गंगा-यमुना के मध्य भाग) में नित्यप्रति की बोलचाल में वर्तमान हैं। तुलसीकृत रामचरित-मानस में इन क्रियाओं में से बहुत सी देखने को भी न मिलेंगी। कारण स्पष्ट है। तुलसीदास जी ने जनजीवन से सम्पर्क रखते हुए भी अवधी के एक विशिष्ट स्वरूप को ही अपनी कृतियों में प्रतिष्ठित

किया, जब कि सूफियों ने तुलसी के विपरीत, जनजीवन एवं लोक में बिखरी एवं प्रयुक्त होनेवाली अनेक क्रियाओं को आत्मसात् करके अपनी कृतियों में लाकर उन्हें अमर कर दिया। यही कारण है कि अब 'डंफोरि', 'उफरि' तथा 'खिढारी' जैसे क्रिया-रूप जो भद्दे प्रतीत होते हैं, मधुमालती में बड़े ही अच्छे स्थलों में प्रयुक्त मिलेंगे। लोक-साहित्य के अध्ययन की ओर उन्मुख आधुनिक युग के विद्वानों को सूफियों की रचनाओं से बड़ा बल मिलेगा। क्रियाओं के रूप ही प्रगति के द्योतक होते हैं।

पैठना' और 'बैठना' क्रियाओं के जो रूप 'मधुमालती' में आये हैं उन पर भी परिशिष्ट में विचार किया गया है। पैसि, बैसि, पैसा, बैसा आदि रूपान्तर विचारणीय हैं। छुपाना और पबारना क्रियायें इन रूपों में अन्तर्वेद में अब प्रचलित नहीं हैं। प्रयाग के दक्षिण-पूर्व यमुना पार पबारना का प्रयोग खूब होता है।

जाब या जाना क्रिया के विविध रूपों का भी उल्लेख पृथक् परिशिष्ट में है। प्रायः इस क्रिया का प्रयोग अन्य क्रियाओं के साथ संयुक्त रूप में होता है। वर्तमान काल में 'जा' भूतकाल में 'गा' या 'गौ' रूप हो गये हैं। होब या होना क्रिया के विविध रूपों में 'भा' 'भै' और 'भौ' महत्वपूर्ण हैं।

परिशिष्ट में सर्वनामों के विविध रूपों को भी संकलित किया गया है। एक ही रूप के विविध प्रतिरूपों पर विचार आवश्यक है। सम्बन्ध कारक के चिन्हों पर भी एक दृष्टि फेरी गई है। 'जनि' और 'जै' के प्रयोग ('न', के अर्थ में विशिष्टता रखते हैं। उसी प्रकार से 'सेती' का प्रयोग 'से' या 'के कारण' के लिए हुआ है। क्रियाओं के लिंग पर भी विचार है।

शब्दों पर अलग से विचार हुआ है। ऐसे शब्द चुने गये हैं जो अब लोकगीतों में तो प्रचलित हैं किन्तु व्यवहार में नहीं आते। 'धिआ' ऐसा ही शब्द है। दहुं या धौं अथवा बाज या बाजु शब्द अब भी उसी अर्थ में अन्तर्वेद में खूब प्रचलित हैं।

कोष्ठकों में रखे शब्द और शब्दों या वाक्यों की आवृति का लेखा-जोखा केवल मूलप्रति की प्रतिलिपि करते समय अनेक अशुद्धियों के होने की सम्भावना की ओर संकेत करता है।

एक स्थान पर मूल पाठ में आई हुई कहावतों या उपाख्यानों का संग्रह कर दिया गया है जिससे सरसरी निगाह में काव्य क्षेत्र में उनकी उपादेयता एवं मंझन की लौकिक-व्यवहारशीलता पर विचार किया जा सके।

एक अन्य प्रकार की स्वतन्त्रता का उल्लेख आवश्यक है। हमने अपनी बुद्धि के अनुसार दोहों में विराम चिन्ह (,) लगाये हैं। ऐसा करना कहाँ तक उचित था, नहीं कहा जा सकता, किन्तु दोहे के दलों को अलग-अलग रखने से पढ़ने में सरलता का अनुभव होता है। मूल सामग्री को खंडों में विभाजन करने का कार्य हमने नहीं किया, मूल प्रति में ही खंडों की व्यवस्था है। चौपाइयों में मात्राओं की न्यूनतायें हमें खटकी हैं, किन्तु अपनी ओर से हमने एक भी शब्द नहीं भरा। हाँ, कहीं-कहीं मूल पाठ में शब्दों की पुनरावृत्ति थी और पढ़ते समय वे शब्द अधिक एवं बेकार जान पड़ते थे, उन्हें निकाल फेंका गया है (किन्तु कहीं भी उनका उल्लेख नहीं किया गया)।

परिशिष्ट में संग्रहीत विविध सामग्रियों में सबसे महत्वपूर्ण एवं अन्तिम विशिष्टता पर भी कुछ विचार कर लेना आवश्यक होगा। सम्पूर्ण मधुमालती दोहे और चौपाई - इन दो छंदों में लिखी गई है। पाँच-पाँच चौपाई पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम कुतुबन की परम्परा के अनुकूल है। जायसी ने 'पद्मावत' में ७ पंक्तियों के बाद एक दोहे का क्रम रखा है। छन्द शास्त्र के अनुसार दोहे के चार चरणों में १३, ११, १३, ११ मात्रायें तथा चौपाइयों में १६-१६ मात्राओं का विधान है। पाठकों को पढ़ने पर ज्ञात होगा कि मधुमालती में अनेक चौपाइयाँ एवं दोहे इन नियमों का पालन करते प्रतीत नहीं होते। इस प्रसंग में डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका का निम्न अंश सामयिक एवं महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है (पृ० ४४):—

"ऊपर के स्थलों पर मात्राओं की जो अधिकता और कमी बताई गई है, वह दोहे की चौबीस और चौपाई की सोलह मात्रायें मानकर बताई हैं, जिसके अनुसार प्रतिलिपिकारों और सम्पादकों ने पाठों को शुद्ध करने का यत्न किया है। किन्तु इन समस्त स्थलों पर यदि उनके पाठान्तरों को देखा जावे तो ज्ञात होगा कि उनका पाठ किसी प्रकार भी मान्य नहीं हो सकता। फलतः यह भली भाँति प्रमाणित है कि जायसी दोनों छन्दों की मात्राओं के सम्बन्ध में पर्याप्त स्वतन्त्रता रखते थे। उनके पूरे ग्रन्थ के सम्पादन और उनके पाठ-निर्धारण में उनकी इस प्रवृत्ति का यथेष्ट ध्यान रखना पड़ेगा।"

अधिक मात्रा एवं न्यून मात्रा वाले दोहे एवं चौपाइयों का निर्देश परिशिष्ट में है। सूचित प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश दोहों में मात्रायें अधिक हैं जब कि अधिकांश चौपाइयों में मात्रा की न्यूनता। यह विचित्र तथ्य हमें इस ओर बाध्य करता है कि हम मंझन के द्वारा प्रयुक्त दोहों एव चौपाइयों का विवेचनात्मक अध्ययन करें। अधिकांशतः तो छन्दशास्त्र के निश्चित विधानों का दोहा-चौपाई क्षेत्र में निर्वाह है फिर कुछ ही में विलक्षणता क्यों? बनारस में हमारे अनेक आलोचकों ने इन्हें प्रतिलिपिकर्त्ता की भूलें कहा और बार बार हमें सुझाया कि हम सम्पादक की हैसियत से ये संशोधन कर दें किन्तु यह तर्क न तब और न अब ही हमें स्वीकार है। यदि दोहों की मात्राओं पर दृष्टिपात किया जाय जो ज्ञात होगा कि २४ मात्राओं के स्थानपर २६, २७ और २८ तक मात्राओं का प्रयोग हुआ है। इन में से प्रायः १६-११ मात्राओं वाले चरणों की बहुलता है। अतः हम यह सुझाव रख सकते हैं कि मंझन ने अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये शब्दों का क्रम इस भाँति रखा है कि छन्दशास्त्र की परम्परा करकरा कर टूट गई है और पूर्ण स्वतन्त्रता बरतते हुये उसने नवीन छन्द की कामना की है। यही विचारों की स्वच्छन्दता है और यही मुक्त छन्द की ओर ले जाने की प्रवृत्ति है। कुतुबन ने भी 'मृगावती' में ऐसी ही मुक्तताका परिचय दिया है। किन्तु छन्दशास्त्र के पारखी अब भी इसे प्रतिलिपिकर्ता की भूल कह कर टालते आ रहे हैं। एक अर्वाचीन प्रयोग, दोहे के क्षेत्र में महाकवि निराला ने रामचरितमानस के खड़ीबोली संस्करण में किया है, उसमें २८ मात्राओं की योजना है और दोहे को वृहद् दोहे के नाम से पुकारा गया है। जायसी का निम्न दोहा भी इसी प्रकार दोहे के क्षेत्र में युगान्तर लाता प्रतीत होता है: —

राजैं कहा रे राकस बौरें, जानि बूझि बौरासि।
सेतबंध जहँ देखिअ आगे, कस न तहाँ लै जासि॥

जायसी ग्रन्थावली, पृष्ठ २८१, ३६४ वॉ दोहा

एक अन्य दोहा पृ० ३७४ पर है जिसमें २८ से भी अधिक मात्रायें हैं। निराला जी कृत 'विनयखंड' से एक उदाहरण आवश्यक है: —

चलिये गिरजा हैं जहाँ, प्रेम परीक्षा लीजिये;
गिरिको प्रेरित कर उन्हें, निज घर आने दीजिये।

—विनयखंड पृ० ७५

दोहों के अतिरिक्त मधुमालती में सोरठों एवं बरवों का भी प्रयोग हुआ है। पृष्ठ १० का दूसरा दोहा ११–११ मात्राओंवाला है। पृष्ठ १८ के प्रथम दोहे में ११–११, ११–११ मात्रायें हैं विशिष्ट प्रकार के दोहों में ८६–३, १००–१, १२६–३, १३६–४, १६–३ आदि प्रमुख हैं। चौपाइयों में अन्तिम लघु-गुरु या लघु-लघु के अनुसार मात्राओं में हेरफेर आता है। तुलसीकृत रामायण में अनेक अपवाद हैं, जो छन्दशास्त्र द्वारा स्वीकृत हैं। फिर शब्दों की पठन क्रिया पर भी ह्रस्व या दीर्घरूपों का निपटारा होता है। अतः चौपाइयों में सदैव न्यून मात्राओं के होने की सम्भावना रहती है। प्रतिलिपि-कर्त्ता किसी शब्द को न समझते हुए उसके स्थान पर दूसरे शब्द की नियुक्ति करके सहज ही चौपाई की मात्राओं में परिवर्तन ला सकता है। किन्तु मधुमालती में चौपाइयों की मात्राओं में इतनी न्यूनता है कि दृष्टि फेरकर आगे बढ़ जाने से काम न चलेगा। यहाँ भावों की प्रखरता में शब्दों के न अँट पाने की सहज कल्पना कुछ अंशों तक सत्य प्रतीत होगी।

उक्त सभी दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुये, मधुमालती का यह मूल पाठ प्रस्तुत किया गया है। अभी भी इसमें कितने श्रम एवं परिवर्द्धन की आवश्यकता है अपने आप परिलक्षित होता है। ध्यान में सदैव यही रखा गया है कि कोई ऐसा परिवर्तन सम्पादक की ओर से न हो, जिससे मूल रूप विकृत हो जावे। ऐसा करने से यत्रतत्र ऐसे शब्द रह गये हैं जिनके अर्थ हमें स्वयं स्पष्ट नहीं हो पाए। उनको उन्हीं रूपों में रहने देने से, हमें विश्वास है कि आगे चलकर उचित संशोधन किया जा सकेगा। किसी भी रूप को अपने अहंकार के बल बदल देने का अधिकार न होना चाहिए। सम्भव है, वही असली रूप हो और उचित ज्ञान के न होने के कारण हम उसके अभ्यस्त न हों।

भाषावैज्ञानिकों द्वारा परिशीलित होने पर 'मधुमालती' का महत्व अवधी भाषा, विशेषतया पुरानी अवधी, के समझने में बढ़ेगा। हम उन सभी बारीकियों को स्थान-संकोच के कारण नहीं दे पा रहे जिनकी विशद व्याख्या की जरूरत थी। यदि कोई और वैसा करे तो हमें किसी प्रकार की कुंठा न होगी। हम अपने विचारों को आलोचनात्मक अध्ययन के लिए ही रख रहे हैं, किसी दुराग्रहवश नहीं। उन्हें मान्य बनाना अथवा उनकी अमान्यता पाठकवृन्द के ऊपर है।

हम अपने मित्र रावत ओ३म् प्रकाशसिंह (एकडला निवासी) के बड़े कृतज्ञ हैं जिन्होंने मधुमालती की हस्तलिखित प्रति को इस पाठ के तैयार करने के लिए सहर्ष प्रदान किया है। हम उन कृतियों के लेखकों के प्रति भी अपना आभार प्रदर्शित करते हैं जिनकी सामग्रियों का उपयोग इस भूमिका-लेखन में किया गया है। हम आदरणीय कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी', काशी तथा पं० सुधाकर पाण्डेय के भी ऋणी हैं जिन्होंने समय-समय पर अपनी अमूल्य सम्मतियों द्वारा मधुमालती के प्रकाशन में हाथ बटाया। मधुमालती के प्रकाशक बेरीबन्धु भी साधुवाद के भागी हैं जिन्होंने समय से इस अमूल्य कृति को प्रकाशित करने का भार उठाकर साहित्यिक-कृति के साथ समुचित न्याय बरता है। इत्यलम्।

साधना कुटीर,
२४, अशोक-नगर
इलाहाबाद-१
१५ अगस्त ५७

विनीत
शिवगोपाल मिश्र
जयगोपाल मिश्र

म
धु
मा
ल
ती
क
था

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

मधुमालती कथा

पेम पीति सुख निधि के दाता, दुइ जुग एकं करी विधाता।
बुद्धि प्रगास नाहीं तुअताई, तुअ अस्तुति जे करौं गोसाई।
तीनि भुअन चहुँ जुग तै दाता, आदि अन्त जग तोहि पै छाजा।
पंडित मुनि जन ब्रह्म विचारी, तुअ अस्तुति जग काहु न सारी।
एक जीभ मैं कैसे सारौं, सहस जीभ चहुँ जुग न पारौं।

तीनि भुअन घट घटन, अनौन रूप बेलास।
एक जीभ कहु ताहि के, कैसे अस्तुति करै हवास॥

गुपुत रूप परगट सब ठाईं, निरगुन एकंकार गोसाईं।
रूप अनेग भाव परवेसा, एक रूप काछे बहु भेसा।
तीनि लोक जहवाँ लगि ठाईं, भोगी क अनवन रूप गोसाईं।
करता करै जगत सो चाहै, जमु था जमु रहै जो आहै।
बाजु नाव बेलसै सब ठाईं, बाजु रूप बहु रूप गोसाईं।

त्रिभुअन अपुरी पूरि के, एक जोति सब ठाउ।
जोतिहि अनवन मुरती, मुरती अनवन नाउ॥

जा येहि तीनि लोक न समाना, सो कैसे कै जाइ बखाना।
त्रिभुअन भाव जान सब कोई, जो किछु भाव होइ सो होई।
चारौ जुग प्रगट न छपाना, बिरला जन काहू पहिचाना।
प्रगट दसौ दिसा उजिआरा, सरब लीन पै आपु निनारा।
जे आपुही वोहि मन लावा, बिधि वोही पै आपु देखावा।

गुपुत रहै परगट जो बेलसै, सरबब्यापी सोइ।
दूजा कोइ न आहै, और भया नहिं कोइ॥

सुर नर नाग जहाँ लगि आहीं, कोटि बरिस जो अस्तुति सारहीं।
पाछे सब पछुतावा कहहीं, जस तैं तस हम जाने नाहीं।
कोटि बरिस जो मन फिरि आवै, बुधि बपुरी दहु कहवाँ पावै।
जग जीवन अहार कर दाता, करता हरता एक विधाता।
त्रिभुअन चहुँ जुग एक अकेला, आपु अपान रूप भै खेला।

अलख निरंजन करता, एक रूप बहु भेस।
कतहूं बाल भिखारी, कतहूं आदि नरेस ॥

जो जग जन्मि तोहि न पहिचाना, आहर जन्म मुए पछुताना।
जग्त जन्मि लीन्हा ते लाहा, जो तोहि बिनु तोसे किछु चाहा।
करता किछु मन इच्छा मोहीं, तेहि सेती परि जाचौं तोहीं।
जैसे जिव निश्चै तोहि जाना, तैसे जीभ न जाये बखाना।
जौ मन गुनिये तौ सब थोरी, अस्तुति कौन करौं मैं तोरी।

ग्यान पंखो के मगु जहाँ, औ मति के पैठार।
तहवाँ लै पै पंक तनु, तैं तरु भेटै पार ॥

आदिहि आदि अन्त ही अन्ता, एकइ अरथ जो रूप अनन्ता।
एक सउ दोसर कोउ नाहीं, आदि न भौ अन्त न आही।
निश्चय जीउ जाना प्रवाना, त्रिभुअन निकट एक कै जाना।
दोसर नहीं कतहूं जो तुअ जोरा, दरपन दिस्टि रूप मुख तोरा।
तोर खोज खोजत सो पावै, जो आपन सब खोज हेरावै।

सब भेदी कर भेदि, औ सब रसिक सुजान।
सो सब सिस्टि पेछौरी, आपु एक प्रवान ॥

सुनसि अब ताकी बाता, प्रगट भौ जो बिरह विधाता।
सोभु सरीर सिस्टि जो आवा, और सिस्टि जो वोहि के भावा।
वाकी जोति प्रगट सब ठाऊँ, दीपक सिस्टि जो महंमद नाऊँ।
वोहि लागि दैअ सिस्टि उपराजी, त्रिभुवन पेम दुदुंभी बाजी।
नाव महंमद त्रिभुअन राऊ, वोहि लागि भौ सिस्टि क चाऊ।

वाकी अँगुरी करकै, अग्या चाँद भयो दुइ खंड।
वाकी धूरि जो पाँव की, अचल भयो ब्रहमण्ड ॥

मूल महंमद सब जग साखा, बिधि नौ लाख मटुक सिर राखा।
वोहि पटतर दोसर कोउ नाहीं, वोह सरीर यह सब परछाहीं।
करता गुपुत सबै पछिआना, प्रगट महंमद काहु न जाना।
अलख लखै जे पार न कोई, रूप महंमद काछे सोई।
रूप क नाम महंमद धरा, अरथ न दूसर जाकर करा।

ऊँचे कहौं पुकारि कै, जगत सुनौ सब कोइ।
प्रगट नाउ महंमद, गुपुत ते जानेहु सोइ॥

चारि यार की सिफति

अब सुनु चहुँ मीत की बाता, सत्य न्याय सास्तर के दाता।
सत्यगुर बचन सत्य जो जाना, प्रथमहि अबाबकं प्रवाना।
दूजे उमर न्याय कर राजा, जे सुत पिता हना बिधि काजा।
तिजे उस्मान निश्चै अस्थाना, जे रे भेद बहु भेद क जाना।
चौथे अलीसिंघ बड गुनी, दान खरग जे साधी दुनी।

सत्य न्याय सास्तर कर, औ जो गिरि संधार।
परगट करम ये साधा, गुपुत हिये करतार॥

———

पातिसाह की सिफति

साहि सलेम जगत भुअ भारी, जेंइ भूँज बर मेदनी तारी।
जौ रे कोपि बैरी पर चापै, सेस इन्द्र कर आसन काँपै।
नौ खंड सात दीप सब ठाऊँ, भै भरम अति क्रिति क नाऊँ।
अत्रिख कै अस राज सवारा, सत्रुन जग मों रहा जुझारा।
दसौ दिशा मानै जग संका, खरग झार भा खरभर लंका।

प्रिथिमी पति जग गाहक, दस जो चारि निदान।
पर भुअ गंजन सापुरुस, गरू गरिस्ट सुजान॥

गरुये तप गरुये औतारा, काबिल हिन्दू भा येक बारा।
उतर हेमगिरि जो प्रवाना, दखिन सेतबंध लगि आना।
पछित्र पठौ रूप सेवकाई, पूरब जलनिधि तीर दोहाई।
नौ खंड प्रिथिमी आनंदू, धरम दुदुस्टिल सत हरिचंदू।
दान सरग खरग लै लावा, त्रिभुअन सिस्टि न पटतर लावा।

नौखंड देहिं असीस, प्रिथिमी राज करु जग माह।
जो लगि ससिहर सूर धुअ, कायेम जग पर छाह॥

न्याय खरग जे अति उतंगा, भेडि हुँडार चरत येक संगा।
न्याय बखान न जा मुह कही, गाइ क पूंछि सिंघ कर गाही।
गरुआ राज महातप भारी, फूली निकट नीर फुलवारी।
राजनीति जो कीन्ह संसारा, बीर अबली ते बोल न पारा।
नीर खीर कर होइ बिचारा, जब चाही तब पाइअ बारा।

हरख अनन्द उछाह, सुख सब कोइ रस मान।
दारिद दुख सन्ताप भै, पुहमी छोड़ि परान॥

केहि मुख कहौं दान की बाता, रायेन्ह पाट मटुक कर दाता।
जबरे दान को बार उघारै, करन आये को तब हाथ पसारै।

दान निसान सरग गै बाजे, हेतिम करन भोज बलि लाजे।
सत हरिचंद्र दानो बलि करा, धरम दुदुस्टिल जो औतरा।
दान विद्या सरि भोजन पावा, साका विक्रम जाय न लावा।

सात दीप नौ खंड प्रिथिमी, चहुँ दिसि हरखे अनन्द।
एक बीर दुख परिहरि, दूसर और न दन्द॥

सेख बड़े जग पीर अपारा, ग्यान गरुअ जे रूप आपारा।
सौंरि पाँव परसै जो आवै, ग्यान लाभ हो पाप गँवावै।
जा कहं माया जीउ ते करहीं, सहज बलाइ ताज सिर धरहीं।
जाके दिस्टि करहि प्रतिपारहिं, कया कलङ्क धोइ जे डारहिं।
जे सिख गुरु सिस्टि न पाला, सो आपन जम धोवै काला।

गुर दरसन दुख धोवन, भन जे सिस्टि सुभाउ।
सो सिख गुरु दिस्टि पालै, सो चारौ जुग राउ॥

सेख महंमद पीर अपारा, सात समुंद नाव कंडहारा।
सौंरि पाँव जौ आवै कोई, प्रथम मुख देखत सुख होई।
पुनि दुहु जुग पूजे मन आसा, परसत चरन पाप जो नासा।
ग्यान छोड़ि जे औरन बाता, दस औ चारि मंत सिधि दाता।
बिस्मै हरख न जीव में लाहे, संतत रहत लील लौ माहे।

दाता गुन गाहक, गौस महमंद पीर।
दुइ कुल निरमल सापुरुस, गरुअ गरिस्ट गंभीर॥

सूर उदै उदिनल संसारा, उदै अस्त लगि भा उजिआरा।
जाके नैन सूर उजियारे, प्रम पद ग्यान चेताये तारे।
जाके जग गा दुर औतारा, ताके सूर उवत अंध्यारा।
जौ साहस कलि उटवै कोई, साहस ते निश्चै सिधि होई।
सेख महंमद पीर अपारा, साहसबाजु सिधि देनिहारा।

जैसे पाहन के परसत, ताम हेम होइ जाहि।
तिमि मैं सेख जो परसत, बिनु साहस सिधि पाहि॥

परम तंत लौलीन जे जानै, सो मन के घर पछिआनै।
मन के घर बिखम अपारा, गरुआ हो सो लावै पारा।

जेही मन के घर लखि आवै, सहज ते आपु अपान गँवावै ।
गुरू पीर जाहि परसादा, ते चीन्हा मन बाद बेवादा ।
प्रगट कला सब काहू देखा, पै बिरुला जन गुपुत सुरेखा ।

यह दूनौ बिधि निर्मया, सिस्टि राय जग धीर ।
इन्ह दूनौ सिर ठाकुर, गौस महंमद पीर ॥

ग्यान समुंद अथाह गंभीरा, जेइ सेवा सो लागा तीरा ।
काहू ते सिर सौं बुडकावा, कोउ अंग धोइ के आवा ।
काहु जाइ हाथ मुख धोवा, काहु पानी पीअतो गोवा ।
कोइ जाइ देखि फिरि आवा, पुन्य सुफल सब काहू भावा ।
नातरि समुंद नीर बिहूना, पै बिरुला सिर पुरब क पूना ।

जा कहँ जैसी निश्चै, तन ताके तैसी सिधि ।
उदधि अपार पीर कलिजुग में, ग्यान अर्थ के निधि ॥

जो कोइ मन इच्छा कै आवै, देखत मुख परतग्या पावै ।
जा कहं ब्रह्मा ग्यान चितावै, औ लौलीन तन्त सिखावै ।
सेती जो दीन आपु गँवावै, सो किन हाट मोट धरि आवै ।
करम बात पै जानि न जाई, जेहि जस लौ तेहि तस अधिकाई ।
जेहि सिर पूर्व करम के रेखा, ते जग सेख महंमद देखा ।

जो रे डीठा बिधि सिरा, तेहि वर बाजा तूर ।
जो गा दूर के सिरा, तिन्ह अंध्यारे सूर ॥

येहि कलि जेतिक पंडित भये, मूँड़ मुड़ाये सिधि लइ गये ।
अरु अनेग मूरख जो आये, सो सभ प्रमपद ग्यान चेताये ।
ग्यान ध्यान छुटि और न काजा, भेस बिभेस दुनौ जुग राजा ।
जो कोइ देवस चारि संग रहा, ते छाडा दुहु जुग संग रहा ।
जतन मया दिस्टि भरि हेरा, ते आपुहिं दुहु जुग ते फेरा ।

हिया अंजोरिन पटतर, पावै कोटि सूर प्रगास ।
तीनि लोक निज पी बसा, गरुआ गरब गरास ॥

जैसा पीर कहा परवानै, तीनि भुअन भेद सो जानै ।
गुरु के बचन प्रमपद पावै, सतगुरु हो सो ग्यान लखावै ।

जो अग्या गुर कै न मानै, कहा करै गुर सिखा न जानै।
हिय का अन्धा सोइ गँवारा, जस उल्लू दिनहीं अन्धयारा।
चेतहु मूढ गुरू कै उपदेसा, नातरि मुये होत अन्देसा।

चेतहु मुगुध देस यह, लेहु गुरू औराधि।
आठौ सरीर सुध होइ, करहु समाधि समाधि॥

बारह बरिस धुन्ध के दरी, जहाँ सूर ससि दिस्टि न परी।
बिकट बिखम भयावन ठाऊँ, कलिजुग धंधलर जो नाऊ।
चहुँ दिस प्रवत बिखम अगंमा, तहाँ न कतहुँ मानुस संगमा।
तहाँ जाइ कै जपा विधाता, कै अहार बन जामुनि पाता।
मन मतंग मारि बस किया, ग्यान महारस अंब्रित पिया।

साहस उठै अपान, जो लीन्ह सिधि राधि।
बारह बरख रहे बन, परबत लाए ब्रह्मा समाधि॥

अरे अरे बचन तोर कहाँ बासा, अरु कहाँ हुते तोर प्रगासा।
अरु कहाँ ते उतपति भौ तोरी, जहाँ न सँचरै बुधि मोरी।
अचरज एक मोरे मन अहई, कोइ न अरथ ताहि कर कहई।
बचन कै उतपति मोहि सेऊ, मानुस बोल अम्बर हो कोऊ।
रहै न बचन कै पति जाहा, कैसे बचन अमर हो ताहा।

देखा मनहि बिचारि कै, बचनै बचन हिय माह।
बचन ऐस बिधना कै, जो बरतत सब माह॥

बचन जौ न निरमवत बिधाता, कहत सुनत कोई रस बाता।
प्रथमैं आदि सिस्टि जे सारा, हरि मुख बचन लीन्ह औतारा।
एकै बचन जे आदि हुँकारा, भल मन्दा ब्यापै संसारा।
उतपति बचन सिस्टि जे सारा, बचन बेवहरै सब संसारा।
विधनै जगत बचन बड़ कीन्हा, बचनहु ते पसु मानुस चीन्हा।

काहु सरूप न देखा, काहु न जाना ठाइँ।
बचन सुने हुति प्रगट, त्रिभुअननाथ गोसाइँ॥

बचन अमोलिक नग जे आवा, बचनहु ते गुर ग्यान लखावा।
चारि बेद बिधनै निरमैऊ, बचन जगत मो प्रगट भयऊ।

बचन सरग भुइँ ते आवा, औ बिधनै जग बचन पठवा ।
जो किछु बचन क सरबरि पावत, बचन को ठाव सोइ भू आवत ।
प्रथम मानुस भै औतरियै, बहुरि अमर जुग चारि न मरियै ।

बचन अमोल पदारथ, बरन न सके उरेख ।
बचन ऐस बिधना कै, जाकर रूप न रेख ।।

प्रथमहिं आदि पेम प्रविस्टि, अरु पाछे जो सकल सरिस्टि ।
उतपति सिस्टि पेम ते आई, सिस्टि रूप यह पेम सवाई ।
जगत जन्मि जीवन फल ताही, पेम पीर जिय उपजा जाही ।
जेहि जिय पेम आइ समाना, सहज भेद ते किछू न जाना ।
जेहि जगत बिरह दुख दैऊ, त्रिभुअन केर राउ सो भैऊ ।

जनि केउ बिरह दुख जे मानै, दुहु जुग और न सुख ।
धन जीवन जग ताकर, जाहि बिरह दुख दुख ।।

बचन अमोलिक नग संसारा, जेहि जिय पेम धन्य औतारा ।
पेम लागि संसार उपावा, पेम गहा बिधि प्रगट आवा ।
बिरला कोइ जागे सिर भागू, सो पावै यह पेम सोहागू ।
पेम अंजोरी सिस्टि इंजोरा, दोर पावन पेम क जोरा ।
सबद ऊँच चारौं खंड बाजा, पेम पन्थ जीउ देइ सो राजा ।

प्रेम हाट है चहुँ दिस पसरी, गै बनिजौ जे लोइ ।
लाहा अरु फल गहिकै, जनि डहकावै कोइ ।।

सिस्ट मूल बिरह जग आवा, पै बिना पूर्व पुन्य के पावा ।
पेम पदारथ जगत अमोला, निश्चै जीव जान यह बोला ।
देखा सुना जहाँ लगु जाई, पेम बवरजित थिर न रहाई ।
पेम दीप जाके हिय बरा, ते सब आदि अंत उजिअरा ।
बिरह जीव जाके घट होई, सदा अंमर पुनि मरे न कोई ।

कौनौ पाट पढ़ै न पावै, बिरह बुधि जे सिधि ।
जाके देइ दयाल दया कै, सो पावै यह निधि ।।

जेहि जिय परै पेम की रेखा, जहँ देखी तहँ देखी देखा ।
उपजि परै जेहि हिये ग्याना, जहँ देखी तहँ आपु अपाना ।

पुनि जो ग्यान बिरिख फर देई, सरबस तैं दोसर नहिं कोई।
कहहु सिस्टि जो रहै न दंदू, जहं देखी तहं आदि अनंदू।
तौ दीपक जे सिस्टि क ग्रेहा, तुह जीउ का जानसि ग्रेहा।

दुख सुख सब संसार कर, जत भावै तत होउ।
सो सब परसै आइ, तोहिं बिनु और न कोउ॥

तैं जलधर जो निधि का भरा, काहे मरसि कुंभ घट भरा।
तोर बदन त्रिभुअन इंजोरा, सकल सिस्ट जो दर्पन तोरा।
तोरि जोति सकल प्रगासा, त्रितुलोक पाताल अकासा।
सकल सिस्टि मों प्रगट तहीं, सरबस तैं दोसर जो नाहीं।
जो कोइ खोव सोइ पै खोवा, सो का खोव जो न कछु खोवा।

कौन सो ठाँउ जहाँ तैं नाहीं, तीनि भुवन उजिआर।
निरखि देखु तैं सरबस, पुरे सब ठाँ तोर बेवहार॥

अब सुनु कर्म बात जो आई, निरगुन रूप बैसु लौ लाई।
तन सो ऊरध ले गहि साँसा, अगिन डोल जो डोल बतासा।
झरकै पौन अगिन उदगरई, तौ रे कलंक कया कर जरई।
जौ लगि कस्ट गहे रह सोई, तौ लगि सरब गात धुनि होई।
औ तेही धुनि मो कर बासा, ताही जोति भीतर कबिलासा।

कोटि माँह बिरुला जन, भोगी वोह कबिलास।
सुने मंदिल मो बास, जहाँ न कछू प्रगास॥

परिहरि सुधि बुधि जे ग्याना, कया बेवरजित लाये ध्याना।
जौ समाधि लौ लागै ताहा, आपु अपान न पावै जाहा।
ग्यान अपार जहाँ अग्याना, तहाँ आपु ते आपु अयाना।
राजसमाधि लाउ लै ताहा, आपु अपानहि पाउस जाहा।
निरगुन जहाँ निरंजन सुना, तहाँ आपु ते आपु बीहुना।

सहज अलोले लाइकै, निगम गोफ रह सूति।
जहाँ न तैं औ कोइ नहिं, अरु एकौ करतूति॥

गढ़ का बखान

गढ़ अनूप बस नग्र चनाढ़ी, कलिजुग मों लंका जो गढ़ो ;
पुरब दिस जगरो फिरि आई, उत्तर पछिम गंगा गढ़ खाई ।
देखत बनै जाइ नहिं कहई, गढ़ भीतर गंगा जल रहई ।
ऊपर छाजा अनौन भाँती, हेठ बहै सुरसरि सरसती ।
साहि सहस जौ लागे आई, जाहिं मारि सिर ठेहौं खाई ।

नगर अनूप सोहावन, औ गढ़ बिखम अगंम ।
बरबस हाथ न आवै, पै बिना पुरब करंम ॥

गढ़ सोहावन सुरपति सुर स्याना, नग्र लोग सब सुखो सुजाना ।
बसरहिं भगती बीनानी, आनन्दित परदुखी बीनानी ।
दाता जो दयाल धरमिस्टा, सबै लीन रस प्रेम गरिस्टा ।
भागिवंत भोगी सब लोगू, औ सब धर कुलवंत संजोगू ।
मुंह अस्तुति जो कहा न जाई, जानहु सूर भुइं छावा आई ।

खोरि खोरि जो घर घर, नगर अनंदु हुलास ।
कलिजुग मो जो प्रिथिमी, उतरि बसी कबिलास ॥

यह खोटी जो नागिन कारी, त्रिभुअन मोहनी बिध कुमारी ।
जगत जन्मि जहाँ लगु आये, ते सब मोहि भोरै येइ खाये ।
येह कलि बारी बहुते चाही, बरि बरि गये न काहू ब्याही ।
येइ पापिनि संसार भोरावा, लोभ बिगूचे मूल न पावा ।
असि चंचल जनि मोहै कोई, लाभ मूल सौं जाइ न खोई ।

सुअटा सँवर बेगि तजु, बहुत बिगूचे पंखि ।
येहि पापिनि को भोरवै, जाके हिया न अंखि ॥

याहि मोह जनि मोहै कोई, लाभ मूल सौं प्रापति होई ।
चलो जाइ जिमि तार की छाही, ई बिटारी काहू की नाहीं ।

दिना पंच पंच सब सुते राती, काहू न भौ जम अहिवाती।
जेहि पालेसि निस्चै तेहि मारेसि, कौन सो जाहि उठाइ न डारेसि।
ऊँच नीच सबके घर जाई, पै अस्थिर कहुं थिर न रहाई।

मोहनिरूप छिनारि कै, खोटी बिध कुमारि।
सब संसार भोरवै येइ खावा, चंचल चपल बिटारि॥

पंडित सुन बिनती येक मोरी, बिनओं पाँव दुओ कर जोरी।
जौ भल बचन सराहि न जाई, वोछ न दूलखै दोस लगाई।
जौ पढ़ि बचन भले जौ भेदहु, दोस लगाई वोछ उछेदहु।
जहाँ न आखर पुरे सँवारहु, मलआ भये मन्द प्रतिपारहु।
का तेहि लिखे वोछ जो होई, कहहु कहाँ लै कीजै सोई।

मूरख जौ रे उछेदिहि, ताकर नाहीं सोच।
धन जग ताकर औतरब, अरथ लगावै पोच॥

पंडित मोहिं न दोस लगाइहिं, मूरख से जो आपु जनाइहि।
जौ पंडित जन होय बनाये, का मूरख के दोस लगाये।
तब हम भौ दोसर घर बासा, जब रे पितै छोडा कबिलासा।
बूझि पढ़े मोर आखर लोई, बिन बूझे मति दुलखै कोई।
दस मो एक वोछ जौ होई, ताके सीस चढ़ै मति कोई।

बचन अनूप भले सुनि, मूरख रह सिर नाइ।
वोछ बचन जो पावै, अच्छर पकरै धाइ॥

संबत नौ सै बावन भैऊ, सती पुरख कलि परिहरि गैऊ।
तौ हम चित उपजा अभिलाखा, कथा एक बांधउं रस भाखा।
सुरस बचन जहाँ लगि सुने, कबि जो समाने ते सभ गुने।
जो सभ कहै सुरस रस भाखी, सुनहु कान दै पेम अभिलाखी।
मैं छाँड़ा गुनकर परसादू, तुह छाड़हु जो बाद बेवादू।

अंम्रित कथा सुरस रस, सुनहु कहौं जो गाइ।
वोछ परत जो अच्छर, कबि महँ लेब छपाय॥

अंम्रित कथा कहौं जो गाई, रसिक कान दै सुनहु सोहाई।
रस को बात रसिक पै जानै, बिना रसिक नीरस कै मानै।

रस बिना घुन अंब्रित प्रहरई, बिना रस उटउख का करई।
जाके रस जेहि मो रस होई, तेहि रस मो रस पावै कोई।
जो जेहि रस कै जान न बाता, तेहिते रस अनरस उतपाता।

रस अनेग संसार कर, सुनहु रसिक दै कान।
जो सब रस महराउ रस, ताकर करौं बखान॥

आदि कथा द्वापर मो भई, कलिजुग मो भाखा जो गाई।
गढ़ कनैगिरि नग्र सोहावा, जनु कबिलास उतरि कै आवा।
सुरजभान तहँ राजा बखानी, नौ खंड सात दीप जग जानी।
राज साज अंन धन संबूहा, गनै न जाइ तुरै गज जूहा।
आउ सूर पियर धूप आई, संतति सूर उदितनल भाई।

बिधि प्रसाद भरि पूरा, है गै जो मैमंत।
सुत चिंता पै रैनि दिन, राजा के चित नित॥

तपाखंड

तपा एक आवा तेहि ठाऊँ, लोगन्ह जाइ जो परसा पाऊँ।
तेहि पाछे राजा चलि आवा, पाँव धूरि लै सीस चढ़ावा।
येह बड़ि माया बिधनै कीन्हा, तुम्ह सौं भेट हमहिं करि दीन्हा।
जस मांगा तब देश्र तस दीन्हा, मारि बिनती बिधनै सुनि लीन्हा।
साध एक मोरे जिउ अहई, तो सौं भले मो निरबहई।

तपै समाधि लगाइ, लोग बहुरि घर आव।
एकसर राजा बन महँ, सेव तपा कर पाँव।

राति दिवस सेवा जे लागा, दिवस न सुतै रैनि निसि जागा।
भूख पियास नींद न बाढ़ा, तपा आगे निसदिन रह ठाढ़ा।
बारह बरिस सेवा तौ कीन्हा, तपा समाधि छुटे सुधि चीन्हा।
कौन आहि तैं मानुस बारा, कौनें काज तुह एक पाँव खरा।
मैं राजा यहि नग्र मंझारी, बारह बरिस भा सेवा तोहारी।

अगिनत अंन धन रानी, है गै सहन भंडार।
एक न पूत बिधि दीन्हा, जासौं उतरौं पार॥

अस बिनती जौ राजै कीन्हा, तपा परसंन भै आसिख दीन्हा।
तपै कहा सुनु राजकुमारा, तोके दीन्ह बिधनै एक बारा।
कै जेवनार पिंड एक कीन्हा, हरख सहित राजा के दीन्हा।
जो रानी के प्रान पियारी, ताहि देहु मन भाव तोहारी।
राजै लै जो सीस चढ़ावा, परसि पाँव तौ नग्रहि आवा।

पाट बंधी जो रानी, ताहि कहेहु तुह खाहु।
कै अस्नान सुध होइ, तौ इहवां सौं जाहु॥

जन्मौती खंड

सुत संतति कलि दूसर भैऊ, सुख अधार जग जिन साऊ।
सुत से माता पिता जग लहई, सुत से नाँव जगत मो रहई।
सुत बिना है ब्रिथा संसारा, सुत दीपक बिनु जग अंध्यारा।
सुत बिना मुये नाँव को लेई, सुत बिना को पिंडा देई।
येह सब कहा सपूत क बाता, जनि कपूत बंस देइ बिधाता।

जनु छठी अंगुरी हाथ मों, उपजै काहु सरीर।
जौ राखी तो अपजस, जौ काटी तौ पीर॥

ब्रिध बैस जे आस निरासा, राजा ग्रिह जे निर्मये आसा।
संतति आस राय जब पाई, करै लागु सुत आस बँधाई।
मेख लग्न अस्विनि पैसारा, दसयें अंस ऊँच अवतारा।
पचयें ससि सूरज छठवाईं, दसयें सुक्र ब्रिहस्पति नवईं।
दिस्टि सनीच्चर नखत लिलारा, दसयें राति भयो औतारा।

मदन मूरति भागिवंत, रानी राय अधार।
सुभ महुत्र औतरे, राजा कुल उजियार॥

भोर भौ पंडित जन आये, रासि बारा गन जो गरह गनाये।
पंडित गुनि गुनि कहा विचारी, होइ नरेस छत्रपति भारी।
गन गंध्रप मुनि बार जोहारै, जग नरेस सब सेवा सारै।
लखनवंत भागिवंत बिनानी, रन छत्री साका प्रवानी।
दाता गरुअ गरिस्ट गंभीरा, सब दयाल पर पीरी पीरा।

लखन चिन्ह कंठ माथे, रुद्र रेख दुहुँ पाँउ।
सिव रासि कुल दीपक, धरा मनोहर नाँउ॥

चौदह बरिस एगारह मासा, नवयें दिन पुनित्र प्रगासा।
जन्म सूर सतएं ससि तारा, मिलै सजन कोइ पेम पिआरा।

बुधवार बीफै की राती, उपजै पेम कुंअर के छाती।
तेहि बिवोग हो कुंअर बिवोगी, बरिस एक भौ दिसा के जोगी।
तेहि पाछे तौ जम जमराऊ, अस जो लग्न गरह का भाऊ।

सुभ लग्न जन्मौती, पै किछु गरह बिसेख।
बरिस चतुरदस ऊपर, कछु उदास जो देख॥

छठी राति छठी बाजन बाजे, घर घर नग्र बधावा साजे।
सब घर नग्र उछाह कल्याना, खोरि खोरि आनंद निसाना।
राजा ग्रिह सुनि सब आये, करैं छतीसौं पौनि बधाये।
म्रिगमद तिलक चित्र जे अंगा, औ सोभौ उर हार तरंगा।
मुख तंबोर सिर सेंदुर रोरा, गावैं तरुनी होइ अंदोरा।

सब घर नग्र बधावा, औ जो खोरि अनंद।
सुरस कंठ जो गावै, धुरवा धुरपद छंद॥

राजा ग्रिह सुनि हर्ख बधावा, सब घर तूरि पटोर पठावा।
औ जत नग्र अमनैक छाये, सब जन पहिराउरि पाये।
देस किसान जहाँ लगु आहे, ते सब एक बरिस न उगाहे।
औ जत नग्र देस मो दुखी, ते सब किये दान देइ सुखी।
औ अनेग जो भौ बधाई, सो मोहि जीभ कहा न जाई।

हाट पटोरन्ह छावा, म्रिगमद अगर कपूर।
नग्र खोरि सब महके, तरुनी सिर सेंदूर॥

बरहे दिन बरहे भौ भारी, नग्र लोग जो नेवता झारी।
दुखी लोग बैसाइ जेंवावा, अमनैकन्ह घर घोर पठावा।
भाटन्ह घोरा दै बहुराये, भाटिनि सबै पटोर पेन्हाये।
औ जाचक जहाँ लगु आवा, जो जस तेहि तस दै बहुरावा।
नग्र छतीसौ पौनि सवाई, सबके राजै दीन्ह बधाई।

सोना रूपा अन्न धन, है गै रतन पँवार।
राजै राजकुँअर के बधाई, राखा किछु न भँडार॥

पाँच धाइ जो पाँच खेलाई, राजै ढूँढ़ि सुजान मँगाई।
औंटि दूध नित करै अहारा, जस बसंत रितु सिर के डारा।

दिन दिन पलुहै राजकुमारा, पसरा पँच अंब्रित जेवनारा।
रानी राउ देखि रहसाहीं, अति हुलास न देह समाहीं।
खन खन राजा अंकम लावै, नेवछावरि नित दर्ब लुटावै।

ब्रिध बैस देखि संतत, खन खन रहसै राउ।
सब दिन कोड कोलाहल, सब दिन हर्ख बधाउ॥

निसि बासर सुख कै भोगू, राजा कुंअर भै आव संजोगू।
पँचये बरिस धरा भुंइ पांऊ, पंडित के बैसारेउ राऊ।
दरब कोटि दुइ आगे राखा, तापर बिनती राजै भाखा।
मोहि तोसौं न लागै खोरी, दिन दिन करब मैं सेवा तोरी।
जैस मोर तैसन सुत तोरा, बिद्या देत न लाये भोरा।

आपुहिं दोस न लावौ, बिनवै चर्न गहि राउ।
प्रतिपालहु बालापन, आपन मोर हिआउ॥

पुनि पंडित कुंअर मन लावा, एक बचन बहु अर्थ पढ़ावा।
जो अस बोल कुंअर औरावा, चित्र उरेहे अर्थ बुझावा।
थोरे दिन भा कुंअर सयाना, बेद भेद बहु भांति बखाना।
अमर जो अमरु सतभावा, पिंगल कोक कंठ औरावा।
ब्याकरन जे जोतिख गीता, गीत गोबिंद अर्थ को कीता।

औ जो ग्रंथ ग्यान जोग, पढ़ा अनेग कुमार।
निपुन भौ गुन बिद्या, बादि न कोऊ पार॥

जौं लगि कुंअर बिद्या साधी, जौं लगि गांठी बरहीं बांधी।
तब जो कुंअर सरौ औराई, साधना नांव सिस्टि जे आई।
खांड फरी जो कोत कटारा, माल सरौ जो साधु कुमारा।
धनुष बान लावौं केहि जोरा, बार बांधि निति मोती फोरा।
देखि कुंअर के सारंग साजा, सरग धनुख धरती लाजा।

दान सूर बिद्या गुन पुरा, दस औ चारि निदान।
भागिवंत बुधिवंत जो, मदन मुरति सुर ग्यान॥

बरहे बरिस कहौं जो गाई, सहज चाव चित पैसा आई।
अब मैं ब्रिध बैस न संभारौं, राज तिलक सुत कहँ सारौं।

पुनि राजै जन परिजन राये, औ अमनैकन नग्र जो छाये।
सब से राइ कोन्ह मतराई, आयु मोर पियर धूप आई।
पंचहु मते आव जो आजू, कुअरहिं देउ राज के साजू।

पुरुखहिं ब्रिध बैस के, संतति जोबन बीते कंत।
कहह बास एह दूनौ, उजरी रितू बसंत ॥

अब संपति मोरे केहि काजा, कहहु कुंअरहिं करौं मैं राजा।
मैं प्रहरउँ प्रिथिमी क दंदू, सुत जो करौ राज अनंदू।
कहहु मटुक कुंअर सिर धरऊँ, मैं हरि नाम जपौं जे तरऊँ।
जन परिजन राउ जो राने, कुंअर नाम सुनि कै रहसानै।
राजा बचन सब काहू भावा, नग्र लोग हो आनंद बधावा।

सात दीप नौ खंड प्रिथिमी, चहुँ दिसि होउ बधाउ।
राजा राजकुंअर कहँ चाहै, देउ राज कहँ राउ ॥

अस्वनि लगन बिहसपति बारा, औ ससि सूर करैं उजियारा।
सुकुल पछ मधु मास सोहावा, राजै राज कुंअर हँकरावा।
आवत कुंअर ठाढ़ भा राऊ, धाइ कुंअर दुइ पकरा पाऊँ।
पुनि राजै तौ अंकम लावा, आपनि ठाँव राज बैसावा।
प्रथम आपु राय जोहरावा, तौ जो सकल सिस्टि सिर नावा।

सिर सौं मटुक उतारि कै, धरा कुंअर के सीस।
नग्र लोग आनंदकर, सब जग देइ असीस ॥

राजा राउ जहाँ लगु आये, राज अग्या कुंवर सिर नाये।
सात दीप नौ खंड जग जाना, उदै अस्त भौ कुंअर क आना।
सबद ऊँच महि मंडल बाजा, राजपाट कुंअर जुगराजा।
त्रिभुअन दिस्टि आयेस माना, सबन्ह कुंअर ठाकुर कै जाना।
सिरजनिहार सिस्टि जे फिरी, सब पर आन कुंअर की फिरी।

उदै अस्त महि मंडल, सुर नर मुनि गन देउ।
सब अग्या प्रतिपारै, करै कुंअर के सेव ॥

जन्मौती सुख दिन जे अहे, ते सब कुंअरहिं सुख निरबहे।
चौदह बरिस इगारह मासा, नवयें दिन पुनीव प्रगासा।

पुनि जो गरह दसा जो भारी, दीन्ह आनि कुंअरहिं अँकवारी।
सिंघ लगन सूरज उजिआरा, नौ सत कलक भौ ससि तारा।
इहै जो गुनी साठि गुन धरी, बुधवार बीफै सिर परी।

जन्मौती खति लाभ दुख, जो रे परा लिलार।
तेहि त्रिभुअन जौ लागै, लिखा को मेटै पार॥

अपछुरा खंड

अब उतपति सुन पेम की बाता, जैसे कुंअर पीरम मदमाता।
तेहि दिन आये नर प्रदेसी, नाचहिं गौरा दखिन देसी।
कुंअरहिं सदा नाच मन भावै, निसि बासर तौ त्रित करावै।
देखत नाच कुंअर मन भाये, तुरंत बेगि कँछुवाय मंगाये।
सुरजभान जो बैसे आई, औ जो अहे सब राज अथाई।

देखत नाच अर्ध भौ रजनी, अरसे सुर्ज दुआर।
उठि नाच कांछ सब, पौढ़न गये राजकुमार॥

पालक सेज मैं बरनौं कहा, कहौं सोइ जो कहबे आहा।
सैन संजोग कुंअर जौ पाई, अरसाई सुख निंद्रा आई।
आपुस मो बिछुरे जो अहे, दोउ पलक धै नींदन्ह गहे।
भौ पलक रति संजम जोगी, जनु बिछुरे दुइ मिले बिवोगी।
नींद पीरम सुख बिधनै सिरी, पै जिन्ह चखु पेम किरकिरी।

मैं का कहौं बिधातहिं, नींदहिं धरा पीरम सुख नाउँ।
का कहि ताहि बखानौं, जाकर नैन मांझ भा ठाउँ॥

जगत सुखी अपने सुखमाता, दुखी आपने दुख उतपाता।
जाके नैन नींद सुख लागहिं, दुख सुख दुनौं छोड़ि जो भागहिं।
गुन औगुन निंद्रा महँ दोऊ, जागै सोइ जो जानत कोऊ।
नींदहि जगत जन निंदहु भाई, बहुतन्ह सिधि निंद्रा महँ पाई।
जो पै कोइ सोइ जग जानै, सो पै नींद परम सुख मानै।

जेहि सोवत औ जागत, एक भांति बेवहार।
सो पै नीद सराहो, जो जियते धै मार॥

जो जियते धै मार अंडारा, तेहि निंद्रा जनि सोउ गँवारा।
छोटी मीचु जग निंद्रा आई, मीचु जगत बड़ि नीद उपाई।

जस सपने के सुख औ राजू, जागे आव न कौने काजू।
औ सूतो जे आहि सवाई, साँचि सबै झूठी भै जाई।
जागत सोवत जस है यही, येहि जग दुनौ झूठ गन देही।

एक अग्नि निंद्रा जग, जोरे पियै न जाइ।
तेहि निंद्रा जनि सोवहु, मूरख जो सबै नसाइ॥

हरि हरि कहाँ गये कहँ आयेउ, का कछु कहै लिये का कहेऊ।
कुंअर बात मैं कहबे लई, बीच नींद मोहिं हरि लै गई।
अब सुनु पलटि कहौं जो बाता, जब कुमार सुख निंद्रा माता।
बिधि संजोग भौ अछरि केरा, सोवत कुंअर सेज पर हेरा।
देखा गंध्रप मुरति अमोला, देखि सुरहिनि कर मन डोला।

कहा कि यह मानुस हम अछरि, आव न हमारे काज।
एहि सरि कन्या हेरहु, उदै अस्त महि राज॥

उदै अस्त जहाँ लगु जग रेखा, कौन सो ठाँव जो हम न देखा।
हम हहिं सब संसार बिनानी, ढूंढहु येहि जग जोग परानी।
कोइ सराहैं सोरठ गुजराता, कोइ कह सिंघलदीप क बाता।
त्रिभुअन चित आइ दौराई, कुंअर जोग जो नारि न पाई।
पुनि उठि जनी एक जो कहा, एहि रे जोग कन्या एक अहा।

विक्रम राय सकबंधी, नगर महारस थान।
तेहि के वर मधुमालती, रवि ससि रूप छपान॥

सुनत नाँउ बहुते चित भाऊ, कोऊ कह कुंअर रूप अधिकाऊ।
पुनि सब मिलि कहा बिचारी, पटतर देखि कुंअर कुमारी।
कोइ कह कुंअरि इहाँ लै आई, कोइ कह कुंअरि उहाँ लै जाई।
जनी एक जो कहा बुझाई, जाते आवत रैनि सिराई।
पुनि मोहनी चखु निंद्रा लाई, लीन्ह कुंअरहिं सैन उचाई।

जहाँ सोवै सुख सेज्या, सोहागिनि तीनि भुअन उजिआरि।
लै पालक तहँ डाँसा, सम के देखा रूप उन्हारि॥

देखा सो नहिं जाइ बखाना, दिन सूर निसि चांद छपाना।
अचक रहा जो कहा न जाई, देखि रूप सब रहीं लजाई।

येहि देखहिं तौ अधिक लोनाई, वोहि निरखै तो रूप सवाई।
अपने अपने कला सपूनो, कोइ न देखि पाव बिहूनो।
अपने रूप कुंअर निरमला, बर कामिनि मुख सोरह कला।

जौ जौ निरखि निहारै, तौ तौ अधिकै रूप।
तीनि भुअन मो बिधनै, ये दुख सिरा अनूप॥

देखा रूप अधिक कै दोऊ, एक एक ते अधिक न कोऊ।
जौ बिधि इन्ह दुहुँ होइ मेरावा, बाजे तीनौ लोक बधावा।
जोगहिं जोग मिलै सुख होई, औ सुख इन्ह जौ देखै कोई।
तीनि भुअन जग जीवन साईं, इन्ह दुहु जोग मिलाव गोसाईं।
त्रिभुअन सिस्टि ढूँढ़ि मैं रही, इन्ह दुहु सम तीसर कोइ नहीं।

वह रे सूर यह ससिहर, यह ससिहर यह सूर।
इन्ह दुहु जौ पेम प्रीति उपजै, त्रिभुअन बाजै तूर॥

कहेन्हि की यह पेम पियारा, बिधनै जगत सीभु औतारा।
हौं यहि नग्र चरा गति आई, चलहु जाइ कौतुक अँबराई।
जौ लगि येइ सोवै येहि ठाऊं, तौ लगि फिर देखैं लखराऊ।
वोइ गौनी लख राउ सवाई, जागा राज कुँवर अँगिराई।
देखा दोसर सैन सम डासा, राजकुंअर एक तहाँ निवासा।

पाँच एकादसि कला सपुनि, जो बन उससे बांह।
सूर न सरबरि पावै, चाँद न खूंदै छांह॥

चहुँ दिसि मन्दिल पटोर ओढ़ावा, हेम खंभ सभ रतन जड़ावा।
मन्दिल सरग ससिबदनी नारी, तारे नैन धरा जनु तारी।
कचपचिया औ चेरी टोला, पालक जानौ अकास खटोला।
पालक एक जो आये सवारी, सोवत सेज सहज बिकरारी।
सेज सौरि को बरनै पारा, कहत सुनत जो बात रसारा।

नौ सत बाला साजे, सोवत है सुख सेज।
चेत न रहा कुँअर तन, देखि हरा बुधि तेज॥

सोवत सेज सहज बिकरारा, देखि सजग भौ राजकुमारा।
चकित चित भै चहुँदिस हेरा, बिधि येहि मन्दिल केहि केरा।

औ यह कौन सोव बिकरारा, धन बिधना जे कलि औतारा।
देखत हिये समानो स्वासा, कुँअर जीय के कीन्ह प्रनामा।
सुख सोवत जो देखी बाला, नखसिख उठा कुँअर तन जाला।

कौंल भाति दिन बिगसत, निरखि निरखि मुख सूर।
देखत पेम प्रीति पूरब के, हीवर लीन्ह अंकूर॥

सिंगार खंड

जौ जौ देखु रूप सिंगारा, खन मुरछै खन जा बिकरारा।
देखि रूप चक्रित चित रहा, बिध यह कौन कहाँ मैं अहा।
एक रूप औ किये सिंगारा, मुनिवर टरहिं देखि मुख बारा।
रूप रेख जौ कहौं बखानी, सहज भाउ भै जीउ समानी।
देखत रूप कुँअर भरमाना, बघुली पात तिमि प्रान उड़ाना।

रूप सरूप सोहागिनि, जौ न देखि अघाइ।
तौ तौ रूप न परिहरै, नैन जो रहे लोभाइ॥

उतपति कहौं मांग सुझाऊ, खरग पन्थ जो बिकट चढ़ाऊ।
देखत माँग चिकुर कस भावा, खिन भुलाइ खिन मारग पावा।
अति सोभित सिर माँग सोहाई, खरग धार जे रकत बुझाई।
मांग पन्थ चलन को पारा, परग परग बैसे फँसि हारा।
जत गौने तत मारे धाई, परग खसत सब दीसै जाई।

मांग सरूप सोहागिनि, जानहु खरग कै धार।
देखि बरनि को पारै, देखत होइ दुइ फार॥

सुर्ज किरनि जग माँह सोहाई, सब जग जीति गगन पर आई।
माँग न आहिं गगन कै हाटा, रबि ससि उआ अस्त कै पाटा।
कै जनु अमिअ नदी बहि आई, बदन चाँद तौ अमी सेराई।
मांग सरूप देखि जिउ हरई, दीपक बदन जोति तौ बरई।
सिर पर भाव दीन्ह बिध जाही, केहि पटतर लै लावौं ताही।

स्याम रैनि महँ दामिनि, चमकै स्याम दल मँह दीस।
सरगहु ते जनु छिटकी, आइ परी त्रिय सीस॥

तापर कच बिखधर बिखसारे, लौटे सेज सहज बिकरारे।
सगबगाहि परतख मनिआरे, गरल धरे बिखधर हत्यारे।

निसि अँजोर दिन देखराये, निसि अँध्यार कुच मोकलाये।
कंचन हो बिरहे दुख सारा, औ जाइ मधु सीस सिंगारा।
भूली दसौं दिशा निजु ताही, चिकुर चिन्हारी भौ जग माहीं।

छिटका चीर सोहागिनि, जगत भा अन्धकाल।
जनु बिरही बिधि कारन, मनमथ रोपा जाल॥

जग सुबास पूरित भै जाही, कछु जानसि तौ कारन काही।
कै जनु म्रिगमद नाभ उघारी, कै मधुमालती चिकुर खिडारी।
यह जो जगत मलयानिल राऊ, अति सुगन्ध जानहि केहि भाऊ।
दिन एक कामिनि चिकुर खिडाए, ठाढ़ भए तब निकट जो आये।
तेहि दिन सौं जो भवौ उदासा, पै अजहूँ न गौ सुबासा।

चिकुर कसा मधुमालती, जब सौं बहेउ बतास।
तेहि दिन सौं निसिबासर, सन्तति भवैं उदास॥

निकलंकी ससि दुइज लिलारा, नौ खंड तीनि भुअन उँजियारा।
बदन पसीज बुंद चहुँ पासा, कचपचिए जो चांद गरासा।
म्रिगमद तिलक ताहि पर धरा, जानहुँ चाँद राहु बस परा।
गौ मअंक सरग जो लाजा, सो लिलाट कामिनि पहँ छाजा।
सहज कला देखा उजिआरा, जग ऊपर जगमगहिं लिलारा।

तर मअंक ऊपर निसि पाटी, बनी है कसि रीति।
जानहु ससि जो निसि ते, भौ सूरति बिपरीति॥

काम कमान रहसि कै लीन्हा, बर सो तोरि टूक दुइ कीन्हा।
पुनि धरती सौं मेलि लँडारी, तेइ बनाइ मधु भौंह सँवारी।
भौंह नेवारि सोह कस नारी, मदन धनुख तौ धरा उतारी।
जौ चखु चढ़ी भौंह बर नारी, इन्द्र धनुख दे पनच अंडारी।
ते धनुख मदन त्रिभुअन जीता, बरुनी उतारि नारि कै दीता।

जौ तुह लोक नेवास भौ, जगत न रहा जुझार।
देखत जा हिये सर निफरे, ताहि को जीतै पार॥

सूते सेज स्याम जो राते, जागत होते हनि कै जाते।
चपल बिसाल तीख जो बाँके, खंजन पलक पंख ते ढाँके।

जनु पारधी एकंत जीव डरई, पौढ़ा धनुख सीस तर रहई।
दुनौ नैन जीव कर ब्याधा, देखत उठै मरन कै साधा।
सन्मुख भै केलि जो करहीं, कै जो दुइ खंडन उड़ि लरहीं।

अचरज एक जो बरना, बरनति बरन न जाइ।
सारंग जो सारंग तर, निरभम पौढ़ा आइ॥

बरुनी बान बिसह बुझाई, मटक परत उर जाहि समाई।
बरुनी बान सन्मुख भै जाही, रोव रोव तन झाझर ताही।
दिस्टि पंथ गौ हिये समानी, रुधिर करेज औंटि भौ पानी।
जब रे बरुनी सौं बरुनी मेरावै, जानहु छुरी सौं छुरी लरावै।
बरुनी बान जीति को पारा, एक मूठि सौं खाँड पबारा।

बरुनी बान के मारे, मैन सकेउ जग पेखि।
केहि न त्रितु भइ जग, बरुनी सोहागिनि देखि॥

नाक सरूप बरनै पारेउँ, तीनि भुअन हेरि मैं हारेउँ।
कीर ठोर जो खरग कि धारा, तिलक फूल मैं बरनि न पारा।
उदयागिरि जे कहौं तौ नाहीं, ससि रे सूर दुइ बाद कराहीं।
निकट न कोउ संचरै पारा, निसि दिन जियै बास अधारा।
केहि लै जोरौं पटतर नासा, ससि रे सूर दुइ करै बतासा।

नाक सरूप सोहागिनि, केहि लै लावौं भाउ।
जाके ससि जे सूर निसि, वो सरि सारै बाउ॥

अति सरूप रस भरे अमोला, जो सोभित मुख कंठ कपोला।
मैं मतिहीन बरनि न आई, मुख कपोल बरनौं केहि लाई।
नहिं जानौं दहु केत पसारा, सो बेरसहिं निधि का भारा।
अस कपोल बिधि सीर सोहाये, जोय न जा किछु उपमा लाये।
मानुस दहु बपुरा केहि माहीं, देवता देखि कपोल तवाहीं।

सुर नर मुनि गंध्रप, काहू न रहेउ ग्यान।
देखि कपोल सोहागिनि, टरै जो महेस ध्यान॥

अधरस अमी छीर बास सोहाये, पेम प्रीति हुती रकत तिसाये।
अति सुगन्ध कोमल रस भरे, जानहु बिम्बु मयंकम धरे।

पटतर लाइ न जाइ बखानी, जानहु अमी गारि बिधि सानी ।
अधर अमो रस भरे अपीऊ, कुँअर जान निसरै मम जोऊ ।
कब सो घरी बिधि निर्माइहि, कब यह जीव अधर पर आइहि ।

अनल बरन सोहागिनि, जगत सुधानिध जान ।
अचरज अंम्रित अग्नि सम, देखत जरै परान ॥

तिलक जोति बरनि न जाई, चौंधी दिस्टि देखि चमकाई ।
नीक बिसनाइ नींद मो हंसी, जानहुँ सरग सौदामिनि खसी ।
बिहसत अधर दसन चमकाने, त्रिभुअन मुनिगन चौंधि भुलाने ।
मंगर सुक्र गुर अस्वनि चारी, चौका दसन भई कुमारी ।
नहिं जानौं दहु केहि दुरि जाई, रहा जाइ ससि माँह लुकाई ।

जौ कोइ कहै बुधि बिसरा, तेहि का सुनहु सुभाउ ।
बिरह गुपुत जग माहीं, काहु न देखा जो काउ ॥

दुइ तिल परा मुख पर आई, बरनि न जा जे उपमा लाई ।
जाइ कुँअर चखु रूप लोभाने, हिलगे बहुरि जाइ न आने ।
तिल न होत रैनि की छाया, जाके सोभ रूप मुख पाया ।
अति निरमल मुख सूर सुरेखा, चखु छाया ता मों तिल देखा ।
स्याम कुँअर लोयेन पूतरी, मुख निर्मल पर तिल भै परी ।

अति सरूप मुख निर्मल, मुकुता सम प्रवान ।
तामो चखु की छाया, दीसै तिल अनुमान ॥

सुधा समान जीभ मुख काला, औ बोलति अति बचन रसाला ।
सुनत बचन अंम्रित रस बानी, म्रितक मुख भरि आवै पानी ।
सुनहु जीभ मुख बचन अमोला, सौ सब भौ जगत मीठ बोला ।
कौन तपा जग जन्मिहि आइहि, जो रसना पर रस ना लाइहि ।
अति रसाल रसना मुख रसी, दुइअर बीच आइ रस बसी ।

अति रसाल रसना मुख, कामिनि अमी सूजं प्रवान ।
बदन चांद तहँ अंम्रित, अमो सराहि जे जान ॥

सुंदर सीप दुइ स्रवन सोहाये, सरग नखत जो बारि जराये ।
तरिवन हीरा रतन नग जरे, अदित सुक्र जो घुटिला परे ।

दुइ दिस दुइ चमकैं अनिआरे, ससि संग आइ उये जो तारे।
जग काके अस भाग बिधाता, स्रवन लागि कहब जो बाता।
बाला बदन चांद रखवारा, माँग राहु केतु दुइ फारा।

कानन्हि चक्र नरायन, दीपै दह दिसि जोति।
नातरि राहु गरासत, जौन चक्र भै होति ॥

गीव अनूप केहि बरनौं लाई, कै बिसकरमै चाक भँवाई।
कर्म लिखा दहु काहि लिलारा, कै प्रयाग गै करवत सारा।
केहि के अस गीव बिधि निर्माई, धन जीवन जे बेलसब गीव लाई।
धन जीवन धन औतारा, जेहि कलि बिधनै अस गीव सारा।
देखत तीनि कंठ की रेखा, सजग सरीर होइ अस भेखा।

तीनि रेख तिय सोभित, गीव सोहागिनि दीस।
कौन सो पतिनी रमै, अैस कौन जगदीस ॥

भुजा सोभु बिसकरमै गढे, हेरि रहे तापर मुनि ठाढ़े।
सबल सरूप अति बरिआरे, देखि बीर अबला बलिहारे।
औ अनूप दोइ बनी कलाई, काम कमान ते कूदि चढ़ाई।
औ तेहि ऊपर सुंदर हथोरी, फटिकसिला जो ईंगुर बोरी।
बिरही जन जहवाँ लगि मारे, तिन्ह के रकत दिसै रतनारे।

सोभित सबल सरूप सोहाये, त्रिभुअन जीतनहार।
दहु केहि देहिं अलिंगन, धन सो जग औतार ॥

अनि सरूप दुइ सीहुन अमोले, जेहि देखत त्रिभुअन मन डोले।
कठिन हिरदै महँ बिधि निर्माये, ताते कठिन सीहुन दुइ भाये।
जौ रे हिरदै पर हिरदै लुसरे, कुच आदर कहँ उठि भौ खरे।
दुऔ अनूप स्रीफल नये, भेंट आनि तरुनापापा दये।
जबहिं प्रानपति हिय रे छाये, कुच सकोच उठि बाहर आये।

कठिन कोरारे कलि सिरे, गरब न काहु नवाहिं।
दुऔ सिव के संभेत, आपुस महँ न मिलाहिं ॥

अनिआरे जो तीख अन्याई, दिस्टि साथ उर पै सहि जाई।
सोभित देव स्याम सिर बाने, महाबीर त्रिभुअन जग जाने।

दोउ सिव पर चाहहिं लरा, हार आइ तब अंतरु परा।
दुऔ बीर जग जूह जुझारा, सोहै ऐस औ उर हारा।
अैनी पैनी उन्ह क सुभाऊ, संतत और न पाछे काऊ।

बिपरीत भाउ तिन्ह के, सुनहु अचरिज बिसेस।
जहाँ न उपजै सालै, सालै तिन्ह के जो देख॥

रोमावलि नागिनि बिसभरी, बेंबैरहु ते गिरि अनुसरी।
नाभि कुंड महँ परी जो आई, घूमि रही पै निसरि न जाई।
पातर पेट अनूप सोहाई, जनु बिध बाजु आंत निर्माई।
लंक छीन देखि चित हरई, भार नितम्ब टूट जौ परई।
छुइ न जाइ निहाथ पसारी, मानहु छुअत टूट हत्यारो।

टूटी परकर कामिनी, गरुअ नितम्ब के भार।
जौ न होत दिढ़ बंधन, त्रिबली तासु अधार॥

करि माहे त्रिबली कसि आई, बिधनै गढ़त मूठी तौ गही।
गुर जन लाज चित मँह माना, तौ नहिं मदन भँडार बखाना।
देखि नितम्ब चिहुट चित लागा, परत दिस्टि मनमथ जागा।
जुगुल जाँघ देखि चित थहराई, मन भरमा कछु कहा न जाई।
रात कौंल जो सेज सोहाये, तरवा कौंल नहिं पटतर लाये।

बिपरीत बन केदली, औ गज सुंड सुभाउ।
उपमा देत लजानेउ, सुनहु कहौं सतभाउ॥

बिना कटाछ बिनु भाव सिंगारा, सूते सेज को बरनै पारा।
जो बिधि सिरा जुवा अनूपी, सहज ते बाजु सिंगार अनूपी।
सगरी सिस्टि केर अहिबाता, लज्या बिहित मदन भौ गाता।
सोवत देखा सैन बिकरारा, उठा कुँअर तन बिकरारा।
सहज चित उपजा बैरागू, बिरह आइ भौ जिव कर लागू।

बदन धनुख दुति उदित, देखि न रहै मुनि चेतु।
धन सो जन्म जग ताकर, जासौं उपजै हेतु॥

सोवत बरनि जीव पछताने, कस न जाइ सिंगार बखाने।
अब जगाइ रस बात कहाऊँ, और बचन सुनत रस भाऊ।

दुश्रौ भुश्रा बर सिव पर श्रानी, श्रंग मरोरि श्रति जभुश्रानी।
सजग भौ बिबि लोयेन कैसे, उठै श्रघात पारधी जैसे।
सहज भाव जौ भौंह सकोरा, बदन धनुख तौ दीन्ह टंकोरा।

मदन धनख दोइ भौंहैं, चढ़ै जो गाढ़े ठान।
तीनिउ लोक संकानेउ, देखत भौहन्ह बान॥

——

मधुमालती जागी खंड

जागि उठी पुनि राजदुलारी, चकित चहुँ दिस हेर निहारी।
सजग भौ म्रिग चहुँ दिस हेरा, जिन्ह के सिंह से दूर अहेरा।
पुनि जौ कुंअर देखु अंगिराई, दोसरि सेन है निकट डँसाई।
तापर राजकुंअर एक भारी, देखि भरमित भौ जो बर नारी।
देखसि वोहि पुर्ख की करा, भरम होत जिउ ढाढस धरा।

सकुचि हिये बर कामिनि, पुनि उठि बैसु संभारि।
त्रिया धीरज धर चित महँ, बोली राजकुमारि॥

पुनि बर कामिनि अधर अमोले, अंम्रित बचन कहन कहँ घोले।
पूछेसि मधुरे बचन रसाला, को आहहि तैं देवकुमारा।
कहु आपन मोहिं नाम गोसाईं, कौन सकति आये यहि ठाईं।
जहाँ नेवास करै सो बारी, पवनौ करै न पाव सँचारी।
सपत सिंभु दै पूछौं तोही, कहु बात आपन निज मोही।

कै तुह इन्द्र सभा के देवता, कै पताल के नाग।
कै तुह म्रितुलोक के मानुस, कहौ भर्म जो भाग॥

कै तैं राकस भूत की छाया, कै तोहारि यह मानुस काया।
कै गुरु बचन सिधि तैं पाई, कै मूरि गुन ग्यान लखाई।
कै तैं चढ़ेसि मन पौन खटोले, आयेसि हमरे मंदिल अमोले।
कै तै मंत्र सकती किछु पाई, कै मूरि गुन ग्यान लखाई।
अगम पौरि चारौं दिस लागहिं, आस पास सब पहरू जागहिं।

भौंरी सात मंदिल के, जागहिं बीर अपार।
तहाँ कैसे तुह आयेहु, जहाँ न समीर सँचार॥

तोहि पूछौं दै सपत बिधाता, कहु निज मोहिं सौं सत बाता।
कै कोउ तोहिं बरबस लै आवा, तेहि भरमसि जीव बकति न आवा।

देखति हौं सब मानुस करा, प्रगट लिलार भाग मनि बरा।
कस रे मौन भै रहसि अमोला, देखि भर्म मोर मनसा डोला।
देखि देखि जिय भर्मं आई, अचरिज देखि मन थहराई।

ढाढस के उठि बैसेउ, जियहिं जो मन संकात।
तोहि सपत दै पूछौं, कहु आपन सत बात॥

सुना कुँअर अंम्रित रस बाता, जाके सुनत अमर हो गाता।
चक्रित चित मन माँह भुलाना, देखि रूप थिर रहै न ग्याना।
लागे हिये कांड अनियारे, भौंह कटाछ सान दै सारे।
जैसे खाँड नीर महँ परई, सहज अपान आपु परहरई।
सौंह सरूप को सकै निहारी, दुऔ नैन के बार बिचारी।

देखि रूप चखु भर्मं, सौंहे न सकै सँभारि।
रकत आँसु बह नैनन्हि, पलक न जाइ उघारि॥

सुनु बर नारि कहौं मैं तोहीं, सहज हेतु जौ पूछे मोहीं।
नग्र कनैगिरि उत्तिम थाना, सुर्जभान पिता जग जाना।
औ मोहिं कुंअर मनोहर नाऊँ, राघौबंश कनैगिरि ठाँऊँ।
खिनक नींद जो नैनन्हि लागी, अबहीं देखु उठा मैं जागी।
नहिं जानौं मोहि को लै आवा, जो मोहिं तोहिं भौ दिस्टि मेरावा।

तोरे रूप गड़े दोइ लोयेन, नहिं देखौं निसरंत।
जौ जौ जग पर पंक महँ, तौ तौ अधिक गडंत॥

अबहिं नींद गा उठि जागेऊँ, देखि रूप जग जीवन खागेऊँ।
पूर्ब पुन्य किछु आहे मोरा, जेहि मुख आनि देखावा तोरा।
कै करवत वोहि जन्म देवायेउ, तेहि रे पुन्य अब दरसन पायेउ।
औ मन बांछित तीर्थ प्रयागा, कलपा सीस पूर्ब के भागा।
आजु पायेऊँ तीर्थ जो तोहीं, धन्य धन्य पूर्ब पुन्य जो मोहीं।

पेम फांद हिय लागेउ, लोयेन रहेउ लोभाइ।
तनु मनु जिव जोबन चहै, केसहु छांड़ि न जाइ॥

पूर्ब पून्य फल आपु हमारा, ससि पुनिव मुख देख तोहारा।
पेम फांद हिय लागा मोरे, बिरह जाल जिय बाझा तोरे।

कर्म भाग जेहि होइ लिलारा, तुम्र दरिसन सो पावै बारा।
तोहि पूछौं रस हेतु कुमारी, कौन राज घर राजदुलारी।
कहहु नाम आपन मोहि बाला, पिता कौन केहि देस भुम्राला।

मैं अपने नैनन्ह की बलि बलि, जो देखा तुम्र रूप।
औ स्रवनन्ह जो सुनेऊँ, अंम्रित बचन अनूप॥

बहुरि कुंअरि रस कथा उभासी, जनु कुमुदिनी सिर ससी प्रगासी।
कहेसि महारस नग्र अनूपा, बिक्रमराउ पिता जग भूपा।
तेहि घर भिम्रा मैं राजकुमारी, राजा घर मैं राज दुलारी।
महीं पिता वर सन्तति बारी, मधुमालती दह दिस उजिआरी।
और बात जत कामिनि कही, सो न कुंअर चित एकौ रही।

समुझि समुझि ते बातैं, चित सौं हरे ग्यान।
जैसे लोन पानी महँ, से के खोव जे अपान॥

पुनि रस बचन सोहागिनि बोला, अमिय बचन रोदन छंद खोला।
चमके दसन कहत रस बाता, चौंधे तीनि भुअन सब गाता।
सुनत बचन कुंअर मुरछाना, हरा चेत चित चेत गँवाना।
देखत अधर ग्यान हरि लेई, बचन सुनत सो फिर जिव देई।
दोसर भाव बरनि न आवे, मुअहिं चाहि तौ बकति जिआवै।

अधर भाव का बरनौं, मोहिं मुख बरनि न जाइ।
सक तौ जियतहिं मारै, मुये तौ सकै जिआइ॥

पुनि जौ समुझै कुंअर ग्याना, खिन चेतै खिन जोव अपाना।
खिन खिन जीव बिसँभर जाई, खिन समुझै घट आइ समाई।
घरी चारि घट पलटा जीऊ, जीउ समुझि घट पैसा जीऊ।
पुनि जौ चेत चितै ठहराना, अंम्रित बचन परा तौ काना।
परत स्रवन अंम्रित रस बाता, सुनत सौख भो आठौं गाता।

बकतैं लागु सोहागिनि, अंम्रित बचन रसाल।
आठौं गात स्रवन के, सुनौ जो राजकुमार॥

पुनि जौ चित मो सँरौ ग्याना, उठि बैठा पै खोइ अपाना।
पेम ग्यान दोइ लायेन भरेऊ, भौ अचेत चर्नन्ह तर परेऊ।

तब बर कामिनि अंब्रित नीरू, छिरका कुंअर के मुख समीरू।
बहुरि कुंअरि चित माया जानी, गहि आँचर पोछा चखु पानी।
दया भौ मन मोह जनावा, गहि चर्नन्ह तौ सीस चढ़ावा।

बहुरि कुंअरि उठि बैठी, चितहिं सँभारा चेतु।
अंब्रित बचन सोहागिनि, पूछै लागी हेतु॥

रस रस पूछै राज दुलारी, भौ सचेत कहु बात सँभारी।
निरभै भौ तजि कहसि न बाता, कौने भाव काँपै तुअ गाता।
मोहि कहु आपन जिव की पीरा, काँपै कौने भाव सरीरा।
औ खन खन जिय बिसँभर जाई, कहु सत तोहीं पिता दोहाई।
निर्भम होहु न भरमहु काहू, कहहु कौन गुन खोइ खोइ जाहू।

सहज हेतु सौं पूछौं, के तोर हरेउ ग्यान।
अमिअ छिरकि बैसारेउँ, समुझसि कस न अपान॥

कहै कुंअर सुन पेम पिआरी, मोंहि तोहिं पूर्ब प्रीति बिधि सारी।
मैं तोहि आजु न तोहि दुखारी, तोहरे दुख मोंहि आदि चिन्हारी।
यहि जग जीवन मोहिं तुह लाहा, मैं जिअ दै तोर दुख बेसाहा।
जा दिन सिरा आस बिधि मोरा, तेहि दिन मोहिं दरसा दुख तोरा।
बर कामिनि जो प्रीत क नीरू, मोहि माटी तौ सानु सरीरू।

पूर्ब दिनन्हि सौं जानौं, तोहरी प्रीति क नीरु।
मोंहि माटी बिधि सानि कै, तौ एह सरा सरीरु।

मैं सब तजि गरहा दुख तोरा, मोर जिउ तोर तोर जिउ मोरा।
प्रान आदि घट होत न आवा, बिधि मोहिं तोहि भौ दरस मेरावा।
जौ रे कलपि कहौं किछु तोहीं, तोर दुख अधिक देइ बिध मोहीं।
मैं येह दुख की बलि बलिहारी, सहज सुख येहि दुख पर वारी।
कौन जीभ बकतौं तुअ बाता, दुख के रूप सुखनिधि के दाता।

एक निमिखि कोई न पूजै, चारौं जुग क सवाद।
कौन कौन सुख बेलसेउ, एहि दुख के परसाद॥

दुख मानुस के आदि गरासा, ब्रह्म कौंल महँ दुख कर बासा।
जेहि दिन दुख येह सिस्टि समाना, ता दिन ते जिउ जिउ के जाना।

अब लै बोह मोहिं दुख की काँवरि, दुइ जुग देउँ सुख नेवछावरि।
मोहिं न आजु दरसा दुख तोरा, तोर दुख आदि संघाती मोरा।
मैं आपन तजि तोर दुख लयऊ, मरि कै अब अंत्रित रस पियेऊ।

तोर दुख मधुमालती, सुखदायेक जो संसार।
जेहि जिअ माँह तोर दुख उपजै, धन्य सो जग औतार॥

सुना जेहि लगि सिस्टि उपाई, प्रीति परेवा दीन्ह उड़ाई।
तीनौ लोक ढूँढ़ि मैं आवा, आपु जोग कहुँ ठाँव न पावा।
तब फिरि हम जिउ पैसा आई, रहा लोभाइ न गैउ उड़ाई।
तीनि भुअन तब पूछै बाता, कहु तै कस मानुस घट राता।
कहेसि दुख मानुस कर बासू, जहाँ दुख तहाँ मोर नेवासू।

जेहि ठां हो दुख जग भीतर, प्रीति तिन्हौं पुनि ताहि।
प्रीति बात का जानै बपुरा, जेहि सरीर दुख नाहिं॥

मैं तो सदा दुओ संग बासी, औ संतति एक देह नेवासी।
औ हम तुह तौ एक सरोरू, दुओ माटी सानी एक नीरू।
एक बारि दुइ भई पनारी, एक दीप घर दुइ उजिआरी।
एक जीव दुइ घट संचारेउ, एक जन्म दुइ ठां औतारेउ।
एकै हम दुइ कै औतारे, एक मंदिल दुइ किया दुआरे।

एक जोति रूप सब, एक प्रान एक देह।
आपु अपान कोइ चाहै, एकर कौन सनेह॥

तैं जो समुंद लहरि मैं तोरी, तैं रबि मैं किरनि अँजोरी।
मोहिं आपुन जे जानु निनारा, मैं सरीर तैं प्रान पिआरा।
मोहिं तोहि को पारै बेगराई, एक जोति दुइ भाव देखाई।
समुझि ग्यान चखु देखौं हेरी, हम तुह दहु परिचै केहि केरी।
अबहुँ न मोहिं तैं चीन्हसि बारी, सौंरि देखु चित आदि चिन्हारी।

अरुझा फांद पेम कर आहा, जो दुओ घट केरि।
हुती जो आपु मो परचै, सभै नीरधर फेरि॥

अबहीं बिनु जीव जीवन सारेउं, आजु न देखि तोहि जीवन हारेउं।
देखत ही मैं पहिचाना तोहीं, एहि रूप छहदरे जे मोहीं।

इहै रूप तौ अहै छुपाना, इहै रूप सब सिस्टि समाना।
इहै रूप सकती औ सीऊ, इहै रूप त्रिभुअन के जीऊ।
इहै रूप परगट सब भेसा, इहै रूप जग राक नरेसा।

इहै रूप त्रिभुअन के, बेलसै महि पताल अकास।
इहै सोभा प्रगट तोहिं, माथे देखै खान हवास॥

इहै रूप प्रगट सब रूपा, इहै रूप जो भाव अनूपा।
इहै रूप सब नैनन्हि जोती, इहै रूप सब सायर मोती।
इहै रूप सब फूलन्ह बासा, इहै रूप सब भोग बेलासा।
इहै रूप ससिहर औ सूरा, इहै रूप जग पूरि अपूरा।
इहै रूप अंत आदि निदाना, कै बिरुला जन काहु न जाना।

इहै रूप जल थल औ महिअर, भाउ अनेग देखाउ।
आपु अपान जो देखै, सो कछु देखै पाउ॥

सुनत सुनत रस भाव क बाता, कामिनि जीव सहज है राता।
सुनत पेम बात जिव भाई, पूरब प्रीति समुझ जो आई।
जस बास में मिलै समीरू, दुइ मिलि भौ एक सरीरू।
हेतु आइ दुहुं बीच समाना, भौ दुनहूं कर एक पराना।
सहजे दुनौ जीव मिलि गये, रहे न अन्तर एक जो भये।

पुनि जौ पेम प्रीति पूरब कै, बिबि जिय पेम समान।
उठि ऊभी उर सांस जो, समुझि आदि पहिचान॥

बिहंसि नारि कह रस मेराई, तुहहु उन्ह रस बातन्ह बौराई।
चक्रित रही कछु कहैं न आवा, सुनि रस बचन रसो रस पावा।
निस्चै मोहि तोहि अंतर नाहीं, एक पिंड परी दुइ परिछाहीं।
मोर जीव तुअ घट भीतर ठाऊँ, औ मो सौं तुअ प्रगट नाऊँ।
रूप घट मो दर्पन तोरा, मैं जो सूर तै जगत इंजोरा।

जैसी मोती रतनगिरि माहे, ते मोहिं मो तैं सार।
रतन जोति जो संग रहै, को बेगरावै पार॥

अब सुनु कुंअर बात तैं मोरी, पेम लाइ जिव लीन्ह अंजोरी।
प्रीति तोहरे मोरे जिव छाई, पेम म्रिगमद ना रे छुपाई।

एक जीव घट आहि पिआरा, सो तुह तौ हरि लीन्ह निनारा।
किये मोहिं रस बातन्ह बौरी, हरे जीव सिर घालि ठगौरी।
जस जिव तुह प्रीतम मदमाता, मोर जीव तुह चौगुन राता।

मति जानहु सतभाव प्रभु, पुरुखहिं अधिक सुभाउ।
चौगुन के चित बाधा, बाला कहँ सतभाउ॥

सुनत सुनत रस भाव क बाता, जागा मदन बिआपा गाता।
मदन कुसुम ग्यान बिगासा, जाके येह जग भोग बेलासा।
कामचेस्टा ब्यापेउ गाता, रतिपति डरा सुने रसबाता।
राते नैन निलज भा नैना, दुइ दिस रची काम की सैना।
संकर जीउ जाहि ते हारा, तासौं को जग जीतै पारा।

नौ जोबन नौ मनमथ, औ नौ रितु अगंम।
औ संग पेम परानी, कह केउं रहै धरंम॥

बीर राग मनमथ बिगासा, धुकधुकी जीउ भे सांसा।
काम बान बेधा न संभारेसि, बर कामिनि उर हार पसारेसि।
तब तजि आपन सैन सिंगारी, बैसी जाइ सैन बर नारी।
बर कामिनि जे हाथ अंडाई, उठि कै सेज कुंअर कै आई।
कहेसि कुंअर एक कर्म न कीजै, माता पितहिं अकलंक न दीजै।

तिल एक सुख के कारण, जनि आपुहिं नसाउ।
त्रिअहिं थोरे अपकरम, जग अपकीरति पाउ॥

त्रिआ करै लेइ जौ पापू, ब्रह्मा पहँ रे नसावै आपू।
पाप क घर जो त्रिया जाती, राखै कुल जौ होइ संघाती।
नातरि त्रिया राखि को पारा, कुल पै अकरम बज्र निहारा।
निमिखि लागि आपुहिं के नासा, औ परु नरक मो जग बासा।
ऐस करम जे कीन्ह करावा, अकरम कै को धरम नसावा।

दसौं दिसा कुल निर्मल, धरम मुख उजिआर।
पैठि पाप की वोबरी, सबै होत मुँह कार॥

सुनसि कुंअर तैं बात हमारा, धरम पंथ जो दैअ सँवारा।
जाके जीव धरम गा जागी, सो सब परै पाप की आगी।

कुल औ धरम दुऔ रखवारी. माता पितहिं दै जाय न गारी ।
निमिखि लागि पापी के होई, करिकै पाप धरम का खोई ।
पाप पंथ चढ़ि जो सत राखा, सुरस अमीरस ते पै चाखा ।

जग जीवन जग परिहरै, जेहि सत ऊपर धाउ ।
सरबस तजि सत राखै, कुंअर सुनहु सतभाउ ।।

जो बिधि तोहिं इहाँ लै आवा, औ मोहिं तोहि भौ दिस्टि मेरावा ।
सो बिधि मोहिं तोहि जे खोइहि, परिहरि पाप धरम निधि देइहि ।
अकरम कै को धरम नसावै, गये धरम जो जीव पछतावै ।
धरम जाय मुख लावै खारो, लोग कुटुंब कहँ आवै गारी ।
तोह हम जो आजु बाचा कीजै, इन्द्र ब्रह्मा हरि अंतर दीजै ।

प्रीति सपत दिढ़ बाचा, मोहिं देहु तुह लेहु ।
जन्म जन्म निरबाहौ. तौ येह जन्म सनेहु ॥

राजकुंअर सुन बात हमारी, सपत बाचा मोहिं तोहि किन्हारी ।
तोहि बिना जग जीवन नाहीं, तुह सरीर हम तोहरी छाँही ।
तुह प्रान हम काया तोहारी, तुह ससि मैं किरनि उजिआरी ।
काम कया के जमु प्रतिपारै, सती संतति उजिआरा सारै ।
मैं आपन सबै परिहरा, जा दिन तोर पेम जिव परा ।

तै समुंद मैं लहरि तोहारी, तैं बिरख मैं मूल ।
तोहि मोहिं सपत बाचा कैसी, तै सुबास तैं मूल ।।

कौंल कली जो बदन बिगासा, सुरस बचन रस रस प्रगासा ।
पाप जो माता पिता दुखाये, पाप जो बनखंड के दौ लाए ।
औ जग पाप करम हैं जेते, नाम लेइ मोहिं जायँ न तेते ।
ते सब पाप पटतर पावै, जौ तुअ प्रीति न सिर पहुँचावै ।
बाचा कीन्ह बिधि अंतर जानी, इंद्र ब्रह्म हरि अंतर आनी ।

प्रीति तो ऐसी कीजिए, आदि अंत जेहि नेह ।
जन्भ जन्म निरबाहौं, तौ यह जन्म सदेह ॥

सपत बाचा आपुस मो कैऊ, प्रान जो प्रान सेति मिलि गैऊ ।
पुनि आपुस मो रंग की बाता, कहैं जो लागे केहि रँग राता ।

पेम रंग जो पूरब के राते, सहज पीरम रस दूनौ माते।
रतन हिरौदी जरी बिनानी, कुंअर दीन्ह कुंअरि सहिदानी।
और कुंअर कर मुंदरी आही, सो अपने कर पल्लौ बाही।

क्रीड़ा कन्द बिनोद लोभाने, बिबि जो पेम समान।
कबहिं रहसि जे हुलसहिं, कबहिं हरहिं ग्यान॥

पेम भाव दुऔ जो भरेऊ, परम अनंद चित में धरेऊ।
कबहिं अलिंगन जे हंसि देई, कबहिं कटाछ जीव जो लेई।
कबहुँ भौंह बान हनि मारै, कबहुँ अमी बचन अनुसारै।
कबहीं सीस चरन लै लावे, कबहीं आपु अपान गँवावे।
कबहीं नैन जीव हरि लेहीं, कबहीं अधर स्वाद रस लेहीं।

नैन सोहागिनि बिस बसे, अधर अंम्रित बासु।
नैन कटाछ जो मारै, बिहँसि जियावै तासु॥

कबहीं चीहुर लहरि बिस सारे, कबहीं नैन मंत्र पढ़ि मारे।
कबहीं लीन पेम रस माँहा, कबहीं आपुस मों गले बाँहा।
कबहीं मन मिलि प्रीति बढ़ावे, कबहीं सहज रस भाव देखावे।
कबहीं नैन मिलि रस उपजावे, कबहीं पेम अनन्द बढ़ावे।
कबहीं पेम समुंद हलोरा, कबहीं आपु में प्रीति निहोरा।

कबहिं पेम मदमाती, गरब दिस्टि न लाव।
कबहिं पेम भाव रस माने, पीतम दास कहाव॥

कबहीं पेम घा (व) मारि अंडावे, कबहीं सुधारस सींचि जिआवे।
कबहीं पेमरस अनंद हुलासा, कबहीं दुनौ बिवोग तरासा।
कबहीं नैन रूप फुलवारी, कबहीं जिउ जोबन बलिहारी।
कबहीं पेम महारस लेई, कबहीं जिउ नेवछावरि देई।
कबहीं लाज समुझि जे भावा, कबहीं रहस हुलास बधावा।

जौ जीव बारि प्रीतम से, केसेहु बारि न जाइ।
जौं सुभाव सौं मिले, प्रीति साथ जिउ जाइ॥

कबहिं सुरस रस बात सोहाये, लोयन तबहिं नीर भरि आये।
लुबुधे पेम सबै निसि जागे, भोर होत चखु चारौ लागे।

पुनि सुरहिनि जो आई तहाँ, गई राखि कुंअर कहँ जहाँ ।
अचरज आइ जो देखै काहा, दीपत पेम जो माथे आहा ।
सुरति भाव देखे उन्ह जाना, दरमरि सेज कुसुम कुंभिलाना ।

कुंअर सेज पर कामिनि, कामी नैन कुमार ।
सेज बदलि जे सोये, दुनौं सुरति बिकरारि ॥

औ मुंदरी दूनौ कर केरी, आपुस मह जो पहिरा फेरी ।
बलया सैन पहिरा जो फूटी, कंचुकि कसनि उरहिं जो टूटी ।
औ जो अंग चीर गा भागी, नख रेखा जे उर कुच लागी ।
उरहिं हार हरावलि टूटी, उधसी माँग बेनि सिर छूटी ।
देखा नैन मलगजी आई, औ लिलार गा तिलक नसाई ।

कुंअर अधर परगट, परी जो काजँर लीक ।
औ नैनन्हि पर सोभित, पान सोहागिनि पीक ॥

अछरिन्ह देखि कहा मन जानी, इन्ह दुनहु आपुस मो रति मानी ।
कहा बिछोह इन्हैं कत दीजे, बिरह बियोग पाप का लीजे ।
मरन कस्ट हो छिन एक केरा, बिरह मरन जे तिल तिल घेरा ।
सब मिलि जे कीन्ह बिचारा, नहिं बूझी जे धरम हमारा ।
इहां घरी एक की प्रीती, इन्ह दुहु आपुस मो भै बीती ।

उहाँ माता पिता जन परजन, लोग कुटुंब सब कोइ ।
येहि बिना हिय फाटि कै, मरिहैं सो हत्या हम होइ ॥

बिछोह खंड

पुनि सब मिलि एकमत भई, सेज सहित कुंअरहिं लै गई।
जेहि ठां सो लै गई उचाई, सेज आनि जो तहाँ डँसाई।
वोइ आपुस मो कौतुक के जाहीं, इहाँ भौ दुख दुहु जिअ मांहीं।
कुंअरि उनींद सोइ अरसानो, जानहु रसिक गौ रति मानी।
देखा सखिन्ह रौन के राई, प्रगट सबै चिन्ह जो पाई।

देखि सबै जिउ डरपीं, भौ अजगुत येह काह।
जौ राजा सुनि पावैं, धरि भाटी मो बाह।

राज कुंअरि गै सखी जगाई, कहेसि के तुह नासा आई।
देखु अवस्था आपनि जागी, उठसि नाहिं सिर लाये आगी।
काहे अति बड़ किये बिकारा, काहे बांधे गांठि अंगारा।
काहे जानि बूझि बिख खाये, कौन लाभ के मूल गँवाये।
काहे आपुहिं अपजस लाये, आपु गयेसि जे कुलहिं लजाये।

तिल येक सुख के कारन, कुंअरि नसाये आपु।
औ कुल गारी दियायेसि, रही चढ़ाये पापु।

बहुरि संजोग भौ राजकुमारी, काहे सखी देहु मोहि गारी।
ऐस करम जो करै अयाना, जेहि न होइ कुल धर्म के काना।
मोहिं अपजस बरबस लावहु, कै बिसार मोहि दिब्य करावहु।
पाप करम के निरनै लेहू, जैस फुरै तस किरिआ लेहू।
तैं सखि अरधसरीरी मोरी, तोहिं सेति मोरि न फाबै चोरी।

मोहिं तोहिं किछु न अंतर, वैसहु कहौं उघारि।
सौतुख सपना न जानौं, दहु को गा मोहिं मारि॥

कुंअर एक हम सपने देखा, सपना रूप सौतुख का लेखा।
मदन मूरति बिधि निरमये, जम न होय पै जीव लै गये।

जम कि त्रितु खिनक दुख देई, बिरह मरन तिल तिल जिव लेई ।
एह दुख सखि कैसे निस्तरिहौं, विना जीउ किमि जीवन सरिहौं ।
अब न जिओं वोहि बिनु घरी, अचरु गाज कहँवा ते परी ।

बिना जीव सखि सरीर यह, तिल तिल रह संदेह ।
जीव अति निठुर बिछोही, सकै तौ रह बिनु देह ।

जग जीवन भावै सब काहू, मोहि सखि मुये बिरह तौ लाहू ।
सब के मरन होय एक बारी, मोहिं दुख जन्म भौ देवहारी ।
प्रीति लाइ मोहि गा प्रहेली, जीउ लै गौ सिर मोहन मेली ।
जन्म न सुना नाव दुख केरा, अचक भौ जो दुख भटभेरा ।
बिरह दग्ध कुल कर राजा, परा आइ मोरे सिर काजा ।

कठिन पीर बिरह कै, तिल तिल रहा न जाइ ।
जिउ उपचार करहु किछु, न तौ मरौं बिसु खाइ ॥

पुनि उठि कहा सखी सुनु बारी, अब दिन दस दुख काटहु भारी ।
दुख फर केर सुख फर आवा, बिनु दुख सुख काहु न भावा ।
कहै प्रीतम सौं लाहा लहियै, तौ प्रीतम लागि दुख सहियै ।
दुख की रैनि जागि बिहाई, तौ इंजोर भिनुसारे पाई ।
बिना कांटे जग फूल न आवा. बाजु नाग के अंत्रित पावा ।

मंझन यहि कलि दुख बिना, सुख मति चाहै कोइ ।
पहिले तरु पतझार हो, तौ नव पल्लौ होइ ॥

जसि तैं वोहि बिरहे बिकरारी, वोहि जो होइहि चिंत तोहारी ।
बिरह घाय जा एक न मारा, बिरह खरग दुहुँ दिसि है धारा ।
जो बिधि दीन्ह तोहि यह पीरा, औखध करै राखु मन धीरा ।
जो रे कला दै धरा गोसाई, सो न आजु पाइ बरिआई ।
पहिले लाँघै काँटे की बारी, तौ अनूप बेलसै फुलवारी ।

इहां कुंअरि के निस दिन, बिरह दग्ध उतपात ।
उहाँ कुंअर के जागे, मंझन कहु कैसी है बात ॥

———

सहजा खंड

उहाँ कुंअर जो देखै जागी, जागत बिरह आगि तनु लागी।
ना वोह मंदिल ना सुख राती, ना वोह राजकुंअरि मद्माती।
मुरछि परी जो दह दिस जोवै, छन छन ऊभि साँस लै रोवै।
औ चित चेत न सकै संभारी, मन गुनि गुनि जो पेम पिआरी।
सौंरि सौंरि मधुमालति बाता, बिरह अनल व्यापे सब गाता।

खन अचेत खन चेतै, खनहीं जा बिसँभारि।
सीस पुहमी हनि रोवै, समुझि रूप बर नारि ॥

सहजा नाव कुंअर कै धाई, सुन तेहि पूत पूत करि आई।
कहेसि रोग जाउ कहु बाता, मैं तोहारि जस कौंला माता।
बदन फूल जस गौ कुंभिलाइ, कौन दोस तोहिं उपजा आई।
पूत तोहि कौन उपजी पीरा, जेहि कारन ढारसि चखु नीरा।
आपनि पीर पूत कहु मोहीं, मैं रे देउँ सो औखध तोहीं।

नैन उघारि देखु मुख, कहेसि ऊभि लै साँस।
मोहिं जिउ धाइ पुत्र सौं, उपजा जाहि न औखध आस ॥

सो ब्याधि उपजा जिव माहीं, जाहि धाइ किछु औखध नाहीं।
तहाँ जाइ जिउ बस भा मोरा, जहाँ न ग्यान के नपा खोरा।
मन अरुझा गा तेहिं ठाँ धाई, मन की द्रिस्टि जहाँ जात संकाई।
सो देखा जो जाइ न कहा, तहाँ गैउ जहां चेत न रहा।
जिउ अछोरि मोर लीन्हा धाई, छूछी कया देखु संग आई।

प्रान जौ प्रीतम संग गौ, कया भौ बिनु जीउ।
कै सौतुख कै सपना, ना जानौ के जीउ हरि लीउ ॥

कै सौतुख कै सपना अही, कहै लेउँ पै जाइ न कही।
तेहि कैसे कै सपना कहाई, सौतुख सभै भाव जेहि ।।

सौतुक देखा सेज सँवारी, औ सौतुख मुंदरी कर बारी ।
औ अधर मो काजर लीका, औ सौतुख आखिन्ह मो पीका ।
औ उर हार चीन्ह जौ देखैा, सौतुख सबै जो भाव बिसेखैा ।

बिरह आगि सुनि धाइ, मो तन लागी आइ ।
की मधुमालती मिलै बुझै, कि मोहिं मुए बुझाइ ।।

सुन धाई दुख बात हमारी, तो सौं मैं सब कहौं उघारी ।
प्रान गौ परिहरि मम देहा, कया बाजु जो मरन सनेहा ।
दुख की बात कहै न पारौं, जीउ घट होइ कहत संभारौं ।
मधुमालती जिउ लीन्ह अछोरी, धाइ कया बाजु जीव मोरी ।
प्रान बिना भौ कया हमारी, जीव लै गौ सो प्रान पिआरी ।

भावंता से धाइ सुनु, मति जग बिछुरै कोइ ।
सुजन जन खति जान, से बरु जीव खति होइ ।।

कत मैं देखी नैन जो बाला, जेहि बस परा बिरह का जाला ।
हरख अनंद रहस गा धाई, जेहि जिअ पेम समाना आई ।
जिउ पतंग घट आहै मोरा, परा जाइ सो पेम अंजोरा ।
पेम बनिज जो जगत सुठानी, लाभ न रहा मूल भा हानी ।
जग उपखान जो कहिअत आहा, धन खोये बौराइ जोलाहा ।

धाई हर्ख अनंग गौ, उर हस अभिमान ।
मधुमालती कै बिरह दुख, मोहिं लै रहा निदान ।।

पेम प्रीति जो जिउ उदगरई, प्रीतम राखि और सब जरई ।
पेम दुख सब दुख सौं भारी, तिल तिल मरन सहज देवहारी ।
प्रान जात बरु छांड सरीरा, बिध कत सिरे पेम की पीरा ।
राज गर्ब धन जोवन गैऊ, जब सौं जीव बिसँभर भैऊ ।
चढ़ा पेम पंथ दुर्गम भारी, कै जिउ जाइ कै मिलै सो बारी ।

धाइ पेम समुंद महँ, देखि दौरि धंस लेउ ।
कै मानिक कै लै उबरौ, कै वोह पंथ जिउ देउ ।।

बिरह कठिन कोइ जान न पीरा, कै बिधि जान कै जान सरीरा ।
राज सुख बिखै परिहरेऊ, बिरह दख जे अंम्रित भरेऊ ।

अब वोहो मारग जिउ लावौं, पेम प्रीति लै सिर पहुँचावौं।
कै वोहि पंथ मोर जिउ जाइहि, कै बिधि प्रीतम आनि मिलाइहि।
धाइ केतिक दुख सहबे मोरा, बात बड़ी जग जीवन थोरा।

धाइ सो बात पीरम की, मोहि मुख कहे न जाइ।
जौ मैं सहस जीभ सौं बकतौं, चहुँ जुग कहि न सिराइ॥

उगा सूर जग भा अँजोरा, उठा कुंअर बिरहे झिझकोरा।
चेत रहा जिउ गा बौराई, कया नग्र भौ बिरह दोहाई।
बिरह निसान चहूँ जुग बाजा, जिउ परजा बिरहा तन राजा।
चढ़ा पेम पंथ अंग न मोरेउ, झगा फारि केस सिर तोरेउ।
चढ़ा पेम दुर्गम न संभारेसि, उठतै आपु आपन दै मोरेसि।

लोग कुटुंब सब धाये, राजा ग्रिह भा रोर।
माय सुना कौंलादेई, व्याकुल फारु पटोर॥

नग्र देस माँ परि गा रोरू, राजमंदिल कछु उठा अंदोरू।
बैद सयान गुनी जन आये, माता पिता जन परिजन राये।
कहै राउ मैं धन गुन त्यागा, जीउ म र एहिके जिउ लागा।
अर्थ दर्ब जत लागै लावहु, कुंअर क जिउ कैसहु पलटावहु।
कै प्रकार सुतहिं पलटावहु, मोर जिउ लाग तौ लाइ जिआवहु।

बेदन्ह आइ नाटिका पकरी, बूझि बिचारा पीर।
चाँद सूर्ज दुइ निर्मल, दोख न कुंअर सरीर॥

फिरि फिरि बैद नाटिका गहई, बेदन बिरह बेद का करई।
बहु देखा करि कै जो उपाई, कुंअर सरीर न बेदना पाई।
उठि कै बैद एक अस कहा, बिरह भाव तौ जनित अहा।
कहा कुंअर लोयेन सर मारा, बेदना सो नहिं काज हमारा।
जौ किछु बेदना होइ तौ पाई, कहेसि चलौ तौ राउ जनाई।

उठि निरास भै बहुरे, पंडित गुनी सयान।
कुअरहिं पीर पीरम की, औखध कोउ न जान॥

———

महथा खंड

राज क महथ एक है सयाना, गुन निधान चहुँ खंड बखाना ।
वोइ सरबरि कोइ पार न पावै, गुननिधान जगु नाम कहावै ।
गुन सो नाउ चहु खंड बाजा, कलि सहदेव कही तौ छाजा ।
महा सुबुधि चतुरदस माहे, जानौ जीव कसमस्वा गहे ।
औ मनिमन्त्र बहुत तौ जानै, एक मूरि गुन सहस बखानै ।

सुनेसि कुंअर कै औनुस, आय बिचारेसि पीर ।
कहेसि नाटिका गहि कै, दोख न कुंअर सरीर ॥

कै देखेसि बहु भांति बिचारा, कफ पित बात न अहे बिकारा ।
कहेसि ग्यान जौ बेदना होई, नारी मांह रहै नहिं गोई ।
आठौं आग दोख किछु नाहीं, खन खन नैन झाँपि कै जाहीं ।
चाँद सुर्ज निरदोख अकासा, उठै ऊर्ध केहि कारन साँसा ।
औ लोयेन नहिं मल कपराहीं, बिरह भाव यह सब जग माहीं ।

ढरै नीर दोइ लोयेन, चित नहिं चेत संभार ।
बिरह खरग केर घायेल. किछु नाहीं उपचार ॥

पुनि सन्मुख भै पूछै बाता, कुंअर तोर जिउ कासौं राता ।
कहु तोर जिउ के हरि लीयेउ, पेम अमी तैं कहवाँ पीयेउ ।
जौ मो सौं सत बकतसि बाता, मेरवौं ताहि जाहि हहिं राता ।
सरग देव जौ कन्या होई, मंत्र सकति कै मेरवौं सोई ।
कुंअर जीउ जै होइ निरासा, त्रिभुअन धँस लै पुरवौं आसा ।

कहसि बात निज मो सौं, केहि जिउ लागा तोर ।
मैं बिद्या के गुन सकति सौं, मेरवौं चाँद चकोर ॥

जौ येह तीनि लोक महँ होई, मैं तोहि आनि मेरावौं सोई ।
चढि अकास जे अंब्रित गारौं, सरग अपछरा मंत्र उतारौं ।

मंत्र सकति सौं गा बहुराव कहहु तो मुआ जिआइ देखावौं।
सुर नर नाग लोक कर भेऊ, कहौ सबै जो पूछत केऊ।
सेस इन्द्र कर सकति बोलावौं, कहहु तौ मेरु सुमेरु डोलावौं।

कहु मो सौं जनि गोवसि, कौन पीर तोरे जीअ।
के रे सहज कछु उपजा, कै काहू किछु कीअ॥

महथे बात कही रस भरी, कुंअर जीउ आये गहबरी।
अपने दुखिया जे पायेसि, सपना कथा जो कहि सुनायेसि।
कहे कुंअर जग जीव पदारथ, त्रिआ लागि का खोवसि अकारथ।
त्रिआ जगत भई नहिं काहू, त्रिआ पेम केहु भई न लाहू।
त्रिआ पेम जो जीवन लाये, संवर सुआ तैस फल पाये।

त्रिआ जो आपन कै कै, जग मति जानै कोइ।
जौ जो अंब्रित सींचियै, निमकी मधुरी होइ॥

भल जौ होइ त्रिआ बेवहारू, तुरकी भाखा कही तमारू।
काहु न सको त्रिआ जग साधी, त्रिआ औखध रूप बिआधी।
त्रिआ जाति महा राकसिनी, जनि पतिआहि उपर देखि बनी।
जौ बिरचै तौ बिरहे जारै, जौ नहिं रचै तो खन महँ मारै।
ऊपर निर्मल पुनि(व) देहा, भीतर स्याम अमावसि जेहा।

त्रिआ काँटा केतुकी, भौंर वोहट हुती बार।
कपट रूप देखु कै भूलहि, होइहै अंत बिकार॥

दिस्टि परत मन चित थरहरई, कया हानि तेहि पुर्ख कि करई।
जबहीं सुरति होइ निजु जानी, कया मूल तन भाखै परानी।
जनि पतिआहि त्रिआ जग भली, भौंर पुरुख वोह केतुकि कली।
आपन सुख जौ वोह लगि पावै, अधिक त्रिआ पुर्खहिं मन लावै।
बरबस पेम करै बरिआई, पै सब अपनी चांड कि ताई।

चहुँ जुग त्रिआ न आपनी, समुझि देखु मन ग्यान।
त्रिआ पेम लगि जनि ब्रिथा, नाससि कुंअर अपान॥

जिअतै जनि दुख लेहु अपारा, जनि दुख देखसि राजकुमारा।
त्रिआ पेम ब्रिथा संसारा, त्रिआ ताकै मंद बेवहारा।

ारिहरि कुंअर त्रिआ औसेरी, त्रिआ जगत भई केहि केरी।
ायें अंग त्रिआ औतारू, संतति बायें जानु कुमारू।
ौथ ग्रंथ पुनि बावाँ कहई, पुर्ख होइ सो दाहिन चहई।

त्रिअहिं सबै अलछन, एक सुलछन सार।
महापुर्ख जग माहें, त्रिअहीं ते औतार॥

अनखन बचन सुनि रहे न गेऊ, कुंअर जीउ बिस्मै किछु भेऊ।
ए महथा तैं कलि सहदेऊ, कहि तौ और कहत जो केऊ।
पेम पीर जेहि जीउ समाना, कहत भले सो बात अपाना।
एहि कहँ अस कैसे कहि आऊ, जानौं तीनि भुअन का भाऊ।
मैं आपन सब बैसा खोई, सिख बुधि सुनौ जौ रे जिउ होई।

पेम पंथ सुनु महथा, मैं बैठा जिउ खोइ।
सुनौ सिखा तौ तोरि, जौं घट मो जिउ होइ॥

बैठ महथ सुन बात हमारी, पंडित भै का करहु गँवारी।
जीउ भैउ गै परबस मोरा, दहु कहु कहा सुनौं कस तोरा।
जिउ अरु कया केर चित राजा, जहाँ गैउ साथ सब काजा।
चित गयंद गौ फेरि को आना, ग्यानहु केर न आंकुस माना।
चित राजा कहँ रहे लोभाई, नैन सैन रसना सँग जाई।

तैं सब गुन सापूर्न, देखु बिबेक बिचारि।
खाट तुरंग कि चित मिथ्या, कर सौं गौ करुआरि॥

तोहि जिअ पेम न उपजा आई, का जानसि दुख बात पराई।
तैं सुजान अति चतुर सुजाना, जानि बूझि का होहु अयाना।
बिरह आगि मैं कनक सोहागा, तोहिं तन आँच धुंआ ना लागा।
कया भस्म भै झोल उड़ानो, कौन सुनै तोरि सीख कहानी।
गये नाग का भरुनी ठठावसि, जानि बूझि का मोहिं बौरावसि।

उठहु महथ पा लागौं, मैं तौ चेर तोहार।
जानि बूझि ते बरबस, गांठी बांधि अंगार॥

कठिन बिरह दुख जान न कोई, बिरह बिथा दहु कैसनि होई।
जो आवै सो कहै सोहातो, अधिकौ उठै बिरह तन छाती।

जेहि जिआइ समाना है कोई, प्रान साथ पै निसरै सोई।
मूरख लोग न जानै ऐसी, जहाँ बिरह तहँ सिख बुधि कैसी।
बुधि बिरह की सरबरि पावै, बिरह पौन मिसु दिआ बुझावै।

कुंअर सरीर सो औनुस, जेहि जिय जगत न मूरि।
मूरख सब बरिआई, सुरज कि ढाँपै धूरि॥

कै तैं आय सहज चित चढ़ेऊ, कै तैं पेम सास्तर जो पढ़ेऊ।
कै रे माँय तोहि दीन्हा आपा, कै काहू सिर टोना थापा।
कै रे गूद तोरे सिर फिरेऊ, कै रे सिस्टि जग बाउर सिरेऊ।
कै रे ब्रह्म बेद तैं जाना, कै काहू के रूप भुलाना।
कै तोर जीउ सहज है राता, कै (रे) पेम सुरा कर माता।

मात पिता के देखत, दाया उपज कुंअर के जीअ।
नैन उघारि कहा दुख, मधुमालति जिअ लीअ॥

राय पाग सिर भुँइ दै मारो, राजमंदिल रोवैं बर नारी।
कौंला आइ परी लै पाऊँ, कहै पूत का भौ बिपाऊ।
मोहिं पूत ना करहु निरासा, दूनौ जुग मोहिं तोरी आसा।
पीर कहहु माता बलिहारी, केहि औगुन (तुम) भैहु भिखारी।
कौनी आगी त्रिभुअन जरई, कै सेकति मोरि आस जे रहई।

मात पिता के देखत, दाया उपज कुंअर के जीअ।
नैन उघारि कहा दुख, मधुमालति जिअ लीअ॥

पुनि कह कुंअर पिता सौं रोई, मैं आपन जिउ बैसा खोई।
दिन दस राय रजायेस पावौं, आपन जीउ ढूंढ़ि लै आवौं।
दहू जग नग्र महारस कहाँ, मोर जीउ हरि लीन्हा तहाँ।
आयेस होइ जाइ जिउ हेरौं, जीउ मिलि क ग्यान जे फेरौं।
मकु सो करम जागि मकु जाई, सपने पेम प्रीति जो लाई।

आयेस होई जाय जिउ हेरौं, मोरे जिअन सिरान।
करम होइ मकु दाहिन, मोहि मिलि जाइ परान॥

माता पिता सुनत गहबरे, दोउन कुंअर के पावन्ह परे।
कहेसि पूत जानेसि परवाना, हम दूनहु कर घट तुह प्राना।

बरु हम पूत अंडारहु मारी, ब्रिध बैस जनि जाहु अंडारी।
राज पाट सब मिलिहै माटी, हम तुह बाजु मरब हिय फाटी।
आयु सूर पिअर जस घेरा, स्रवन मोर तुहरे जौ फेरा।

ब्रिध बैस जो दारुन, पूत न छांडहु भीर।
जस संमुद कै बोहित, तुह बिनु को लावै तीर॥

जोगी खंड

जिअ भरोस जै करहु हमारा, आयु दीपक मोर भिनुसारा।
माता पिता न करहु निरासा, बिछुरे बहुरि न मिलना आसा।
जौ मैं काली परिहरि जाऊं, तुह सौं जिअत रहै जग नाऊँ।
सुत बियोग दसरथ के नाऊँ, मैं पुनि पूत मरब तोरि ताऊँ।
हम पहिले दूनहु जिउ मारहु, तौ तुह पूत बिदेस सिधावहु।

मोहिं जिअत न मारहु, मोरे और न कोइ।
हिआ फाटि ररि मरिहौं, सो हत्या तुह होइ॥

मातै पितै रोइ जत कहा, कुंअर के कान न एकौ रहा।
पेम पंथ जे सुधि बुधि खोई, दोनौं जुग कछु समुझ न कोई।
कठिन बिरह दुख जान सँभारी, माँगा खपर डंड अधारी।
चक्र हाथ मुख भस्म चढ़ावा, स्रवन फटिक मुंद्रा पहिरावा।
उडिआ निकर कींथी सांटी, गुन कींथी बैरागी सांटी।

कथा मेखली चिरकुट, जटा परा जो केस।
बज्र कछोटा बांधि के, बैसा गोरख भेस॥

बोहित खंड

बोहित बोझि समुंद चलावा, बिधि का लिखा जानि ना पावा।
मास चारि गौ पानी पानी, पुनि अदिन घरी निअरानी।
समुंद लहरि निसि अंध्यारी, दिसा भुलान बोहित कंडहारी।
मगु अगंम न जाइ बिचारी, बोहित परा लहरि उठ भारी।
परतहिं भौ टूक से साता, चहुँ दिस बोहित उठा अघाता।

बूड़ा सबै मीत जन परजन, औ जो सहन भंडार।
बूड़ा राजपाट जत आहा, बूड़ा तुरै तुखार॥

कुंअर आस जिव कै परहरी, पुनि ध्यान दै सुमिरा हरी।
तीनि भुअन तैं रछ्यक साईं केहि जाचौं तोहि छोड़ि गोसाईं।
जग जीवन दायेक बिनु तोहीं, को बूड़त धै काढ़ै मोहीं।
जिन्ह गाढ़े सुमिरा करतारा, भौ ताके फुलवारि अंगारा।
एहि आंतर बिध दया जनाई, कुंअर टेक बूड़त महँ पाई।

बिधि प्रसाद कुंअर के आगे, काठ एक उतरान।
बूड़त राजकुंअर एक, जत राखत घट प्रान॥

भौ कुंअरहिं जे काठ अधारा, समुंद लहरि उठी अपारा।
पुनि जौ कुंअर लहरि मो परा, जिउ ते जीउ आस परिहरा।
बहुरि न जान कुंअर का भैऊ, कहँ ते कहाँ लहरि लै गयऊ।
लहरि कुंअर के तीर अंडारा, जहाँ न चाँद सूर उजिआरा।
लहरि भँटार समुंद जो आई, कुअरहिं तीर अचेत लंडाई।

पुनि जौ चेत चित चेतै, परा अहौं बिसँभार।
आगू पाछू ना कोई, बिन दुख कुंअर दयार॥

राज साज बूड़ा जत अहा, मधुमालती पै दुख संग रहा।
चहुँ दिस फिरि देखै कोइ नाहीं, रही एक पै संग परिछाहीं।

जेहि बन कबहुँ न मानुस आवा, तेहि बन लै जो कुंअर अंडावा।
पुनि उठि कुंअर चला बन माहीं, जहं पंखी परमारथ नाहीं।
अगम पंथ दुख साथ न कोई, खन धावै खन बैसे रोई।

सीस रुधिर पाँव आवै, पाँव रुधिर सिर जाइ।
बेर सहस जौं बैसे, तौं एक धाप सिराइ॥

दुख उदास बैराग मेराऊ, इन्ह तीनहु त्रिसूल गढ़ाऊ।
औ रुद्राख केरि जपमारी, औ सिंगी जो अलप अधारी।
बैसाखी गोरख धंधारी, ध्यान धरै मन पौन संभारी।
पेम पौंरि जे राखेसि पाऊँ, त्रिगछाला बैराग सुभाऊ।
दरसन लागि दरस ते फेरा, जपै दुख मधुमालति केरा।

ग्यान ध्यान जो आसन, सुनत पंथ लौ लाइ।
दरसन लागि भेसते फेरा, मकु गोरख मिलि जाइ॥

सिध रूप दीसै बैरागी, मधुमालति के दरसन लागी।
मारग जोग सिध निध खोई, बहुरि मिले मधुमालति सोई।
गुर दरिसन लै लै उपराजै, सहज अनंद कींगरी बाजै।
मधु रूप सुनि अस भजा, आवा गौन पौन घट तजा।
बिरह आगि से तन मन जारा, नैन पानि ते नैन पखारा।

कै गुरु रूप नैन गड़िआने, सुनहु मान जे सैन।
गुरु मधु दरसन लाइ लौ, बैस साधि जे मौन॥

मात पिता सुनि आये पासा, देखि कुंअर उर काढ़ा सांसा।
औ मुख देख छार लपटानी, धोवा बदन कँवल के पानी।
कहहि पूत तैं आस हमारी, राज छोड़ि कस होहु भिखारी।
और अहै जो अरथ भंडारा, अब लगि मैं तोहिं संभारा।
जो तुह काज न आवै काजू, सो मोरे पुनि कवने काजू।

अरथ दरब जन परिजन, संग लेहु बहुताइ।
जौ मधुमालती मिलै, मांगि बिआहेहु जाइ॥

भोर भौ दर परिगह साजा, कोस बीस संग आये राजा।
हाथी घोरा सहन भंडारा, कटक अनेग गनै को पारा।

औ जत अरिजन परिजन राये, कुंअर साथ जो राय चलाये।
पूछत चले महारस देसा, जहवाँ बिक्रमराय नरेसा।
चले आय सायेर के तीरा, अगंम अथाह अति गंभीरा।

हाथी घोरा दरि परिगह, औ जो सहन भंडार।
चढ़हु कुंअर लै बोहित, लिखा को मेटै पार॥

चला जाइ बन मांह अकेला, अगम पंथ जो कठिन दुहेला।
सिंघ सेंदूर चिकारै हाथी, एकसर कुंअर न दूसर साथी।
चलत खिन न मानै बिस्राऊँ, चित चिंता जो प्रीतम नाऊँ।
पुनि केदली बन के पैसारा, परी सांझ जो भौ अंध्यारा।
जौ असूझ अति भा अंध्यारा, बैसि कुंअर जो लीन्ह बैसारा।

आसन लाइ के बैसा, पकरि एक तंत ध्यान।
जगमग रैनि बिवोग के, जाके भा सो जान॥

पेमा खंड

भा भिनुसार चला उठि राऊ, पीरम पथ सिर करि के पाऊ।
बिरह सरीर आइ अधिकाना, कहा करौं ना जाय बखाना।
मधुमालति मधुमालति ररई, सौंरि सौंरि सिर भुँइ ले धरई।
चित औ ग्यान सबै हरि लीन्हा, भौ अचेत न काहू चीन्हा।
पीरम पथ जिव देत न हारौं, जो सौ जोउ होइ तौ वारौं।

चलत चलत बन भीतर, देखि चौखँडी राइ।
चित मो चेत भा तेहि देखे, समुझि मनै गुनाइ॥

तिल एक माँह मनै गुन राऊ, पुनि भीतर अवधारा पाऊँ।
देखा सेज नौल रँग राती, तापर राजकुंअर मदमाती।
छिरका सेज सुगंध सुबासू, लुबुधे भौंर न छोड़े पासू।
पुनि चलि राउ सेज तन गैऊ, उपजा संक भरम मन भैऊ।
ससिबदनी जो बन बिकरारी, निहकलंक बिधनै औतारी।

गुनवंती जो आगरी, मनमोहनि संसार।
धन्य सिस्टि जे सिरजा, धन धन सिरजनिहार॥

सोवत सेज मैं बरनौं कहा, कँवल भँवर जे संपुट गहा।
अंब्रित बिस दुइ जानि न गये, बिबि लोयेन दहु काके भये।
बदन लिलाट सराहि न जानौं, खन पुनीव खन दूजि बखानौं।
सारंग जो सारंग प्रतिपाला, ससि की प्रीति म्रिगा रथ चाला।
तिल कपोल पर बने अपारा, एक बुंद भौ सहस सिंगारा।

नौसत साजे बाला, निर्भम नींद सुख सोव।
दुइ चखु कुंअर चकोर जेंउ, चंद्र बदनि मुख जोव॥

चिहुर नाग बिस लहरै देई, देखत जिउ जोबन हरि लेई।
आपे अमीरस भरे कठोरा, उलथिर मानों कनक कचोरा।

रंग मेंहदी कर पल्लौ राती, रोंव रोंव जोबन मदमाती।
बेनी भाव बरनि ना जाई, सेस सुमेरु चढ़ा जो आई।
अधर सुरंग देखि मन हरई, त्रिभुअन मुनि जन धोर्ज न धरई।

चतुर सहज रसमाती, नख सिख बने सुरेख।
जन्म खुरुक हिय ताके. एक निमिखि जो देख॥

देवस चांद मकु इहां रहाई, रैनि सुरंग सेवा कराई।
कै यह सरग अपछ्रा बारी, केहि सराप धरनी धै डारी।
कै यह सरग बनसपति नाऊँ, इहाँ आइ दिन करु बिस्राऊँ।
कै यह डाइनि है बन केरी, माया रूप धरे हसि फेरी।
से जोजन कोइ आस न पासा, इहाँ कहा दहु मानुस पासा।

कै यह भेस धरे बनसपति, कै मोर जिउ भमान।
कै काहू मोहि भोरवै, कै उटवा मया मसान॥

निर्भम नींद सोवै बर नारी, भर जोबन जो पेम पिआरी।
देखि कुंअर चित रहा लोभाई, सेज निअर भै बैसा जाई।
कबहीं भरम जीव मों धरई, कबहीं पीरम रस निर्भम करई।
पुनि करवत लीन्हा अंगिराई, सहज भाव चित पैसा आई।
अंगिराने भुअडंड पसारे, ससि रे सिर दुइ भये उघारे।

संजग भौ बिबि लोयेन, भौंहे चढ़े कमान।
सरग इंद्र नर प्रिथिमी, फनपति हेठ सँकान॥

जागि उठी पुनि नैन उघारे, भौ सुगंध जो चित कनियारे।
पुनि जो डीठ कुंअर पर परी, भरमित भौ जो चित मों डरी।
पुनि रस बचन सहज तौ बोला, बर कामिनि जे रूप अमोला।
पूछेसि तैं को कहाँ ते आवा, भौ एस का कर बौरावा।
मदन मूरती मानुस अहही, कहु नाव सत बात न कहही।

सत भाखु तैं मो सौं, को हसि मानुस भूत बेताल।
राजकुंअर मनुसे जस देखौं, कस छांड़ेसि घरबार॥

केहि बियोग छांड़े घरबारा, सत भाखु सत जगत पिआरा।
जेहि जिउ सत संघाती होई, तेहि सरि और न पूजै कोई॥

सती असत न भाखै काऊ, सत आहै संसार सुभाऊ ।
तैं पुनि कहु मो सौं सत बाता, नाव कहौ काके रंग राता ।
समुंद नाव मो सत कंडहारा, बिन सत केउ न उतरै पारा ।

सत कहौं सत जानेहु, सत साथी नौ खंड ।
मनुसे जौ सत भाखे, पिंड चढ़ै ब्रहमंड ॥

कै तोहि आह प्रीतम मदमाता, कै कहु तोर जीउ हरि राता ।
कै मूरख मन रहा भुलाना, कै चित मों न ग्यान समाना ।
कै तोर अर्थ दर्ब हरि लीन्हा, कै चिंतहवास सत्रु तोहि दीन्हा ।
कै रंग मदमाता न संभारेसि, कै रंग मदमाता न संभारेसि ।
कै भरमसि देखि येहि ठांई, बकुत सिध परसिध गोसाई ।

निर्भम होहु भर्मंत जी, जनि जिअ मानहु संक ।
सहज भाव ते पूछौं, ससिबदनी निकलंक ॥

कै तैं आय सहज चित चढेऊ, कै तैं पेम सास्तर जे पढ़ेऊ ।
कै रे माय तोहिं दीन्ही स्रापा, कै काहू सिर टोना थापा ।
कै रे गूद तोरे सिर फिरेऊ, के रे सिस्टि जग बाउर सिरेऊ ।
कै रे ब्रह्म वेद तैं जाना कै काहू जो रूप भुलाना ।
कै तोर जीउ सहज है राता, कै तैं पेम सुरा कर माता ।

कै तैं मूल गँवाए, कै तोहि कठिन बिवोग ।
कै बर कामिनि बिछुरी, तं उपजा जिउ सोग ॥

पुनि उठि कुंअर बात अनुसारी, बर कामिनि सुन पेम पिआरी ।
मैं आहौं परदेसि बटाऊ, मन बैराग पंथ सिर पाऊँ ।
सत पूछत आहौं मैं तोहीं, निस्चै सत कहसि तैं मोहीं ।
से जोजन मानसु ना पाऊँ, मकु डाइनि आहे एहि ठाऊँ ।
चहु खंड भौंत भौंत मैं आवा, मैं जाना तोर मैं पावा ।

रूप धरे हसि डाइनि, देखौं लखन निनार ।
नातरि ऐसे बन महँ, मानुस रहै कि पार ॥

जेहि बन मों न पंखी उड़ाई, तहवां मानुस कहा कराई ।
भरमित बन तौ खाये धावै, मनुसे कहा इहाँ दहु आवै ।

अरु मानुस येहि रूप न होई, धरे रूप भयावन है कोई ।
को आहहि कहु आपनि नाऊँ, कस कीन्हे बन भीतर ठाऊँ ।
अरु न कोइ सँग साथ सहेली, बन निकुंज किमि रहौ अकेली ।

निरभम चित अकेली, बन मो रहौ निसंक ।
हरि नैनी हरि बेनी, ससि बदनी निकलंक ॥

केहि ते आपन दुख सुख कहही, केहि जिउ लाइ रैनि निर्बहई ।
दोसर कोइ न देखौं पासा, बैरागी जो अधिक उदासा ।
प्रीति बास मोंहि तोसे आवै, नहिं जानौं का भेद जनावै ।
नैन चिन्हारी तोरि न पावहिं, बचन तोर जे भेद जनावहिं ।
कहु केहि गंध्रप कै हसि नारी, कौन राजघर राजदुलारी ।

प्रीति भेद मैं पावौं तो सौं, कहु मोसे बरनारि ।
काकरि परम पिआरी, काकरि राजदुलारि ॥

अब सुनु बात कहौं बर नारी, मैं राजा घर राजदुलारी ।
चित बिस्राउं नग्र मोर ठाऊँ, चित्रसेनि धिअ पेमा नाऊँ ।
भाग फिरा जो कुदिन जनाये, लोग कुटुंब सौं बिध बेगराये ।
अलख अभोली पीर न जानौं, पिता राज बालापन मानौं ।
बासर खेलि खाइ बहलावौं, चित चिंता निसि सोइ बिहावौं ।

बिरह बिवोग संताप दुख, नहिं जानौं कस होइ ।
खेलत हँसत आपु मो, निस दिन बेलसै सोइ ।

नग्र सोहावन चित बिस्राऊ, गोंइडे नग्र पिता लख राऊ ।
सीतल छांह घनी अंबराई, जति कबिलास जानु भुंइ छाई ।
बांधे पेड़ रहैं सब झारी, अरु सब तरु पानी पनारी ।
अरु अनेग जो पखी आये, करै केलि रस बचन सोहाये ।
सदा बसंत रहै अंबराई, मरुत बास लै दह दिस जाई ।

अमिअ सदा फल लागे, सदा फरै अंबराउ ।
गन गंध्रप रिखि मुनि जन, आइ करै बिस्राउ ॥

———

चित्रसारी खंड

चित्रसारि एक तहाँ सँवारी, तहँ खेलैं हम जाहिं धमारी।
दिन एक सखी सबै जो आईं, कहेन्हि चलौ खेलैं अंबराईं।
कह जौ माता की अग्या पावौं, तौ तुअ संग अंबरावै आवौं।
पुनि उठि मैं माता पहं आई, माय चूँबि के कोर बैसाई।
कहेन्हि तिल एक आयसु पावौं, सखी साथ बारी भैं आवौं।

मातै कहा आजु घर खेलहु, इहवाँ केलि कराहु।
भरम होइ तौ जीव मों, बाहर कतहुँ न जाहु ॥

जौ मातै येह बचन सुनावा, लरिकाईं जिव गहबरि आवा।
आँसु पोंछि जो कहा बुझाई, होहु सयानि छोडु लरकाई।
मात पिता कर प्रान अधारी, और कहा तैं बारि कुमारी।
नैन वोट जे तिल न कराऊँ, निति जावे छाड़हु लखराऊ।
पुनि अस कहा बार जे लावहु, तिल एक खेलि बहुरि घर आवहु।

भा अनंद जिअ सुनि कै, दुख भागा सुख भा जीअ।
रहसी सबै सहेली, मिलि हँसि मातै आयेसु दीअ ॥

पुनि मातै सब सखी बोलाई, फूलन्ह से रचि सबै बनाई।
गगन बदन ता चंदन सारी, सिरी अमा पुनिव ससि सिंगारी।
सबै चतुर जो सहज दुलारी, कनक औंटि जो साँचे ढारी।
कबहुँ भाव जोबन कै देखी, कबहुँ सहज लरिकाई पेखी।
अरु सौतुख जानि न जाईं, दुइ मो दहु काकी अधिकाई।

दूनौ बाद करै आपुस मों, जोबन औ लरिकाइ।
धन जोबन धन ते दिन, अरु धन ते बेलसाइ ॥

और कहौ जो भाव बिचारी, धन बिधना जे कलि औतारी।
अजहू पेम भाव ना जाना, अजहुँ न नरपति गात समाना।

अजहुँ न कंत भिरे गीव लाई, अजहूँ न रुठे मान मनाई।
अजहू रंग रोस तिन्ह थोरा, अजहुँ न उभरे कनक कचोरा।
अजहुँ न जोबन कली न मोली, अजहूँ सहज दुलारे बोली।

अजहुँ सरीर न छांड़े, लरिकाई कर भाउ।
अजहुँ अमोलि न जानौं, पेम सुरा कर चाउ॥

अजहूं पहिरि न जानौं चोली, अजहुँ पेम रस भाव अमोली।
अजहूं अधर अमीरस डाके, अजहुँ न भये न लोयेन बाँके।
अजहूँ नाह नूति गात न लागे, अजहूँ सुरति काम न जागे।
अजहूं प्रीतम नाहिन आवा, अजहूं काम भाव न जगावा।
अजहूं सुरति संक मन माहीं, अजहूं उससि धरा ना बाँही।

अजहूं अहीं अमोली, नहिं जानौं रसबात।
अजहुँ नैन तीखन बांके, का जानौ बिहसंत॥

तेहि दिन संग भौ सब बाला, मिरगनैनी हँसि गौनी चाला।
रहसि चली बालापन बाले, आपे अमी रस भरे रसाले।
सब सुकुमारि लता जो डोलै, बचन सुरस कोकिला बोलै।
देखत लंक भर्म जिव करई, बिधि येह छुअत टूट ना परई।
अमिअकुंड नाभि बस बारी, बेनी सीस ताहि रखवारी।

चतुर गुनी सब नागरी, सुंदर सुबुधि सुजान।
भौंह धनुख बरुनी सर, मारहिं ताकि परान।

कहैं सखी सब मोहिं बुझाई, पेमा तुरित चलौ अंबराई।
मातै कहा न लावहु बारा, उनके आयेसु करु प्रतिहारा।
कौनौ सखी करै हम छांहा, कौनौ उससि देइ गले बाँहा।
कौनौ सखी पान खिआवै, कौनौ सुरस बचन सुनावै।
बहु बिधि कोड़ करै ते नारी, रूप अपछरा जोबन बारी।

ते सब मिलि कै संग ही, रहसि चलीं अंबराउ।
मकु बिधि तब न संभारा, जो अस भौ बिपाउ॥

केलि करत मैं मधुबन आई, जहां आहिं सब सखी सवाई।
सुरस सखी भाखा बररई, चातिक बहुत पीउ पिउ करई।

कतहूँ भौंर पुहुप लपटाने, कतहूँ पंचम बैन सुठाने ।
कतहूँ बिगसी कली बिगासै, कतहूँ मोर कोकिला बासै ।
कतहूँ फूल सुरंग सुबासा, जहाँ देखि तहँ पेम हुलासा ।

जेहि सरीर ना सँचरा, मनमथ तेहि छाँव धराइ ।
मदन सहाइ देखि अंबराई, मुआ अंत जिआइ ।।

देखि सखी जो रही हुलासी, केलि करैं खेलैं नौ लासी ।
कोइ कोकिला कोइल उड़ावै, कोइ मजूर न च देखि धावै ।
चित अनंद रहसी जो खेलै, बहुत कुसुम तोरि गीवा मेलै ।
बहुतन्ह फूल चढ़ावा माथे, बहुतन्ह हार गीव गीव गाँथे ।
कुसुम बास सुरंग जो पावै, सो मोहि पास धाइ लै आवै ।

रहसत खै ते मधुबन, तोरैं कुसुम सुबास ।
कौंल बदन म्रिगनैनी, भौंर न छोड़ै पास ।।

एहि बिधि केलि करैं ते नारी, कौंल बदनि ते अति सुकवारी ।
औ सब बास सुबासित लाये, पुहुप बास ते मधुकर धाये ।
काहू सीस जो चढ़ि चढ़ि बैसे, काहू उर जो चाहहिं पैसे ।
अधर सुरंग अमी जो अहे, कौंल बास ते मधुकर गहे ।
अब लगि बहुत जतन जे राखे, ते मधुकर बरबस रस चाखे ।

ढाँके अधर सबन्ह के, अकुतानी बरनारि ।
आगे मधुकर घेरे, पाछे गहे पुकारि ।।

बिगसे कौंल भाँति ते बारी, बैठे मधुकर कै बिकरारी ।
ब्याकुल बात कहै ना पावैं, साँस लेत मुँह पैसैं धावैं ।
अकुतानी भौ भंग सिंगारू, कंचुकि फाटि टूटि गा हारू ।
परी अवस्था सब अकुतानी, नासा तिलक माँग बिथरानी ।
नौ सत जो घर से कै आई, नासि चली ते सब अंबराई ।

दुइ कर बदन छपाये, धाइ गही ते बर नारि ।
चित्रसारि गै पैठी, पौरि दीन्ह सब ढ़ारि ।।

येहि अवस्था ते बर नारी, आइ धाइ मंदिल चित्रसारी ।
बहुतन्ह के उर कंकन फूटे, बहुतन्ह हार गीव गहि टूटे ।

बहुतौ अधर पयोहर टोवहिं, बहुतौ चिन्ह अधर देखि रोवहिं ।
बहुतौ हँसहिं बहुतौ बिलखाहीं, बहुतौ माता पिता संकाहीं ।
बहुतौ सीस केस मोकलाये, बहुतौ काजर नैन नसाये ।

सबै सिंगार जो भंग भा, कोइ हँसै कोइ बिलखाइ ।
भोर भये भै भरमीं, घर दिस चलै न जाइ ॥

पुनि आपुस मों कहैं बिचारी, घर घर चलौ तजौ चित्रसारी ।
बहुरि कहा कैसे घर जाई, जननी पूछ तौ कहा कहाई ।
किछु उर संका जननी क धरही, बहुत संक मधुकर कर करहीं ।
जनी चारि एक आइ सयानी, ते कछु अलप संक मन मानी ।
कहेन्हि चलहु होहिं हम आगे, तुह आवहु हम पाछे लागे ।

पुनि उठि पौरि उघारा, निसरीं सबै सँकात ।
मदन न भरम उघारै, साननि बोलै बात ॥

बाहर चित्रसारि जो आई, भरम न गौ जो जिउ भर्माई ।
डर ना आपुस मो बेगराहीं, एकहिं ठाँव भई सब जाहीं ।
पुनि राकस एक आइ तुलाना, देखि सखिन्ह जो तजा पराना ।
तेहि देखे मन संका आई, हम रूखन्ह तर रही छिपाई ।
हौं जेहि ठांव छपानी अही, रावस आइ तहां हम गही ।

साठि सखी मो एकसरि, मोहिं धरेसि बेगराइ ।
नैंन मटक के मारत, एहि बनखंड लै आइ ॥

एक बरसि भा मोहिं एहि ठाऊं, सपने न सुना मानुस नांऊं ।
आजु निमिखि एक जीवन लेखेउं, मानुस रूप जौ रे तोहिं देखेउं ।
बिन जिउ भई रही येहि ठाईं, जिउ बिनु कया जिअब कब ताईं ।
कुटुंब बिवोग रैनि दिन दहई, पापी जिअ निकसै ना चहई ।
सुख हरि लीन्हा दुख जिव बाढ़ा, अब सो जीउ जाइ ना काढ़ा ।

येह संताप दुख कौलहि, जग जीअत रहाब ।
जस सरसल बिनु कादौं, उरध फाटि मर जाब ॥

मैं आपन सब परिहरि जाई, बिना जीउ मोहिं जिएँ न आई ।
यह रे दुख दिन एक मरि जैहौं, कब लगि मैं ऐसे जिउ रहिहौं ।

सुन्न सरीर अधर पर साँसा, छाँड़ी कया जिवन कै आसा।
कुंअर देखि तैं मोहिं बिचारी, बिनु जिउ बात कहै बरनारी।
रहस चाव जे सब परिहरा, जेहि दिन सौं मोहिं दानौ छरा।

बिना आयु घर जीव है, तापर बिरह दहाइ।
जो जिउ जाइ बिवोग मों, सो केउँ आइ भनाइ॥

बारह मास रकत मैं रोवा, मरना भला न यह रे बिछोवा।
समुझि समुझि जे फाटै छाती, माँसु न कया हाड़ भौ काँती।
हिआ फटै बन देखि अकेली, दुख सुख भौ बिरह सहेली।
बिधि किछु पुरब मंद लिखि राखा, जन्म ब्रिछ बिख फर साखा।
के काहू दुख दीन्हा भोरे, सो रे उलटि परा मोरे कोरे।

गुपुत रकत निसि बासर, पिऐ सवाई आउ।
दिन एक रकत बिनासिहि, बाहर काढै घाउ॥

कहौं बात आपनि मैं तोहीं, दुख बिन और न साथी मोहीं।
मात कोर मैं पंखी न दुखायेउँ, कौन पाप बिधना सौं पायेउँ।
येह निकुंज बन दोसर न कोई, जो मोरे दुख क संघाती होई।
दुख संताप बिनु और न पावौं, जासौं तिल एक दिल बहलावौं।
प्रान तजे चाहत है बरनारी, जीवन भा जगत मो भारी।

पीर करेजे हिये दुख, बिरह दग्धि उतपात।
दैया केउँ करि जिऔं, यह दुख बिरह संताप॥

मोर दुख सुख कहां लगु अहा, लाज छोड़ि मैं तोसौं कहा।
तैं पुनि कहु आपन दुख मोहीं, जो रे इहाँ ले आवा तोहीं।
आदि दुखी तोहिं न देखौं, राजकुंअर अस बदन निरेखौं।
भाग उदित मनि माथे बरा, कैसे सिस्टि भौ मानुस करा।
इस्ट भाइ कोइ सेवक नाहीं, तोरे संग बाजु परिछांहीं।

समुंद लांघि कै आयेसि, यह अचरज है मोहिं।
राकस भूत भयावन, कैसे छोड़ेन्हि तोहिं॥

चांद सुरज जो आहिं अकासा, ताकर इहाँ नाहिं परगासा।
ते मानुस इहवां केउं आवा, पूछति हौं कहु आपनि भावा।

नग्र कहहु जे पिता कर नाऊँ, भूमि कहहु जे आपनि नाऊँ।
कुरी ऊँच की नीच तोहारी, राये रंक की अहौ भिखारी।
कया छीन जे मरन सनेहा, माँसु रकत नहिं देखौं देहा।

आदि अंत लगि बातैं, सबै कही मैं तोहिं।
तैं पुनि बैसु निमिखि एक, आपन दुख कहु मोहिं॥

पेमै बात सबै जो कही, कुंअर सुना जहाँ लगि अहो।
चित भरमा सुनि राकस नाऊँ, मन मो कहेसि इहाँ सो जाऊँ।
जो अबहीं वोह राकस आवै, निमिख मांहि मोहिं मारि लंडावै।
वोहि आगे कहँ जाऊँ पराई, मुये चाह पछताव रहाई।
औ मोहि आगे है बड़ काजू, जेहि लगि निसरे परिहरि राजू।

येह मन ग्यान गुनि कै, ठाढ़ भयेउ उठि राउ।
नैन नीर भरि पेमा, धाइ परी लै पांउ॥

बहुरि कुंअर बरनारि उचाई, देखि बदन चित उठा छोहाई।
मोह भौ मन मया मरोरा, पीरम समुंद दीन्ह हिलोरा।
पेमा दुख कुंअर हिअ जरा, जानहु जरत आगि घ्रित परा।
देखि कुंअर मन गहबरि आवा, चित माया ले जाइ न खावा।
बदन देखि चित उठा मरोहू, कुंअर करेज औटि भा लोहू।

दुखिया सो दुख जानै, जेहि दुख होइ सरीर।
बिनु दुख कर जानै, दुखदाधे का पीर॥

पेमा का दुख खंड

रकत धार कस पेमै रोवा, जेइ सुना सोहौ एक रोवा।
मन गहबरी उठा अंदोरा, नैन समुंद जो दीन्ह टंकोरा।
दुख ब्यापा सुख बकति न आवै, निससत बात कहन नहिं पावै।
लोयेन दुनौ पूरि जल भरे, सीप फूटि जनु मोती झरे।
दुख तरंग जो हिये उभरे, रोव रोव सो आँसू ढरे।

सूर्ज चाँद तारागन, बासुकि इन्द्र कुबेरु।
पेमा सब दुख रोये, धरती गगन सुमेरु॥

पेमा नैन रकत भर रोवा, सुअटे तासु रकत मुंह धोवा।
पिक करील जरि भौ कारे, दुख दाधे तरुअर पतझारे।
कौंल गुलाल भौ रतनारे, फूल सबन्ह तन काँपत झारे।
देखि अनार हिया बिहराने, बिनु तुरुस डार पिअराने।
नारंग रकत घूंटि भौ रातो, घायेल खजूर फाटि गौ छाती।

आँब भौं दुख बाउर, महुआ भौं बिनु पात।
ऊख भौ दुख टूकटूक, पेमा दुख उतपात॥

भौंर भुजंग दुनौ दौ जरे, और करील पात परिहरे।
मेंहदी रकत रती घट भीनो, जुही दुखहिं भौ तन छीनो।
टेसू आगि लाइ सिर रहा, कलि बदनी मुख संपुट गहा।
फरा डार तरुअर दुख नए, कौंल कुमुद जल बूड न गये।
जामुनि भई डार दुख कारी, कटहर पहिरु काँट को सारी।

रकत रोइ बन घुंघुंची, रही जो राती होइ।
मुंह काला कै बन गई, जग जानै सब कोइ॥

दुख दाधे बड़हर पिअराने, अंबिली टेढ़ी भौ जग जाने।
रूखन्ह दुख दात भुंइ धरे, कलपब्रिछ पुहमी परिहरे।

हारिल दुखहिं हारि भुंइ आवा, गादुर दुख ते रूख टंगावा।
दुख के डार जो बौरि डेरानी, भौ निरतेज रूख लपटानी।
चिन्ह जो दुख को भौ ते डरी, कबहिं पुरुख कबहीं इसत्री।

दुइ भाखा को वोट लुकानी, जीभ फेरु भंगराज।
तबहीं भौ दहि कोइला, पेमा एहि दुख काज॥

तुरै न पाख तजा खर खाये, जिन बांधि नर पीठ चढ़ाये।
हाथी बन तजि आंकुस सहे, सीस नाय धूरि भरि रहे।
भैसिन्ह सींग सहा दुख भारी, नीक निरत जो कीच अधारी।
भेडी सघन रोंव तन भारे, बरदन पीठि पलान पसारे।
कुंअर न तजा पेम कर चावा, बरिस देवस एक मास मेरावा।

पपिहा जुग एक साथ रह, पिउ पिउ ढूंढै काहि।
पिउ संगहिं नहिं चीन्है, पेमा दुख उर जाहि॥

पुनि पेमै रस बचन उघारे, निमसत कह सुन राजकुमारे।
राकस भरम जीव जै करहू, निर्भय होहु न मन मों डरहू।
वोह राकस अबहीं के गैऊ, एक निमिखि गये का भैऊ।
सरग देवस वोह रहे चराई, रैनि आइ पहरा के जाई।
कहु आपन दुख मोहि नरेसा, जेहि दुख ते निसरे एहि भेसा।

जौ लगि आपन बात सब, कुंअर कहसि ना मोहिं।
तौ लगि निस्चै जानहुँ, निसरैं देउँ न तोहिं॥

कहा कुंअर सुन पेम पिआरी, मैं मधुमालति बिरह भिखारी।
सो का कहूँ जो जाइ न कही, लिखत कहत जुग जुग सिराहीं।
काह कहौं जो कहै न आवहि, बिरह कथा ना कहे सिरावहि।
उतपति बिरह ते सबै कहाहीं, अंत बिरह चारौं जुग नाहीं।
आदि बिरह मो सौं सुन भावा, बिरह अंत जग काहु न पावा।

सात समुंद जो होइ मसि, कागद सात अकास।
चहुँ जुग कहत न निघटै, पेमा बिरह उदास॥

सुनु पेमा जौ पूछे मोहीं, आपन दुख कहौं मैं तोहीं।
नग्र कनैगिरि ठाँव सोहावा, जनु सुरपुर धै आनि बसावा।

पिता नाम जानैं संसारा, सूरज भान देव उजिआरा।
कोस सहस दस राज पसारा, हाथी घोरा बहु कटक अपारा।
संतत एक मही औतरेऊ, सो देखु बिरह बस परेऊ।

दुख मधुमालती चित बसै, का तेहि बिरह कहाउँ।
मकु छोटी जो जिउ जगत, दुख ते नाहीं ठाउँ॥

उतपति अब रे सुनहु न बाता, जैसे दुखहि मिला संघाता।
अकथ कथा जो कहा न जाई, थोरा कहौं जो राउ बुझाई।
एक दिन नींद नैन सौं लागी, लेत उठा बिरहा दुख जागी।
सौतुख सपन एक मैं देखा, सपन रूप सौतुख का लेखा।
सपन कहौं तौ सपन न होई, सौतुख कहा जाइ ना सोई।

सौतुख सपन न जानौं, दहु का देखा सोइ।
सपन कहौं तो सौं तुह, सौतुख कहै न कोइ॥

झारि कुंअर पाछिल दुख बाता जैसे मधुमालति रंगराता।
प्रथम भौ जो सैन चिन्हाई, अरु जैसे पालक बदलाई।
औ दूनहु बाचा जे कीन्हा, औ पुरवति मुंदरी कर दीन्हा।
औ जो तजा पिता घर राजू, औ निसरा कै जोगी क साजू।
औ बूड़ा जो सहन भंडारू, औ जहाँ लै लहरि अंडारू।

सब पाछिल दुख पेमहिं, कुंअर सुनावा रोइ।
किछु न जानौं जो आजु, का बिधि लिखा होइ॥

पेमा जिव सुनि रहा न गाता, बिना जीउ बकत हौं बाता।
बिरह पीर जानि न पावा, अचक जनु ठगलाडू खावा।
लाभ मूल खति प्रापति जारा, एक रहा जीउ घट हमारा।
अचक बिरह चिनगी जो परी. लाभ मूल खति प्रापति जरी।
नैन अमी जो पिअर असारा, नाम संतोख जिये किमि धारा।

अमी रूप प्रीतम निसि बासर, नैन पिये जो होय।
सुमिरि सुमिरि दहु कैसे, किमि मन धरौं सोहाय॥

जबहिं नैन मुख रूप समाना, मैं अपने जिउ निस्चै जाना।
मोहिं पेम रस रूप पिआहीं, अरु जो देस बिदेस फिराहीं।

बाला बिरह रकत जत पावा, सब लोयेन संग बाहर आवा।
दुहु लोयेन बरिसा देखु बारी, जीभ भीतर जे औसर भारी।
प्रथम सोहाग बीच चमकानी, पुनि चमकै मकु देखि जो बानी।

लोयेन बरिसा देखि के, जिउ ते आस न जाइ।
नैन बीजु के चमके, पुनि चमके मकु आइ॥

बिसहर चिहुर जै देखा बारा, अजहुँ लहरि है चढ़ी अपारा।
तिल पर दिस्टि जो गै परी, तै तिल तिल लीन्हा जौ हरी।
अधर अमी एक बुंद की ताईं, मोहिं सहस नयन रकत तिसाईं।
का बरनौं जो खंजन जोरा, हरा चित देखत तन मोरा।
लोयेन दिस्टि जाइ जहँ परी. तेहि ठां सो नहिं आगे टरी।

दुइ लोयेन सम बाला, गाड़े कुच अनिआर।
बांझि रहे ना निसरैं, खुरकहिं बारंबार॥

हिये मांह बस प्रान पिआरी, कैसे कै सो जात बिसारी।
निसि सोवत जो बिधि बेगराये, तेहि कारन हम भेस फिराये।
रहस कोड में बिधि दुख दीन्हा, कौन करम पूरब हम कीन्हा।
जौं लगि ना जहु मिलै मुरारी, तौं लगि मरन होइ देवहारी।
छांड़ा मात पिता घर राजा, वोहि बिन जीवन कौने काजा।

जीउ गौ जम संचरा, तन जरि भो बिभूति ;
पेमा चित्त न उचटै, मधुमालति करतूति॥

बहु दिन चलत भो यहि आसा, बिधि लै आउ आजु तुअ पासा।
अमर बचन ते अमी सेरावौं, प्रीति बास मधुमालति पावौं।
जस कोई परै समुंद ओगाहा, अचक पाव बूड़त भो थाहा।
तुअ सब देखा बदन उघारी, दुख जल बूड़त भो अधारी।
मोहिं तौ इहै जीवन लाहा, जीउ जात मधुमालति चाहा।

राज पाट जो परिहरी, जीउ जोबन खोइ ;
चढ़ा पेम पंथ पेमा, दहु आगे का होइ॥

पेमा सुनु दुख बात सवाई, एक एक मैं तोहिं सुनाई।
मैं एकसर जे बिखम उजारी, तापर परा अधिक दुख भारी।

कोइ न कहै महारस नाऊँ, पेमा अंध कौन दिसि जाऊँ ।
एक रहा घट दुख वोहि केरा, कोइ न रहा साथ बेहिबेरा ।
तोहिं सौं प्रीत बास मोहिं आवै, जानहु बिधि जे सोभा पावै ।

पेम प्रीति मधुमालती, तोसौं आवै मोहिं ।
तौ मैं दुख बात जो आपनी, रोइ सुनावा तोहिं ।।

कहा कुंअर दुख बात सवाई, पेमा जिव सुनि मोह जनाई ।
कहे कुअर दुख ते अकुलानेहु, बिरह दीरघ दुख लघु कै जानेहु ।
धन जोबन तेहि केरा भारी, जौ जग भौ बिरह भिखारी ।
सरग बुंद सब होहिं न मोती, सब घट बिरह देइ न जोती ।
कोटिन्ह महँ बिरला जन कोई, जेहि सरीर बिरहा दुख होई ।

रतन कि सायेर सायेर, गजमानिक गज कोइ ।
चंदन के बन बन उपजे, बिरह कि तन तन होइ ।।

जेहि जिअ दैय बिरह उपराजा, निस्चै तीनि भुअन सो राजा ।
प्रथम पंथ चढ़ा जिव खोई, कै जिउ जाइ कै प्रीतम होई ।
बिरह दिआ चारौं दिस लागी, जो न जरै सो गरुअ अभागी ।
बिरह दुख दुख कहै न कोई, पाछे दुख ताहि सुख होई ।
जेहि जिउ दैव बिरह दरसावै, दुख सुख तेहि तैसे मन भावै ।

मंझन अमर मूरि सो, बिरहा जम पावै आस ।
निस्चै अंबर होइ सो, जुग जुग काल न आवै पास ।।

पेम अमी कर साध जे करई, आपु अपान जो रे परहरई ।
जिउ पर तेज धरा जे पाऊँ, पेम अमी फर चाख न काऊ ।
प्रथमहिं सीस हाथ कै लेई, पाछे वोहि मारग पगु देई ।
सहज जीउ प्रीतम मदमाता, तेहि जिउ जन्म न लेइ बिधाता ।
बिरह रूप जे नैन उघारे, तेहि आगे त्रिभुअन उंज्यारे ।

बिरह समुंद अथाह अति, जग जानै सब कोई ।
मानिक सौ लै उबरै, जो मर जिआ होइ ।।

बिरह अग्नि जिव लागु न जाही, येहि जग जिवन अबिरथा आही ।
जेहि जिउ प्रान तंत मन लावा, जीवन फल ते जन्मि न पावा ।

एहि कलि जन्मि लीन्ह ते लाहा, बिरह अग्नि मो जे जिउ दाहा ।
यह दुख सखी केहि सौं कहियै, जेहि दुख ते प्रीतम निधि लहियै ।
बिरह अग्नि मो जे जिउ जारा, नैन पानि ते पिंड पखारा ।

पेम समोध समोघ जल, गोरी उठै हुलास ।
फिरहिं सनेही बापुरे, छोडि जिअन के आस ॥

बिरह भाव तौ जानै सोई, जो बैसा जिउ जोबन खोई ।
बिरह जुँआ फर जे कछु पावा, जुँआ पैत कौड़ी जिन्ह लावा ।
बिरह दग्ध औगाह अपारा, कोटि माँह येक पैरनिहारा ।
बिरह अग्नि अबिथा जाई, बिरह रूप जो सिस्टि उपाई ।
बिरह राजा नल बिरहै राता, बिरह राजा नल बिरह संघाता ।

मंझन जो जग जन्मि के, बिरह न कीन्हा चाउ ।
सूने घर का पाहुना, ज्यौं आवै त्यों जाउ ॥

जौ लगि करै न सिर सौं पाऊँ, निजु यह खोरि न खूंदै काऊ ।
नैन मूंदि जो देखु सरूपा, इन्ह नैनहु देखि जान सरूपा ।
एक जीव मोंहि पंथ लगावै एह जिउ सो कैसे कै पावै ।
होइ मौन भै बकतै बानी, सुनै आव जो कथा कहानी ।
सुनि चलि दिस्टि देखु सतभाऊ, रूप सो जाहि पतन न काऊ ।

भाव अनेग बिरह सैं, उपजा कुंअर सरीर ।
त्रिभुअन कर जो दूलह, ते बिबि दई यह पीर ॥

सो जग जन्मि जीवन फल पावै, जो आपन जिऊ वोहि के संग लावै ।
जाके पंथ खोइ खोइ जाहीं, सो आगे भै पंथ देखाहीं ।
सहज होय उपराजै ग्याना, मारग एक कत जाहु भुलाना ।
पाँचो तत एक भै जैहहिं, सहज भाव एक एक देखैहहिं ।
अरु जो दया जीव भै जाही, कया रूप भै प्रगट देखाहीं ।

बिरह दुख सुख निधि के, जनि कोऊ अकुताउ ।
निरबाही जो बिधि सिरा, सो चारौं जुग राउ ॥

दुख से जग अकुताइ न कोई, दुख के आगे सुख पै होई ।
दुइ दुख बीच सुख संचारा, काली के घट सेत जल धारा ।

फागुन ते जो तरु पतझारे, तौ नौ पल्लौ सिर ते अनुसारे।
दुइ पाथर बिच आपु पिसावा, तौ मेंहदी रंग राता पावा।
मोती बहु दुख आपु छेदावें, पदुमिनि उरहिं ठाँव जो पावें।

दुइ दुख बीच सुख है, निजु जानहु संसार।
जौं अति रैनि अंधारी, तौ इंजोर भिनुसार॥

करम होइ जो लिखा लिलारा, तौ दुख रैनि निअर भिनुसारा।
तैं जो कुंअर बहुत दुख पावा, अब जो आनि संजोग मेरावा।
दया करैं जो देव दयाला, अलप दिना मों मिलै सो बाला।
परा अहौं जो समुद अपारा, बचन देउ जौ हो कंडहारा।
सुनहु चाह मो सौं वोहि केरी, जाके दुख लीन्हा तोहि घेरी।

चढ़ि समुंद धंसि लीन्हा. कीन्हा बिरह बिभेस।
सुदिन आइ निअराना, सुनहु कहौं उपदेस॥

सुनहु कहौं मैं ताकरि बाता, जाके रंग तोर जिउ राता।
नग्र महारस राजकुमारी, पेम गहा जो भैउ भिखारी।
मैं औ उन्ह बाले संग खेली, मधुमालति मोरि बारि सहेली।
मैं मधुमालती रही एक संगा, माना सब बालापन रंगा।
अबकी कुंअर न जानौं बाता, जब से बन दीन्ह बिधाता।

संतति एक संग दुनो, कीन्हा बाल धमारि।
अब बिछुरे भा बरिस दिन, बन दीन्हा बिधि डारि॥

———

कुंअर का दुख खंड

सुना कुंअर रस बात सोहाई, हिआ गहबरि मुर्छागत आई।
पलटि पेम सिर ते जो लागे, कनक आगि जो परा सोहागे।
पेम करार पलटि नौ भैऊ, जरत आगि ध्रित परि गैऊ।
जिव लागा मधुमालति पासा, परा मुरछि जो धरनि अकासा।
गये घरी दुइ चेत अपाना, सुनत नैन उघरे रबि ग्याना।

विरह घाव तन कांपत, परा पाँव सहराइ।
नैन नीर दुइ बहि चला, बचन लागु कहाइ॥

कहा कुंअर सुन पेम की बाता, जब सौं जिउ मधुमालती राता।
सुना न देखा यहि कलि कोई, जेहि परिचै वोहि देस की होई।
सपने जब सौं गई देखाई, तब सौं कतहुँ चाह ना पाई।
अब तौं नींद नैन सौं हरी, जिउ घट रहत न देखौ घरी।
पेम सपन सोई पै पावै, जाके नैन नींद सुख आवै।

दुउ चखु नींद न आवै, सपने सौं जब गई देखाइ।
अब सो करु उपकार तैं, देअ लगि घट मो जीव न जाइ॥

कहु रस बचन जे पूछौं तोहीं, जेहि रस मरत जिआये मोहीं।
अब कहु कहा सो पेम पिआरी, अरु जो तोसों कैस चिन्हारी।
पेमा आजु सुदिन जो आवा, जे पावा मधुमालति चावा।
देहि सीख जो मिलै बाला, जेहि गुन संतति जप गुन माला।
बिधि सो देवस होइ कब मोरा, जो देखब ससि बदन इंजोरा।

लखन के सकती परी, मोहि बिरह भरि पूरि।
पेमा तैं हनिवंत भै, मेरौ सजीवनि मूरि॥

बात कहे जो चेत गँवावै, बरबस समुझि जीउ घट आवै।
खिन चेतै खिन जा बिसंभारा, पेम गहा न आपु संभारा।

पेमा पाँव सीस धरि रोवै, नैन सलिल जो अंबुज धोवै।
तीनि भुअन जग जीवन दाता, काहे न मेरवहु जो जेहि राता।
पुनि औतरी कुंअर की नाईं, पेम बिछोह जे देहु गोसाईं।

और दुख संसार कर, जत भावै तत होउ।
दूनौ राते आपु मो, बिधि जनि देइ बिछोउ॥

पुनि बर नारि रूप गुन भारी, अंब्रित कथा कहै अनुसारी।
कहै कुंअर तै चेतु गयाना, अंब्रित कथा कहौं सुन काना।
बिक्रमराय महारस थाना, कोस सहस दस ताकी आना।
तेहि घर धी त्रिभुअन मनिआरी, रबि ससि रूप पावै उज्यारी।
मोरे जीउ बुधि तो नाहीं, खूंदै कुंअर रूप परिछाहीं।

रूप सोहागिनि उदधि जो, अंत न सूझै जाहि।
जीभ बाजु कर बापुरी, केउं करि संतरै ताहि॥

और सुनौ रस बात सोहाई, मोहिं मधुमालति बहिनि सगाई।
तहिआ माता कोरा मैं बारी, मोहिं वोहि तहिऐ कै चिन्हारी।
एक देवस ताको महतारी, ढाकि लीन्ह कोरा कै बारी।
औ संग सखी दस खरी, माता डीठि जो उन्ह पर परी।
जनी बीस एक देखा ठाढ़ी, देखि जननि जिअ संका बाढ़ी।

तामों एक रूप गुन आगरि, प्रगट भाग लिलार।
तकरे घर एक कन्या, अछरी के औतार॥

ढाढस के मातै जोहरावा, उन्ह जो बहुरि सीस कर नावा।
बहुरि जननि बिनती औधारी, आवहु उतरि हेठ बर नारी।
अति सकोच जे कहै न पारौं, उतरहु हेठ जो सेवा सारौं।
औ देखा मन जननि सुभाऊ, उतरन के औधारा पाऊ।
उतरि हेठ दीन्हा अँकवारी, बहिनी बाचा आपु में सारी।

देह चतुर सम खौरि कै, चीर फेरि पहिराइ।
मंगलचार नग्र भा, घर घर मदन सोहाइ॥

पुनि उन्ह उन्ह ते पूछी बाता, बहिनी सत कहु सपत बिधाता।
राज लखन जे देखौं तोरा, अतरिछ देखि भर्म मन मोरा।

नाव कहहु जे ठाँव बखानी, औ कहु कौन राज घर रानी।
देहिं गन गंध्रप जे अपछ्रा, कैसे सिस्टि भा मानुस करा।
जौ यह गुनि कहौं बुझाई, जेहि गुन आवहु जाहु उड़ाई।

अब जो आइ तोहिं सौं, पेम चिन्हारी कीत।
जन्म जन्म निरबाहौ, कीमिनि पेम पिरीत॥

पुनि बर कामिनि बात रसारी, सुरस बचन रस रस अनुसारी।
कहेसि महारस नग्र हमारा, राजा बिक्रम आह भुआरा।
गंध्रप राजन्ह महं बड़ राऊ, करम तेज अति बल बौसाऊ।
मैं तेहि घरनी रूपमंजरी, मांगु सोहाग रूप गुन भरी।
संतति इहै देखसि कोरे, आइ उफर एक कन्या मोरे।

अब जौ उतपति तुह सौं, पेम चिन्हारी मोहिं।
आइ दूजी के संतति, मैं मिलि जावै वोहि॥

अब लगि बाचा वोर परावै, सदा दुइज के हम घर आवै।
एक बरिस हम बाहर पारी, हमरे घर आवै बर नारी।
मैं मधुमालती राजकुमारी, संतति आउ संघ महतारी।
कुंअर जाहु जो चितबिस्राऊं, हम घर जाहिं लेहु तुह नाऊं।
भाई बहिनि पिता महतारी, करिहैं भगति अनेग हमारी।

कुसल मोर जौ पैहैं, औ सुनिहैं दुख तोर।
दिहैं मेरे मधुमालती, बचन सुनु निज मोर॥

औ जति सखी सहेली मोरी, सबै चिंता सुनि लागिहि मोरी।
औ जत लोग कुटुंब परिवारा, करिहौं सबै तोर उपकारा।
औ तोसौं जो पहिली प्रीती, प्रथमहिं बाचा होइ जो बीती।
कान कान कोइ जान न पाइहि, पेम गहा सहजे मिलि जाइहि।
जस तोहिं दुख जीउ है पीरा, वोहि पुनि होइहै दुख सरीरा।

तोहिं वोहि पेम चिन्हारी, इहै मोर उपदेस।
मिलिहै पेम परानी, जाहु हमारे देस॥

पेम कथा अंम्रित रस भरी, जब रे कुंअर के कानन्ह परी।
जीव कहा सुनि प्रीतम बाता, पीत बरन सुनत भा गाता।

दुख मधुमालती है निरासा, सुनते कँवल भांति प्रगासा ।
समुझि समुझि जीव रहसाई, रहस रहा जिव घट न समाई ।
बिरहे दुख दुखिश्रा जो अहा, प्रीतम नाव सुने गहगहा ।

कौंल कुमुद जे बिगसैं, रबि ससि के प्रगास ।
तिमि सुनि अंब्रित कुंअर जिउ, पूरा पेम हुलास ॥

जिउ हरखा मन रहस अनंदू, कौंल कुमुद दिनिअर चंदू ।
कहै कुंअर सुनु राजकुमारी, तो सौं बहिनि बाचा मैं सारी ।
सुबचन कहि तौ मोहिं प्रतिपारा, अब मोहि किये तोर उपकारा ।
मैं निरास भा बिनु जिउ आवा, अमी सींचि मैं तोहि जिआवा ।
तोहि कैसे मैं परिहरि जाऊँ, जीव लेइ तोहि छोड़ि पराऊँ ।

लोग कुटुंब तोहार सुनि, करिहैं आदर मोर ।
होइहि मम कुल लज्या, कहत संदेसा तोर ॥

कुंअर बचन सुनत गहबरी, नैन कौंल आये गहबरी ।
रोवै सीस पुहमि लै लावै, जिव दुख लाभ न लाहा पावै ।
निससत कहौ ऊभि कै सांसा, छाड़हु कुंअर मोरि जे आसा ।
जौ मोरे दुख जौ आगे लेहू, मोहि लागि जीव जे देहू ।
मोहिं लागि जै नासु अपाना, जो सिख होइ सो करु गै काना ।

मोहिं जीवत जो अपने, मुकुति न समुझै काउ ।
तैं जनि मिथ्या मोहिं लगि, कुंअर अपान नसाउ ॥

मोरे चिंता कुंअर जे लागहु, आपन पहरा जाइ सुख जागहु ।
मैं तौ आहि मुई एहि ठांई, तैं जनि कुंअर मरहि मोरि ताई ।
तोहिं राकस सौं बारी बारा, बिनु हरि मुकुती देइ को पारा ।
जौ मैं सहस कोस चलि जाऊँ, औ धरती महँ पैसि समाऊँ ।
मल क परत मोहिं ऊपर आवै, मोरि तोरि जग सैन उठावै ।

एक अपने दुख दुखिआ, अहै सदा जिअ मोर ।
दूजे दुख पर दुख परा, सुनत संदेसा तोर ॥

———

राकस खंड

रहसि कुंअर रस बचन अमोले, सुनहु जं बर कामिनि मीठ बोले ।
जौ जै पत्र देत बिधि मोहीं, राकस मारि जाउँ ले तोहीं ।
जोउ भरम जै मानहु बारी, गायत्रीया मैं करबि गोहारी ।
मैं रघुबंसी राकस खेकारी, पेमा कुल लाजौं महतारी ।
तोहिं परिहरि जौ जाउँ पराई, कुल लज्या मम धोइ न जाई ।

तोहि छांडि जौ भाजौं, पेमा यहि राकस की संक ।
जग जीवन अपकीरति, कुलहिं जो चढ़ कलंक ।।

राकस डर का मोहिं डेरावहु, अग्नि भर्म का छार उड़ावहु ।
राकस करै पार का मोरा, सहज कीट मर देखि अँजोरा ।
खरग पानि सौं आग उठावौं, राकस धूरि बतास उड़ावौं ।
राकस प्रान देखि कस हरऊँ, एक निमिखि माहिं संघरऊँ ।
आइ बने छत्री जौ भाजौं, कुल कलंक हो जननी लाजौं ।

सत छांडे सुन पेमा, याह कलि अंबर न कोइ ।
तोहि छांड़ि जौ भाजौं, कुल लज्या मम होइ ।।

तैं जौ लिये मधुमालती नाऊँ, तोहिं परिहरि कैसे बन जाऊँ ।
मधुमालती कर पेम संभारी, का कछु करौं देखु बर नारी ।
बर कामिनि प्रीतम बौसाऊ, करौं सो जो किया न काऊ ।
एक दाँव धै भेरवों माटी, टूक टूक कै डारौं काटी ।
माटी रुहिर देखु धै भेरावौं, मासु गीध जंबुक (हिं) खिआवौं ।

जौ बिधि राकस सेती, मोहि जिउ देइ बधाउ ।
ना तौ मधुमालती नाव लगि, यह जिउ रहै कि जाउ ।।

जौ रे कुंअर बर बोलि सुनावा, पेमा सुनि जिउ धीर्ज पावा ।
रस बातन्ह गौ दुओ भुलाई, राकस बेर निअर भा आई ।

पेमै कहा सुन राजकुमारा, सजग होहु भा राकस बारा।
सुनते चक्रित भा जिश्र माहीं, अंत्र नाहिं रिपु जीतब काहीं।
पेमै कहा जनि भरमसि राऊ, अंत्र देउँ मैं करु बौसाऊ।

सुनत अंत्र नाम कुंअर, कुंअरि सौं भा हर्खवंत।
पूछेसि अंत्र कहाँ तैं पाये, मोहिं कहु निज मंत॥

अंत्र को बात कहौं मैं तोहीं, जौ तैं निज पूछेसि मोहीं।
जेते मानुस येइ राकस खाये, ताके अंत्र परे मइ पाये।
अंत्र कुंअरि सब आगे आने, लेहु कुंअर जो कछु मन माने॥
एहि अंतर जो भौ भुइ भारी, कुंअर लीन्ह जो अंत्र संभारी।
निर्भम जीव भर्म का भूता, तापर गोरख भेस अधूता।

काल रूप भै देखि, बिरह बिभूत कुमार।
राकस बपुरा केहि मो, सकै तो त्रिभुअन मार॥

बहुरि कुंअर चहुँ दिस जो देखा, देखा दखिन दिस राकस रेखा।
सरग धरति बिच आव उड़ाना, आइ मंदिल ऊपर थहराना।
रूप भयावन बिग्रित भाऊ, सरग माथ धरती दुइ पाऊ।
सावन घटा वोनै जनु आवा, तस राकस मूरति देखावा।
पाँच माथ दस भुज बरिआरे, दसौं नैन चमकैं जनु तारे।

दसन पाँति जनु कोहँडा, जोरि धरा बैसाइ।
करिआ बरन भयावन, देखत जीव डेराइ॥

देखि कुंअर के आंगन खरा, कोह अगिन सिग पाँव ते जरा।
कहेसि कौन है का तोर नाऊँ, काल गहा आयेहु हम ठाऊँ।
मीच आइ जानहु सिर चढ़ी, तेहि अभाग आयेहु हम मढ़ी।
कै तैं जीउ अपने पर रूसा, कै रे काल आइ घर मूसा।
कै रे अंत आउ तोरि आऊ, जम के मुख सौं आयेस पाऊ।

तै मानुस भख मोरा, लै आवा करतार।
तोरि आउ निअरानी, पूजा मोर अहार॥

पेमा मंदिल डंडवत परी, दुहुँ करजोरि मनावै हरी।
सीस पुहमि धै बिनवै बाला, कुंअरहि तैं जै देहिं दयाला।

त्रिभुअन केर दुख सुख दाता, केहि जाँचौ तोहि छोड़ि बिधाता।
आस तैं मोरी लीन्ह अंजोरी, कुंअरहि सर्न बिधाता तोरी।
साहस करति है मोरि ताईं, बिधि तो कहँ जै देइ गोसाईं।

मोख मुकुति के दाता, तू निरासन्ह को आस।
सबै सिस्टि तोहिं जाँचै, महि पाताल अकास॥

सुना कुंअर राकस की बाता, रिसन्ह जरा सिर पाँव ते गाता।
कहेसि छाँडु राकस बकताईं, संगत भा काल तोर आई।
तोहिं मारि पेमहिं लै जाऊँ, तौ रघुबंसी नाउं कहाऊँ।
उठौ सजग भै अब मनुसाईं, काया गरब न जाहु भुलाईं।
दसौं भुजा अचारि उपारौं, पाँचौं माथ काटि भुइं पारौं।

अग्नि चिनगी रघुबंसी मैं, तैं जैस रुई क पहार।
निमिखि माँह परिजारौं, दाहिन चहौं करतार।

सुना कुंअर छत्री बिस बैना, रिसन्ह भौ राते दोउ नैना।
बचन स्रवन सुनत रिसाना, गरजा जिमि अंमर घहराना।
झपटा कहेसि जिअत धै मारौं, टूक टूक कै दह दिस डारौं।
झपटत कुंअर मूठि गौ छूटी, एक माथ बीस भुज गौ टूटी।
निहुरि माथ भुज लीन्ह उचाईं, कुंकुमारि जो गौ पराईं।

निमखि मात्र मो आवा, भुज औ माथ कलाइ।
बहुरि कुंअर ते जूझि कर, भौं उठी फहराइ॥

राकस केर सुना संसाना, कुंअर सजग भै धनुख सँधाना।
बहुरि कुंअर निरखि निहारा, पाँचौं माथ दसौं भुज कारा।
धनुख बान देखि निअर न आवै, दुइ भये माया दरसावै।
माया रूप ते राकस बाढ़ा, कहेसि जिअत निगलै जो ठाढ़ा।
मुंह पसारि भयावन भै धाऊ, कुंअर फोक सर धैनि छुटाऊ।

जौं लगि आइ पहुँचै, बान हिये गौ लागि।
लागत मुग्ध रूप धरि, कुकुमारी गा भागि॥

एहि बिधि गा रैनि तुलानो, कुंअरहिं जै ना राकस हानी।
भूख निसाचर जे अकुताना, कहेसि मोंहि तोहिं जुध बिहाना।

रैनि निसाचर गैउ चराई, पेमा बहुरि कुंअर पहिं आई।
कहेसि कुंअर मैं कहत बिसारा, अब सुनु जेहो राकस मारा।
मैं तुह से सब कहैं न पारा, जानौ राकस जा जेहि मारा।

तीनि लोक जौ लागैं, मारि ना सकै कोइ।
सहस टूक कै काटि पुनि, रे सजीव ना होइ।

पेमा कहै कुंअरहिं समुझाई, सुनहु कुंअर अरि काल उपाई।
दखिन दिसा जो देखि न बारी, तामों एक अंब्रित फुलवारी।
सघन फूल जो सीतल छाँहा, राकस जीव बसै तेहि माँहा।
जौ लगि ब्रिछ पतन ना होई, कैसहु मारि जाइ ना सोई।
राकस काल अंब्रित के उपारे, नातरि केहू मरत न मारे।

अंब्रित ब्रिछ हम तुह, चलहु उपारहिं काटि।
सहजहिं मरहि सो राकस, घाव चढ़ै हिय फाटि॥

सुनत नाव अंब्रित फर केरा, उठि जे कुंअर दखिन दिस हेरा।
निस्चै भौ सुनत जिव माहीं, राकस मरै बरिअ जो चाही।
कहा कुंअर पेमा सँग आवहु, अंब्रित फल जे मोहिं देखावहु।
चला कुंअर पेमा संग लागी, राकस आव सीस बर आगी।
पेमा लै कुंअरहिं गौ तहां, अंब्रित फल लागा है जहां।

देखि कुंअर हिअ हरखा, रहस समाना जीउ।
निस्चै भौ जो अब बिधि, जैत पत्र बिधि दीउ॥

कुंअर अंब्रित फल निरखि निहारा, देखि सुफल फल जो मनिआरा।
देखि कुंअर जिउ दया जनाई, फरा ब्रिछ जरि काटि न जाई।
पुनि कुंअरहिं पूछै बर नारी, अरि मारी बिलंब का करी।
जौ रिपु अपने बसि कै पाई, कहौ कुंअर कैसे बिलँबाई।
मोरि बोल निस्चै कै जानहु, अग्नि पीसु लघु कै मानहु।

बेगि होहु जै बिलंबहु, जौ अति रुहिर पिआस।
सो जौ बसि करि पाई, लेन कि दीजिअ साँस॥

पेमै जौ कुंअरहिं समुझावा, सुनत कुंअर के चिंता आवा।
पुनि जो ब्रिछ निअर गा राऊ, भुअ मरोरि सौंरा बौसाऊ।

दुइ कर गहि हरि नाम संभारा, अमी बिछ जर मूर उपारा।
पुनि जो डार पात फर रहा, ते सब कुंअर अगिन मो डहा।
पेड़ क काठ रहा जो भारी, सो रे दीन्ह आगि मों टारी।

अंब्रित बिछ उपारि के, जारि कीन्ह धै छार।
रहसत आव चौखंडी, कामिनि और कुमार॥

रजनी गति रवि किरनि पसारा, राकस हाँक बार भै मारा।
करिआ रूप भयावन कीन्हें, दुनौ हाथ दुइ चाक जे लीन्हें।
सुनते कुंअर धनुख हँथवासा, और खरग जे रुहिर पिआसा।
फरसा कोत लीन्ह कर लाई, औ बिभूति मुख अंग चढ़ाई।
डंडा चक्र त्रिसूल जो लेऊ, सरन बिधाता वोडन केऊ।

काल रूप भै निसरा, हिये हरि नाम सँभारि।
राकस देखि रिसाना, मारेसि चक्र पबारि॥

राकस चाक रिसाइ पबारा, कुंअर वोट भै आपु उबारा।
दोसर चाक लीन्ह संभारी, कुंअर दीन्ह वोडन सिर टारी।
चाक आइ वोडन तस लागा, अग्नि भुभूका सर्ग गै लागा।
बहुरि कुंअर का पलटा दाऊँ, झपटि कीन्ह खांडे कर घाऊ।
पाँच माथ मो जाकी बड़ करा, खरग घाव सोई खँसि परा।

मरम घाव जब लागा, लीन्हा माथ उचाइ।
दखिन दिस बारी रही, तहवाँ गै (उ) उड़ाइ॥

बहुरि राकस बारी दिस धावा, परतावै अंब्रित फल आवा।
मरम घाव लागे बितताना, देखत राकस भरम भुलाना।
जहाँ से अंब्रित बिछ उपारा, राकस आनि माथ तहँ मारा।
जौ राकस अंब्रित फल न पावा, भा निरास मन काल जनावा।
आउ ग्रिहि आगि गौ लागी, कया प्रान परिहरि गौ भागी।

जिमि तरुअरि जरि काटिये, धरि खस परै निदान।
तिमि राकस भुइं खसि परा, कया परिहरा प्रान॥

जौ राकस निजु तजा प्राना, पेमा जोव देखि रहसाना।
और कुंअर पर आँचर वारा, अति संतोख के हीवर सारा।

कहेसि कहा नेवछावरि सारौं, सहस जीउ घट होइ तौ वारौं।
धन सो पिता जो तोहीं जाये, धन माँये जो दूध पिआये।
अब परिहरु बेगि येहि ठाँईं, मोख मुकुति तोहिं दीन्ह गोसाईं।

मोर हीवर हिय डरपै, भरम भरम जा जीउ।
मुये ते ए राकस, पुनि मति होइ सजीउ॥

राकस मारि पेमहिं लै चला खंड

बहुरि कुंअर कामिनि ते कहा, गा सो भरम जो चित मों अहा।
चित सेती दुख परिहरु बाता, राकस हत सुख दीन्ह बिधाता।
कौनहु दुख न होहु दुखारी, राकस हत सुख दीन्ह मुरारी।
पुनि उठि दूनौ पंथ सिर भैऊ, कोस चारि बन ही बन गैऊ।
बहुरि देस बसती मों आई, देखत कलि के भाव सोहाई।

बहुरि निकट जो आये, चित्रसेनि के गाउं।
नग्र अनूप सोहावन, चहुँ दिसि घन लखराउ।

पेमा डीठि नगर जौ परी, मन अनंद हरख जो करी।
देख उतंग अवास सुहाये, पेमा हिरदै हुलास बधाये।
पुनि जो नीक कुंअर के आई, कहेसि कि करु मन हर्ख बधाई।
मैं जो कहा तो सौं दिनराऊ, पिता नग्र जो चितबिस्राऊ।
दरसन जोग उतारहु राजा, लेहु सिधि जो साहस काजा।

चित सों सब दुख परिहरु, करहु अनंद बधाउ।
तुह मधुमालती सेती, येहि नग्र में राउ॥

कुंअर नाम सुनि कामिनि काँपा, सुनत बिरह जो गात बिआपा।
मधुमालति के सुना मेरावा, जानहु मुआ पलटि जी आवा।
कै जनु पाव पिआसे पानी, कै जनु चकई रैनि बिहानी।
कै जनु मधुमालति रस आसा, कै जनु अंबुज सूर बिगासा।
कै जनु पपिहा धार सेवाती, कै जनु कुमुदिनी ससि रंग राती।

बिछुरे पेम बिछोही, जा दिन दुनौ मिलाहिं।
मनि माँह बधावा, मंदिल कहा कराहिं॥

पुनि बर नारि कुंअर पहँ आई, निअरे भै जो कहा बुझाई।
सुनसि कुंअर तैं बात हमारी, हौं एहि नग्र जे राजदुलारी।

एहि बिभेस कैसे घर जाई, काहे दुरिजन लोग हँसाई।
माता पिता लोग जन धाई, पर आपन जो देखैं आई।
आपु कुंअर एहि ठांव रहाई. माता पिता के लि (ख) चाह पठाई।

बहुरि कुंअर जे कामिनि, बैठि रहे एक गाउं।
इहाँ सौं कोस डेढ़ एक, नग्र जो चितबिस्राउं॥

राजा बैठ सभा जो अहा, एक बचन सुभ सब से कहा।
कहा आजु अस सगुन जनावा, हरखि हरखि जे गहबरि आवा।
फरकैं नैन भुआ बर मोरा, प्रान पिआर आव कोइ कोरा।
सगुन सुभाव ऐस जौ होई, मिलिहै प्रान पिआरा कोई।
सगुन बिसेख बाव जनाई, बिछुरा गीव लागै कोइ आई।

मन अनंद हिअ हर्ख बधाई, सहज उठै जो चाउ।
कोइ बिछुरा है आवै, अस किछु सगुन सुभाउ॥

पेमै लिखा जो दुख पातीं, सुनत पाति जो बिहरत छाती।
दुख की बात जो मीत जन जागी, सब मसि जो कागद महँ लागी।
बन का पात जहाँ लगु आहा, लिखत न केहु निवटै चाहा।
दुख लिखि जो लिखा जोहारा, माता पिता कुटुंब परिवारा।
औ जत सखी सहेली बारी, सब को पेमै लिखु अँकवारी।

बहिनि भाइ जन परिजन, लोग कुटुंब परिवार।
समुझि समुझि बर कामिनि, सब की लिखा जोहार॥

दुख पाती जो लिखि सिरानी, बारी एक हँकारेउ जानी।
पेमा बारी के पाँव लै परी, बेगि चलहु न बिलंबहु घरी।
लै पाती बारी उठि धावा, रहस गहा भुइँ पाँव न लावा।
बारी बाद पौन सौं करई, दिस्टि चाहि आगू मन सरई।
निमिख एक मों बारी गैऊ, राये दुआर ठाढ़ गै भैऊ।

प्रतिहार ते कहि पठवा, जाउ जनाउ नरेस।
द्वार ठाढ़ि एक बारी, कहै पेमा क संदेस॥

प्रतिहार सुनते उठि धावा, राजा ग्रिह गै बात जनावा।
राजा बार बारी एक आवा, अमी बचन जे कहि सेरावा।

पेमा आहि जे राज दुलारी, ताके संदेस कहै किछु बारी।
पेमा नाव सुनत उठि धावा, मन रहसा किछु सुनै न पावा।
धाये सुनि राजा जो रानी, बिछुरा मीन जस पावै पानी।

मात पिता जन परजन, सखी सहेली झारि।
धाइ बारी चलि आये, सुनत नाव बर नारि॥

पेमा नाव सुनत उठि धाई, उठि चलि राज दुआरे आई।
राजा उठि धाये बिसंभारा, औ रानी सिर पाँव संभारा।
आगे भै बारी जोहरावा, औ पेमा का बचन सुनावा।
पुनि दीन्हेसि पेमा की पाती, चित्रसेनि लै लाई छाती।
ब्याकुल भै पूछै महतारी, केतिक दूरि है राजकुमारी।

बारी कहा इहाँ सौं, कोस डेढ़ एक लगि गांउ।
तहँ आपुन हहिं बैसे, मोहिं पठैन्हि तुअ ठाँउ॥

राजा सुनत भौ असवारा, औ जो लोग कुटुंब परिवारा।
औ रानी के पालक साजी, हरख अनन्द बधावा बाजी।
तेहि पाछे सब चलीं सहेली, लरकाई संग साथ जो खेलीं।
नगर छतीसो पौन सवाई, पेमा नांव सुनत उठि धाई।
है पखरे औ परी अँबारी, चलेउ राउ आगे भौ बारी।

बलि सो देवस बलि सो घरी, बलि मिलै सब तब।
तन बलि मन बलि जीव बलि, धन जग सब॥

पेमहिं आइ मिला परिवारा, हिये लागि नेवछावरि सारा।
मात पिता पाँ लागी बारी, औरन्ह मिली दै अँकवारी।
बहुरि आइ सब मिली सहेलीं, लरिकाई संग साथ जो खेलीं।
पुनि गावत सब चेरी आईं, पाँव लागि मिली सब धाईं।
आईं पौनि छतीसौं जाती, तन चंदन सिर सेंदुर राती।

नग्र बधावा चहुँ दिस, हरखित सब परिवार।
होइ कल्यान कोलाहल, घर घर मंगलचार॥

चित्रसेनि पुनि पूछै बारा, के तोहिं राकस सेति निस्तारा।
के दानौ पसुहु ते छोड़ाई, मोख मुकुति तुह कैसे पाई।

कहहु मोहिं समुझाइ सो बाता, कैसे भौ सो दहिन बिधाता।
दोसर राम औंतरा आई, रावन हरी जो सिश्रा छोड़ाई।
अब सो कौन निस्तार तोहारा, जो अँधार जग कीन्ह इंजोरा।

तुह दरसन बिनु नैनन्हि, जगत होत अंधार।
कहु केहि के पुरखारथ, भौ ऐस उजिश्रार॥

पेमा लागु पिता सौं कहई, कुंअर एक मोरे सँग अहई।
महाबीर कुलवंत सो गाता, सो मधुमालति के संग राता।
जत दुख कुंअर पाछिल अहा, मात पिता सौं पेमै कहा।
औ जिमि राकस हना प्रचारी, सो सब कहा पिता सों बारी।
औ सब साहस बात सवाई, पेमै कहा पितहिं समुझाई।

जेहि बन खंड मैं आही, बिधि कुंअरहिं लै आउ।
कहेउँ दुख सब आपन, औ वोहि कर सतभाउ॥

कहेउँ बात आपन सत भाऊ, जिमि दानौं मोहिं बन लै आऊ।
औ पुनि सुना कुंअर की बाता, जैसे मधुमालति रंग राता।
तौ मैं आपन जिउ कै जाना, मधुमालति के रूप भुलाना।
तौ मैं बात सबै वोहि केरी, बात कुंअर सब आगे नेरी।
औ आपनि वोहि केरि हिआरी, कहेउ कीन्ह जिमि जन्मि चिन्हारी।

औ जोगई जो बाचा, मधुमालती की माइ।
सो अब लगि निरबाहै, संतति जमदुइ लाइ॥

सुनत कुंअर कामिनि की बाता, हरखित भौ पिता सौं राता।
सुनतै परा पाँव लै मोरे, कहै जीव मोर आरति तोरे।
कुँअर खोज मैं कतहुँ न पावा, आजु मरत तैं मोहिं जिआवा।
अब जौ तोहिं बन छांडौं बारी, लाजौं जननि चढ़ै कुल गारी।
औ मधुमामति केरि सहेली, तोहिं कैसे बनत जो अकेली।

राकस मारि मोहिं लै आवा, अपने बल बौसाउ।
आदर मान करहुं केहि केरा, औ मोर बाचा क भाइ॥

चित्रसेनि तौ महथ बोलावा, आदर कै कुंअरहिं लै आवा।
उठि कै गहि अंकम लावा, अपने निकट पाट बैसावा।

कहेसि का तेहि अस्तुति सारौं, जीउ कंचित है लाजन वारौं।
राजकुंअर पुरखारथ तोरी, कया जीव घट आहै मोरी।
किछु बिलग न मन मो आनहु, राजपाट आपन कै जानहु।

जैसे पिता राजघर रहतेहु, तैसै इहाँ रहाहु।
दुख उदास बैराग चित, छांड़हु केलि कराहु॥

औ जो किछु है मन की बाता, सो पुनि मेरइहि आनि बिधाता।
औ पेमा मम राजदुलारी, संतति करिहै सेव तोहारी।
औ जत अरिजन परिजन है मोरा, अस जानहु सब सेवक तोरा।
राज नग्र एक मंदिल संवारा, आनि कुंअर तेहि ठाँव उतारा।
सब मिलि करें लागु सेवकाई, मकु बिलँबै इहँ सौं नहिं जाई।

कुंअर सदा बैरागी, मधुमालति के नेह।
काया इहवाँ जिउ उहवाँ, जासौं लागु सनेह॥

एहि बिधि कुंअरहिं दिन चारी, बिरह आगि पुनि हीवर जारी।
पेमहिं राउ कहा सुन बाला, मम तन उठी बिरह की जाला।
अग्या देहु जे तुह बर नारी, ढूढौं जाइ सो पेमपिआरी।
सूते भाग जाहि मकु जागी, प्रगट मिलै जो राजसभागी।
बिरह दग्धि न तिल न बोताई, अब प्रगट बिरहे जिउ लाई।

कठिन आगि बिरहा की, तिल तिल दहै सरीर।
कहै न पारौं बिरह दुख, उठा पेम की पीर॥

पुनि दुख बात कुंअर बर नारी, कहै अब कत होहु दुखारी।
कहेउं दुख तोहिं आगे सारा, सो मकु तुह चित हुते बिसारा।
कालि दुइजि अहै उन्ह पारी, आइहि जननी सहित कुंआरी।
वोह हम चित्रसारि है जहाँ, तुह परभात गै बैसहु तहाँ।
मैं औ वोह मिलत मिलि जैहौं, खेलत मिसु चित्रसारी ऐहौं।

जौ उपजहिं उन्ह से तुहसै परचै, सेति पाछिलि प्रीति संभारि।
सहजहिं दुऔं मिलि जैहहिं, तुह औ राजकुंआरि॥

मिलन औधि सुनि जिउ गहबरा, दौरि कुंअर पेमा पाँव परा।
पाँव सौं पेमै सीस उचावा, कहै कालि परभात मेरावा।

भौ सांति मन सुनत मेरावा, हरग्वित उठि चित्रसारी आवा।
जुग सम रैनि कुंअर के गहई, पेमहिं पुनि जागत निसि गोई।
जेहि बिवोग निसि जागि सिराई, तौ इंजोर भिनुसारे पाई।

निसि बिहान जब भोर भौ, सूर कीन्ह प्रगास।
आइहि जननी संग मधुमालती, चित्रसेनि के पास॥

पेमा मधुमालती मिलौं खंड

पुनि मधुमालती पेमा चीन्हो, धाइ दुनौ गहि अंकम दीन्हो ।
दुओौ चतुर औ बाला अली, दुओौ पेम रस जोबन बली ।
मधुमालती पूछै सुन बारी, केउ राकस सौं तोहिं उबारी ।
आपनि बात सखी कहु मोहीं, कुटुंब आनि कै मेरवौं तोहीं ।
कहु सत बात सखी समुझाई, कैसे मोख मुकुति तुह पाई ।

के तोहिं छोड़ि दीन्हा राकस, के कोउ बरबस लै आउ ।
सपत सौंभु दै पूछौं, कहु आपन सतभाउ ॥

जौ रे सपत दै पूछे बारी, पेमै बात कहन अनुसारी ।
एक दिन कुटुंब सौंरि मैं रोई, रही सोइ दुख पास न कोई ।
अत दुख रहा दुखी जिव मोरा, देखा सो सपना मुख तोरा ।
जनु तैं मोहिं धै बाँह उचाई, कहा कि चलु उठि खेलैं जाई ।
जागि उठी कोइ पास न बारी, रोयेउँ घालि डंफोरि गोहारी ।

एहि अंतर का देखौं, बिधि प्रसंन भा आइ ।
दुख को रैनि अंधारी, खन मों गई बिहाइ ।

निमिखि माँह सो घरी तुलानी, दुख के आगि परा सुख पानी ।
कुंअर एक राता रंग तोरे, लै आवा बिधना सिर मोरे ।
तोहि पूछौं दै सपत बिधाता, रोइ कहेसि जैसी होत बाता ।
अस दुख कुंअर बखाना तोरा, सुनि न रहा जिउ ठाहर मोरा ।
सुनि दुख मोहि परा भर्म भोला, नैन नीर भौ कथक चोला ।

पेमा बात सब पाछिल, तुह दुख को बेवहार ।
सो सब रोइ कहेसि मोहिं आगे, बिरह घाव बिसंभारि ॥

मैं बलि बलि तुअ चर्नन्ह केरी, जे काटी मोरि दुख क बेरी ।
नेवछावरि का सारौं तोरी, जेहि प्रसाद मुकुता भौ मोरी ।

दुख समुंद मो बूड़ति बारी, मैं तोरि आइ भई कंठहारी।
कुंअरि चरन पर मैं जीव वारौं, तबहुँ न नींख देन मैं पारौं।
जौ न कुंअर चित राता तोहीं, कैसे होत मोख पद मोहीं।

तोरे विरह बिभूता, काछे भेस अधूत।
राकस मारि मोहिं ले आवा, धन जननी तेहि पूत॥

बहुरि मोहिं पूछेसि ना बारी, तोहि वोहि बन क अक बेवहारी।
पेमं जत दुख आपन कहा, परिहरि राज कुंअर ते कहा।
पुनि मैं आपन तोर हिआरी, जसि आहा तसि कहा बिचारी।
सुनि तोर नाव परा मुरछाई, बहुरि डँसा लहरि जो आई।
पुनि जौ चेत चितहिं भा ताही, पूछेउँ बात कहेसि जसि आही।

तोरे बिरह बिभूता, काहि भेस अधूत।
राकस मारि मोहिं लै आवा, धन जननी ेहि पूत॥

सुनत चक्रित भा राजकुमारी, कहेसि मोहिं वोहि कैस चिन्हारी।
कौन कुंअर का जानौं बाता, मोरे रूप कहवाँ वोह राता।
देखैं वोइ कहवाँ मोहिं पावा, औ मोर के वोह नाव सुनावा।
पिता ग्रिह मैं राज कुमारी, पर पुरखहिं मोहि कैस चिन्हारी।
जौ अस मात पिता सुनि पावहिं, मोहिं जिअत धै गढ़ा भरावहिं।

अस अपजस तै पेमा, कहा लगावसि मोहिं।
मोहिं लाह तोहिं लाहा, खत मोरे खत तोहिं॥

तैं सुजान जे चतुर सयानी, कहत बात तैं मोहिं लजानी।
सुनसि कहौं मैं तोहिं उपदेसा, बात कही जो लौ लेसा।
मैं कुलवंती राज घर धिआ, कहत लाज तोरे आइ न हिआ।
तोहिं सेती मोहिं बार हिआरी, तौ मैं ऐसी सही तोरि गारी।
सरग चाँद बस मनि पातारा, इन्ह दुहुँ कै सपेम बेवहारा।

रूप नैन नहिं देखा, स्रवन सुना ना नाउ।
ता सौं अपजस लावसि, जाकर नाम न ठाउँ॥

बात पूछि तौ सही सयानी, उन्ह बातन्ह तौ उतरै पानी।
बचन तोर मोहिं बिखु जनु लागा, अस को बरै धूरि कर तागा।

अजहुँ जननि कोरा मैं बारी, का जानौं पर पुरुख हिंआरी।
पुरुख न जानै काकरि सेतू, पर पुरखहिं मोहिं केसन हेतू।
अस अपजस कोइ लाव नाहीं, भीति देखि के करी उरेही।

जस तैं बात कहत हँसि, अस जग कहै न कोउ।
त्रिआ जाति अपजस पर, कुल पै नासै सोउ॥

सुनत उतर मधुमालति केरा, कामिनि मुख सौंह भै हेरा।
कहै सौंह भै बकतै बाला, देखौं बोलति है केहि हाला।
सीखति हौ जो नैन धुताई, मो सौं जो कपट क बात चलाई।
चतुराइन मोते बनि आइहि, धाइ के आगे पेट छपाइहि।
दानिहिं पाट छिहरि जो जावै, संगी सन की चोरी फाबै।

आदि अंत लगि जानौं, मैं सब बात तोहारि।
पेम कि छपै छपाये, बौरी कहहु न बात उघारि॥

कहहु बात मो सौं सतभावा, परिहरि बहुत भीति कर धावा।
बदन पिअर औ खीन सरीरा, प्रगट तोहिं पेम की पीरा।
कहहु कहाँ लगि बात बनाये, बौरी पेम कि छपै छपाये।
तैं जो सखी मोरि पेम पिआरी, कस न कहौ मोहिं बात उघारी।
जौं न मोहिं पतीजसि बारी, मांगि देउं सहिदान तोहारी।

मुंदरी मांगि कुंअर सौं, कर कामिनि एक दीन्ह।
कहेसि कहो एह छांड़ेहु, लेहु जो आपन्ह चीन्ह॥

जबहीं दिस्टि परी सहिदानी, दुनउ डोल भरि आयेउ पानी।
चाहेसि बहुत जतन छपाये, बरबस चखु जल भरि भरि आये।
म्रिगमद पेम रहा ना गोवा, येह सुबास यह सौंरि बिछोवा।
राखे पेम न रहा छपाना, उमड़े नैन जगत सब जाना।
पेम प्रीति का रहा बिछोवा, प्रगट भौ जो रहा न गोवा।

पाछिल बात समुझि जिउ मंझन, उपजा बिरह बिकार।
थांभि न सकी लागि गीव पेमा, रोई घालि डंफारि॥

बरकै पेमै कंठ छोड़ावा, हरकी औ परबोधि बुझावा।
बिरह ब्याकुली पिक कंठबानी, बात कहै चित भर्म भुलानी।

पूछै कुंअरहिं कहा सो नारी, सपने बिरह मोहिं गौ मारी।
जागि सपन जौ देखौं हेरी, लै गौ मोहिं आपन गौ फेरी।
औ मुंदरी जो है कर ताही, सेज मोरि न वोहि के आही।

अब लगि बिरह अग्नि जिउ राखा, लोग कुटुंब के कानि।
लाज न कहेउं काहु सौं, गुपुत सहा जिउ हानि॥

कठिन बिवोग अधिक जो पीरा, निलज जीउ तजै न सरीरा।
कौन घरी सो आहि सभागी, मोहिं तोहिं पेम प्रीति जो लागी।
मैं न जरी जे एकसर आगी, कौन सो जग जेहि के ना लागी।
अब लगि गुपुत जरी जे आगी, अब प्रगट दह दिस जो लागी।
गुपुत जरौं कहाँ लगि चोरी, प्रगट जरी दसौं दिस वोरी।

कौनौ सरूप न जानौं बिधनै, मोहिं देखावा आनि।
एक निमिखि जेहि देखे, कोटि सहा जिव हानि॥

गा बिरहा मोहिं हिये दौ लाई, दिन दिन सखी बिरह अधिकाई।
कत जननी मोहिं दूध पिआये, दूध ठाँव कस बिख न पिआये।
नाभि नारि जे काटी बारी, कस न दीन मोरे ग्रिह डारी।
अब यह खन मो जीवन मोहीं, अब न सकौं मैं परिहरि वोही।
औ न काल बस मोरे बारा, कैसे होत मोर निस्तारा।

पेम बियोग न सहि सकौं, मरौं तौ मरै न जाइ।
दुइ दूभर मों हौं परी, दग्धि न हिये बोताइ॥

तौ पाछिल दुख बात जो अही, मधुमालती पेमा सौं कही।
सुनत कामिनी बात सोहाई, पेमा नैन सलिल भरि आई।
कहै प्रीतम लागि दुख सहिए, दस गुन आगे लाहा लहिऐ।
यह सुख लागि सहस दुख सहिऐ, सहस सुख एक दुख निरबहिऐ।
एक फूल कारन सुन बारी, सहिऐ काँट सहस देवहारी।

पेम समुंद पैरि कै, पाछू न टरिऐ काउ।
कै प्रीतम नग हाथ चढ़ै, कै सिर जाइ तौ जाउ॥

कहै तोहार सुदिन सखि आजू, मन कामना सिध सब काजू।
औ रबि सखी छेम तोहारा, चढ़ै हाथ पाछिल निध बारा।

नवयें गुर सखि है तोहीं, निज जानहु मिलै बिछोही।
और मंगल जो तिसरे तेजा, चढ़ै आइ प्रीतम निज सेजा।
और सुंदर दसा उजिआरा, सुखनिधि देखु सुखनिधि जारा।

एगारहें बिबि जन्म तुअ, सुक्र बुध म्रिग अंक।
सातौं गरह सुध तुअ, गुनि गुनि देखु मअंक॥

राहु समान आहि जो बारा, जे मिलि बिछुरै पेम पिआरा।
मैं जाना कुंअरहिं दुख भारो, पै अति तैं दुख कुंअर दुखारो।
अत दुख सहे लागि जे बारा, मिलै आजु तोहिं पेम पिआरा।
तोरें ध्यान धरति है बारी, बैसा सब संसार बिसारी।
जब देखा तोर मुख उज्यारा, सब कीन्हा नैनन्हि अंध्यारा।

देखु आइ गति ताहि कै, तोहि बिनु और न कोइ।
तन मन जीव (न) जोबन, सबै वोह जो बैसा खोइ॥

अति भौ बिरह भस्म जरि काया, देखि कुंअर जी उपजी दाया।
रहा न कया मांसु सखि रती, तापर बिरह हाड़ देइ काँती।
जाका जीउ बरबस लीजै, ता कहँ पलटि दैया तौ कीजै।
नेक सरूप देखाउ तैं बारी, तैं पुनि देखहि कया उन्हारी।
बिधि चरित्र सेतो पै डरिऐ, भूंजी सोइ करम जो करिऐ।

पेम कि निहफल जाय जो, सुनहु कहौं समुझाइ।
कबहुँ के इहै कुंअर दुख, तुह सिर सखी बिहाइ॥

पुनि पेमै गहि बाँह उचाई, साथ लिये बारी दिस आई।
कहेसि चलौ गै देखि सोहाई, जेहि दूनौ जुग छाँड़ न कोई।
तजहु लाज चित की निठुराई, दया करि नेकु देखहु आई।
जो जाके मारग जिउ नेरै, सो कैसे तासौं मुख फेरै।
सोइ सखी जाही दुख होई, पाछे दुख ताही सुख होई।

पुनि पेमै सखि आपनि पठई, जाउ जनाउ कुमारि।
मधुमालती औ पेमा, दुऔ ठाढ़ि हहिं बारि।

जबहीं सखि मधुमास सुनावा, दरसा सुनत सस्तिकै भावा।
कंप भौ मुख आव न बैना, चित सौं चेत गा झांपेउ नैना।

ढरै आगि मो जैसे राँगा, तिमि रे तेज भौ आठौ अंगा।
पेमै लै छिरका चख पानी, कहै जागु सिध घरी तुलानी।
कहुँ जो कछु कहबे बाता, पुनि अस दिन करै बिधाता।

आजु भाग तोर दाहिन, बैसहु चित संभारि।
ठाढ़ि आहि सिर ऊपर, साहस सिधि तोहारि॥

भाव खंड

सुनत भाव साहस सिध जागा, कहैं बचन अंब्रित सम लागा।
कहै कौन दिन आजु सोहावा, जाहि बास मैं प्रीतम पावा।
फूली मकु रे पेम फुलवारी, जेहि सुबास पूरित मो बारी।
पौन बास काकर लै आयेउ, जेहि रे तोहि बिनु मैंमत पायेउ।
पेम प्रीति जे आव अमोला, आइ देखु बीर बिरह फफोला।

मैं तोहिं कारन सब तजा, जत कछु येहि संसार।
एक न तोर दुख परिहरा, जो जग जीवन सार॥

गैहु जो पेम लीक हिय काढ़ी, सो न मिटी जो दिन दिन बाढ़ी।
सुख कैसे लिपित भा नीरा, तुअ दुख नैन भवैं जो पीरा।
मकहुँ आजु बितीतू राती, कै चातिक सिर बरिस सेवाती।
तोरे बिरह जुंआ फर बारी, कौन सो बिखै जो मैं ना हारी।
मिलहु आजु हमैं गलेबाँहीं, कालिह आजु अस होइ कि नाहीं।

आजु जो कछु है करना, कैसो कलि बिधि होइ।
कालिह बहुरि का जानी, कैसी बिधि लिखा होइ॥

जब प्रगट भा रूप तोहारा, तब के हम चखु देख निहारा।
जा दिन आदि रूप तुह सोहा, ता दिन ते तोहिं मइ मोहा।
रूप तोहार मोर दुख बारा, देस देस गै भैउँ पवारा।
जौ जौ रूप उदित जग तोरा, तौ तौ जीव बिरह बस मोरा।
दिन दिन रूप अधिक ह्वै तोहीं, अब न सकौं मैं परिहरि मोही।

जौं तुह बदन निहारि कै, देखा बदन अघाइ।
तिन्ह धनाधन धाई कै, हम चखु चूंबा आइ॥

बाँके नैन कटाछ सोहाये, दुइ पलक मो रकत तिसाये।
बिरह अग्नि जो दहा न एता, तुह बिरहे जो उपजा एता।

अब न कहौं दुख पारौं तोरा, तोर दुख देखि जम हाथ संकोरा।
जो जिव बिरह अग्नि मो जारै, समुझि समुझि मोहिं संभारै।
बिधि येह पीरम पीर कत कीन्हीं, जौ उन्ह चित माया ना दीन्हीं।

यह दुख मो पै होइ एक, निजु जाना मैं जीअ।
कै तुह भुअ बर हाथ गरे, कै अंत हम तुह कोअ॥

मैं एकसर वोह अनिल दाहा, कौन सो जग तोहि न चाहा।
मोर तोर पेम न जानै कोई, जौ न कहत दुइ लोयेन रोई।
आपुन आंस जीवन पावा, तौ वोसे जिउ जग ते लावा।
मैं पुनि वोह जीव जिउ जोरा, जब मोहि चाँड आइ भौ तोरा।
गौ खोइ जग खोज न पावा, जेहि पूछौं सो तोहि देखावा।

कौन बनिज मैं बानिज, का मैं बिढ़बा आइ।
अंतरही मूल गँवावा, लाभ कोनि उपाइ॥

यह सुनि कौंल कली बिहसानी, खुले अधर अमी बिहरानी।
लाज न पारौं कहै सखि आगे, पै न लाज रह पेम के आगे।
पेमे कहा लाज ना मानहु, मैं तोरि सखी एक कै जानहु।
सभ दुख तजि कहै दुख दाधी, रही नाह तोरे दुख आधी।
कहौं न लाज काहु एह पीरा, सहा गुपुत जिव ढाह सरीरा।

एक दिस पीरम कै आन, एक दिस कुल कै हानि।
मोहि दुओ दिस दूभर भइ, तजि उत कुल हानि॥

तुह जो कहहु दुख हम आगे, सहहु बिरह दुख हम आगे।
लै लाजन्ह जो पेम छपावा, अब लगि काहु न चरचै पावा।
सखी सहेली संग जो आहीं, तेउ मरम यह जानि नहिं पावहिं।
एक दिस जम दुसरे दुख तोरा, तोर दुख देखि जम हाथ सँकोरा।
जम की म्रितु खिनक निरबाहै, येह रे बिरह खिन खिन दाहै।

तुह चित चंचल निरदै, बैसु सब जग खेलि।
मैं अबला के निरबहौं, तिल तिल जौरा पेलि॥

कामिनि बचन सुनि कै रोवा, कहै मोर दुख तोहि न गोवा।
जो किछु मोरे जिउ पर कीन्हा, सभ जानौं जे आपन चीन्हा।

सदा ठाँव जिव भीतर तोहीं, मोर मरम का पूछसि मोहीं।
मोर दुख मोंही पूछै काहा, आपुहिं पूछ किये जो काहा।
हिये माँह जेहि केर बसेरा, सो का दुख पूछै तेहि केरा।

सदा हिये मो बाला, ठांउ रहन कर तोर।
जानि बूझि सब मर्म जीव कै, का पूछै दुख मोर॥

चिहुर तोहार और जिव मोरा, लुबुधे दुनौ देखि मुख तोरा।
बदन मोर मोहिं कोर छपावत, जौ तुह चिहुर न घूंघट आवत।
सौंह न जाइ सुरत ना हेरा, जस दुपहरी खरभरि बेरा।
नैन सूर बिच आहि न गोई, अपने जागनि का आपन सोई।
छोट हाथ ना पहुँचै पारौं, तुह मुख से ऊपर केंउ टारौं।

चिकुर सकोरहु बाला, दिनकर उदै कराइ।
लोयेन जरे बियोग के, पिअहिं रूप अघाइ॥

जो कोइ देखैं चाह मम रूपा, सुनहु बात जो कहौं अनूपा।
किमि संकोच जो नैन पसारा, दिस्टि मांग लै आउ उधारा।
ताहि दिस्टि चाही मम रूपा, इन्ह नैनहु देखि जान सरूपा।
मम नैनन्हि दिस्टि ठहरावै, मोहिं देखे तोहिं और न भावै।
कहौं कुंअर मैं निस्चै तोहीं, यह देखि नैन सकै ना मोही।

कै जीउ जोबन तन मन, नैन स्रवन दै बादि।
तब ते लोयेन उघरै, जो सूझै अंत आदि॥

हिये मांह संतति तुअ ठांऊ, औ रसना पर जपहूं तुअ नाँऊ।
औ नैननि मो ठाउं तोहारी, दिस्टि माँह तुह मुरति अपारी।
जहाँ न तोरा मुख उजिआरा, तहाँ दिन अछत अंध्यारा।
जौ नहिं नैन भवैं चखु मोहीं, दिस्ट बाजु जो देखी तोहीं।
तोरि दिस्टि नैनन्हि मोरे, लोयेन जोति अंध बिनु तोरे।

बाला जहाँ उदय करै, तुह मुख ससि उंज्यार।
सहस सूर जौ उटवै, तबहुँ सो ठाँव अंधार॥

छाँड़हु येह चतुराई जेती, केतिक छंद करहु हम सेती।
अब परिहरहु दंद उर दीठे, पिअत गुपुत मो बचन जो मीठे।

एते देवस सुख माने भोगू, अब हम देखु करत हौं जोगू।
तुह फिरि फिरि करहु अनंदा, हमहिं दहै जे मनमथ दंदा।
तुह मानहु रस भोग बेलासा, अहनिसि हम तन बिरह नेवासा।

तुह बहु बल्लभ भौंरा, थिर रहौ एक पास।
हम अबला केउ निरबहौ, निस दिन सदा उदास॥

सौंरि सपत बाचा जो कीन्हे, मोहि अंतर बाचा जो दीन्हे।
ससि पुनोव देखा उजिआरा, किमि सो छपै छपाये बारा।
सदा हिये मो रहनि तोहारी, का मो सौं मुख गोवसि बारी।
देहु असी रस अधर अघाई, जात प्रान काया बेलंबाई।
भाग देखाउ रूप मोहिं बारी, तै निजु भई जीउ लेनिहारी।

कौन दुख केहि औगुन, बदन छपाये मोहिं।
औगुन इहै सकल सिस्टि, परी अवस्था तोहिं॥

कहौं कुंअर तोहिं सतभाऊ, पाप के नाव चढ़ै ना काऊ।
पानी तात कै रे जो जुड़ाई, पहिल स्वाद कै तापहँ पाई।
सूखे कुसुंब कै बास न जाई, और रूप के वोहि घट आई।
पै न पहिल अस गारौ होई, औ आदर सौं लेइ न कोई।
तस त्रिया पानी परवा सी, जानि बूझि जो ताहि न नासी।

जौ लगि पिता न संकलपै, मो करै न कन्या दान।
तौ लगि होइ न सुरत रस, और सबै रस मान॥

कुंअर बचन सुनि अंबुज कारी, बिगसित भौ रस बातन्ह बारी।
कहेसि मोहि कुल गारी नासा, कुकरम कै को आपुहिं नासा।
लाजौं कुटुंब पिता महतारी, एत मैं नासौं चढ़ै कुल गारी।
बाचा देहि जौ मोके पीऊ, करौं आइ तोर परबल जीऊ।
एता कहौ जौ मो सौं नाहा, मिलैं आजु तुहै गलबाँहा।

बिरह आगि जो जिउ सहौ, तेहि डर होउ न आगु।
मति मम धरम जरि परै, चढ़ै पाप कै दागु॥

कहै कुंअर सुन पेम पिआरी, उतपति बाचा हम तुह सारी।
आदि सपत हम तुह भैऊ, रुद्र ब्रह्म हरि अंतर दैऊ।

पाप के पंथ पा धरौं काऊ, उहै सपति मोहिं तोहिं सुभाऊ।
अब जो बाचा सपत है तोरी, बिरचि रचै सपत जे मोरी।
अब लगि तरु धर्म फर मोरा, मोहिं अघात अंब्रित फर मोरा।

बरकामिनि जब ताँइ, तोहिं मोहिं होइ न ब्याह।
पाप न अंतर संचरै, बिधि बाचा मम आह॥

बाचा सपत सुन राजकुमारी, चंद्रबदनि मुख दीन्ह उघारी।
कुंअरहिं उपजा मोह बिकारा, देखत जोति बदन उजिआरा।
देखि कुंअर बर कामिनि धाई, प्रतछ अंब्रिछ लीन्ह उठाई।
कहेसि लाज मोहिं बूझी नाहा, मैं तजि लाज दीन्ह गरे बाँहा।
अजहुँ नाह जे चेतहु आपू, लागु गीव जे हरै संतापू।

पेम प्रीतम लागु गिव, देखा मुख जे गात।
रोम रोम से काढ़ि ले, बिरह दग्ध उतपात॥

कुंअर के गीवा कुंअरि लगाई, भा सचेत जो प्रीतम लाई।
ऊभ कुंअर ले प्रीतम लागे, औंटा जानेहु सोन सोहागे।
बार कामिनि जे राजकुमारी, एक भैउ दुइ प्रान पिआरी।
प्रान एक भौ एक जो देही, मिलते दूनौ पेम सहेली।
बिरहे बिछुरे अहे जो वोऊ, सांते पिअत अमी रस दोऊ।

पेम बिछुरे जाहि दिन, दोउ मिलि पूजी आस।
दिनहिं बाजु बधावा, महि पताल आकास॥

जिअ की बात दुऔ जिअ होई, तेहि का मरम न जानै कोई।
सो रसार पिआ अस बारा, मुये पिंड पानी अनुसारा।
दुइ जोबन गहि हिये समाने, अधर अधर रस पिअत न जाने।
मिलत प्रीतम जैस सुख होई, सो किमि जीभ कहि पारै सोई।
बिबि सरीर एकै भै गैऊ, बैठे पहर एक दुइ भयेऊ।

नाक नीर लगि बूड़ेउ. रहे पिआसे दोउ।
प्रगट भै सो बरनेउ, गुपुत जान ना कोउ॥

———

कुंअर मधुमालती मिले खंड

पुनि गै दुऔ सेज चढ़ि बैसे, सोभित मधुकर मकरंद जैसे।
कबहिं दुऔ पाछिल दुख कहहीं, कबहूँ आपुस महँ मिलि रहहीं।
रबि अथवा ससि कीहु प्रगासा, एक नैन दुइ किआ नेवासा।
जग जीवन फरकत जस एही, जस बिछुरे दुइ मिले सिनेही।
रैनि बिहानि दुऔ रस जागे, चखु चखु नींद भोर भै लागे।

अधर अधर उर उर सौं, मेरे रहे सुख सोइ।
देखि समुझि ना मन परै, दहु हहिं एक कि दोइ॥

पाट पटंबर दीन्ह दुआरी, पेमा औ पहरू चित्रसारी।
साठि सहेली पेमा केरी, एक एक संग जो पंच पंच चेरी।
सब सरूप जे जोबन बारी, एक बैस जो एक उन्हारी।
खेलैं हँसे रहैं एक ठांई, पेमा बहुरि देखैं सब आई।
आस पास चहुँ दिस चित्रसारी, केलि करत है राज दुलारी।

इहां सखी संग पेमा, करै सहज रस केलि।
उहाँ रूपमंजरी के जिउ, चढ़ी भरम कै बेलि।

रूप मंजरी जो बैसी अही, अस मन ते चित चिंता दही।
चक्रित चित जे भर्म भुलानी, भइ ठाढी जो हिये सुग्यानी।
पुनि मधुरा ते कहा बोलाई, धी की जाति बिधि मोकलाई।
सांझ कि गई दुऔ हहिं बाला, नहिं जानौं दहु कौने हाला।
कौन काज दुइ रहीं दुलारी, घर तजि राति रहीं चित्रसारी।

मधुरै कहा मैं चेरी, पठई है उन्ह के पास।
अब वोइ छिन मो ऐहैं, बैठहु तजौ उदास॥

औ पुनि कहा सुनु तैं रानी, चतुर सुबुधि हो सदा सयानी।
पंथ वोट निसि अंध्यारी, कौने काज जाहु चित्रसारी।

तुह बैसहु मैं उन्हि धौरावौं, कहौ तो महीं उन्हं लै आवौं।
वोइ आपुस मों बारि सहेली, लेहिं पिता घर कै रस केली।
बिछुरी मिली बहुते दिन दोऊ, ते खेलत उन्ह बरज न कोऊ।

वोइ दुइ बाल सहेली, खेलहिं केलि कराहिं।
मोर तोर कौन परोजन, लरिकन्ह पहँ जे जाहिं॥

कहेसि निमिखि एक मैं गौ तहाँ, मधुमालती पेम हैं जहाँ।
अब जो भरम भौ जो भारी, औगुन कछु देखौं चित्रसारी।
मधुरा बरजि रही बहु भांती, पै रानी जिउ भई न सांती।
बरज न मानै गो चित्रसारी, मधुरहिं लाज भौ जो भारी।
चेरी बीस लीन्ह संग लाई, औ पुन चित्रसारि जो आई।

बरजि रही जो मधुरा, रानी श्रवन न कीन्ह।
सो गौनी चित्रसारी, गै देखा सब चीन्ह॥

जौ रानी चित्रसारी आई, देखा सो जो कहा न जाई।
रबि मंदिल जो किरनि छपानी, रबि देखे ससि जोति हेरानी।
देखा रानि भई जो कारी, पेमा पास आइ दिहु गारी।
है निलज्जु तुह कानि न मोरी, दाग दिये कस पीति अकवोरी।
मैं येह तजी भरोसे तोरे, कुल कलंक कस लाये मोरे।

सत भाखा सुनि तिन्ह कै, सत कहो समुझाइ।
कार होइ सो निस्चै, कारे संग जो बसाइ॥

पेमै कहा सुनसि मैं कहऊँ, तुह माता बोलहु सो कहऊँ।
मोहि न माँख न तोरी गारी, जसि मधुरा तसि तैं महतारी।
पै किछु खोइ लाइ ले मोहीं, तो गरिआव भाव जत तोहीं।
भरम न जीव जे मानहु नारी, एक दुनहु अस सुरसरि पानी।
औ पाछिलि दुनहू के प्रीती, सभ जानौ अंत आदि जो बीती।

उतपति बात कही जो पेमै, प्रीति मिली जेहि भाँति।
पालक फेरि बदलि कै मुंदरी, पहिरि जीव भौ सांति॥

सुनु माता जो दुहुँ जिअ माहीं, दूसर परस खोरि जो नाहीं।
मैं काहे को भेंउ अयानी, मेरवो निरमल छीर मों पानी।

अंब्रित कुंड तैस अवतारा, अजहुँ देखु वोइसे है बारा।
पेम लीन है पाप न पासे, अजहूँ सुरसरि नीर पिआसे।
कौंल कली काहू न बिगासा, भौंर बिमोहि रूप भौ बासा।

अजहुँ सेवाती धार सीप लगि, घोर गगन गुमाति।
अजहुँ जैस जननी मधुमालति, पहिरि जीउ भौ सांति॥

रानी पेमा निकट बोलावा, कहेसि पूछौं कहु सतभावा।
कहु मोहिं एक भांति बेवहारा, रांक दुखी की आहि भुआरा।
कुल कर नीक कि है कुल हीना, कै रे बिरह दुख हते मलोना।
कैसन मधुपुर कै बाता, कैसे देखी यहिके रंगराता।
तब पेमै निजु बात जो अही, रूपमंजरी सों सब कही।

गढ़ सुहावन कनैगिरि, सूरजभान भुआर।
टिकइत उहवाँ राजा ठाकुर, कौंला प्रान पिआर॥

पेमा बचन सुना जौ रानी, भा संतोख जिउ सुरतानी।
कहेसि फुरहु संतति जे रोवै, पेमा लाज मोसौं येह गोवै।
कबहुँ सीस धै बैसि तँवाई, कबहुँ ठाढ़ भै हँसे हँसाई।
कबहूँ चक्रित दह दिसि देखा, कबहुँ मुग्ध भै रहै अलेखा।
कबहुँ देखै दरपन ते बैना, कबहुँ रुधिर भै आवैं नैना।

कबहुँ देवस चारि अन्न छांडै, कबहूँ रोवै गोइ।
कबहूं बिरह ब्याकुली, बदन ढांपि रह सोइ॥

तेहि ऊपर तैं एह का कीन्हे, बुझी आगि घ्रित ऊपर दीन्हे।
एक असहिं रही बैरागी, ताहि उपर तैं बई बज्र आगी।
तैं का बज्र ताहि पर पारा, जेहि आपन न हो (स) संभारा।
पालक एक हेम नग जरी, एहिके मंदिल काहु ले धरी।
ता दिन ते जो मरि मरि जीअइ, अन्न न खाइ पानी न पीअइ।

आजु बात सब जाना, औ बूझा सब मर्म।
तैं काजर काह सिर काढ़े, आगू यह कौन धर्म॥

अति की रिसि चेत न रहा, रानी बहुरि सखी ते कहा।
अस बेगरावहु दूनहु जनी, जैसे न खसत पंख ते पानी।

अस मोहनी चखु निंद्रा लागी, करवट देत बहुरि ना जागी।
सखिन्ह बीच दुहुँ करवट दैऊ, एक देह तब दुइ ठां कियेऊ।
कुंअरहिं पिता नग्र लै डारेउ, मधुमालती लै मंदिर उतारेउ।

चित्रसारि सौं रानी, पुनि गौ मधुरा पास।
कहेसि देहु जौ अग्या, चलेउ सबेरा बास॥

कुँअर इहाँ जागा जहँ आना, चक्रित चित जो भर्म भुलाना।
सौतुख सपना जात न कहा, देखा चक्रित चित भै रहा।
बाहि खेह सिर धुनि धुनि रोवै, नैन रकत मुख अंबुज धोवै।
कहां सो चित्रसारि कबिलासा, कहँ सोरहो जाहि संग बासा।
रजनो गत होत भिनुसारा, चले कुंअर जहँ होत हिआरा।

कहँ कबिलास नेवास जे, कहाँ सुरज बस संग।
निमिख मांह जो राज सुख, कहु केहि कीन्हा भंग॥

कोइ संग साथ बिनु करतारा, रोवत चले बाहत सिर छारा।
नैन सरूप जो रहे लोभाई, जग जीवन रहौ नहिं भाई।
संग न साथ पेम मदमाता, पीरम न बकतौ कहौं जो बाता।
चला जाइ एकसर दिन राती, मधुमालती कर पेम संघाती।
बन सायेर जत आगे परे, पेम प्रताप ततइ उबरे।

एह तौ इहाँ चला तेहि मारग, प्रथम भो जेहि सिधि।
मधुमालती इहाँ जागी, झंखै खोइ निधि॥

मधुमालती जो सोवत जागी, बिरह आगि तौ नखसिख लागी।
ऊभि साँस जिउ गहि गहि आवै, तजि लज्या चखु रुहिर बहावै।
नैनहिं भरि भरि धार जो फूटी, नैन बीर चलु बीर बहूटी।
जानो दरसन डंफोरत खोला, दामिनि चमकि चमकि तौ बोला।
मुकलित केस रही अंधिआरी, अब दुख आगे सुख उजिआरी।

रोदन करति मधुमालती, बिरह बिथा तन साल।
लोगन्ह अचरिज सघन, अब दुइ बरखा काल॥

मधुरा सौं जौ अग्या पाई, रानी नग्र महारस आई।
धाइ आइ मधुमालति पासा, देखि ररै जिउ ऊभे साँसा।

कनक देह सब मिल गौ माटी, नैन नीर धोये निधि पाटी ।
फारेउ तार तार तन चोला, रोवत भौ राते दुइ बोला ।
सौंरि सौंरि प्रीतम अनुहारी, रै जो खेह बाहि सिर बारी ।

प्रथमहिं पेम उपनेउ, हतो जो बारि अयानि ।
अब भरि जोबन किमि रहौं, लियेउ जो पापी प्रान ॥

पेम प्रीति जिउ बाहर होई, कान न करै कहै जत होई ।
जहाँ भैउ बिरहा तन राजा, तहाँ न रहे सुधि बुधि लाजा ।
समुझाये तौ समुझ न बारी, रोइ रोइ धरनि खाइ पछारी ।
पुनि रानी चलि आगे आई, कहेसि लाज तैं कुलहिं लजाई ।
मारेसि हाथ दुवो बोह मांगा, है कुल बोरनि का तोहिं लागा ।

दुख दाधे बिरहे जरा, घट जे मिलन अधार ।
पेम बिवोग देइ जनि काहू, जन्मत एहि संसार ॥

मात पिता कुल लाये खोरी, जन्मत कस न मुई कुल बोरी ।
कुल मुख कारिख किये करमुखी, तोहि जन्मत भयेउँ मैं दुखी ।
जौ बारे मरतसि कुलबोरी, होत न देस मो हाँसी मोरी ।
एह कारिख दहु कैसे धोई, कारिख और होइ तौ धोई ।
बहुति भाँति फुसिलावौ रानी, स्रवन न कीन्ह पेम बौरानी ।

रानी बहुत जतन कै देखा, कैसहु समुझ न सोइ ।
का तेहि सिखा सिर लगै, जेहि जिउ हाथ न होइ ॥

पंछी खंड

कानन कीन्ह जननी जत लापा, सिध जोगी तौ आपुर जापा।
जौ रानी समुझावत हारी, किछु रस बचन करू किछु रस भरी।
सिख बुधि सुनै जेहि जिउ होई, बौरी कहा सिख बुधि दे कोई।
जौ सिख बुधि किछुन पर लागी, रानी चक्रित रही जनु ठगी।
तब जिउ डरी कहेसि का करऊँ, यह संजोग मैं कुलहि डेराऊँ।

तब करु चिरुआ भरि पानी, पढ़ि छिरका मुख रानि।
लागत खन मधुमालती, पंछी भै रे उडानि॥

पंछी रूप मधुमालती होई, केउ न जान कहाँ उड़ि गई।
गेसहि अही पेम की बौरी, तापर पंछी भई ठगौरी।
सग्र नग्र उठि देखै धाई, पंछी रूप पंख नहिं पाई।
पौनहु चाहि अधिक उडि भागी, बहुत पाछु किआ हाथ न लागी।
रूपमंजरी मन पछतानी, कहेसि कहा मैं कीन्ह सयानी।

मात पिता तेहि पुत्री कारन, रोइ रोइ भये अचेत।
पुत्री नैन जो कार तोहि बिनु, रोइ रोइ कीन्हा सेत॥

मधुर नाव सुनि जिउ भगा, मधुमालती सब धंधा तजा।
छांड़ेसि मया मोह संसारा, छांड़ेउ लोग कुटुंब परिवारा।
छांड़ेउ रहस चाउ रस केली, छांड़ेउ ते सब बारि सहेली।
छांड़ेउ भोग भुगित रस आसा, छांड़ेउ मात पिता घर बासा।
छांड़ेउ अर्थ दर्ब जत आथी, छांड़ेउ जन परिजन संग साथी।

छांड़ेउ राजपाट जत, सुख सेज्या नींद भोग।
छांड़ेउ रहस चाउ सब, कियेउ पेम कर सोग॥

मधुमालती सब छोड़ उड़ानी, जोवत खोज करत है रानी।
व्याकुलि भै भवैं बिकरारी, जस बाउर हो बीछु क मारी।

गिरि सायेर बन फिरि फिरि हेरा, कतहुँ न खोज पाउ पिउ केरा।
रन पटनन भवैं उदासा, पै वोहि की ना पूजी आसा।
तरु तरु घर घर देस बिदेसा, जन जन ढूंढ़ेउ राँक नरेसा।

केदलीबन गोदावली, मथुरा बनारसि प्रयाग।
देव द्वारिका औ तीर्थ सब, फिरि फिर माँग सोहाग॥

घुमंत फिरत हेरत दिन राती, पेम सुरा ब्याकुल मदमाती।
एक दिन उड़ी जात होत बारी, परी दिस्टि एक कुंअर उन्हारी।
थिरकि खिनक जात पंथ बारी, देखा कुंअर की रूप उन्हारी।
ताराचंद ताहि कह नाऊँ, पुर पनेरि मानगढ़ ठाऊँ।
अति सुन्दर रूपवंत सुरेखा, छत्री बरिआऊ जो पेखा।

लखन सपूरन बिद्या, मदन मूरति कुलीन।
बहुत उन्हारि मनोहर, देखत बिधि भौ लीन॥

पुनि धौराहर बैसी आई, देखत अति रे रूप सोहाई।
हरे पाँख अरुन जे ठोरा, नैन फारि जनु मानिक जोरा।
कुंअर उन्हारि नैन दुइ लायेसि, जरत बिरह आसरौ पायेसि।
कुंअर दिस्टि तौ पंखिहि लागी, देखत मया मोह मन जागी।
रही देखि जसि लाइ ध्याना, देखत राये राँक परधाना।

सबन्ह कहा अस पंछी, येहि कलि कबहुँ न आउ।
कोटि नैन जौ होहिं जग, तबहुँ न देखै पाउ॥

रहसी देखि कै कुंअर उन्हारी, बैसी आइ तेहि आइ अटारी।
कहेसि जरे तेहि अमी सेरावौ, बिरह आगि तौ जरत बुझावौ।
बूडत आस धाइ तिनु लेई, तिनुका बूड़त आसरौ देई।
ओस पियास न त्रिखा बुताई, आँव साध की अँबिली जाई।
बिरह आगि होवर परजारी, होइ संतोख देखि उन्हारी।

पंछी रूप कुंअर निहारत, देखि रूप भा लीन।
ताराचंदहि चटपटी, ज्यों जल बिछुरै मीन॥

पंछी रूप देखि कुंअर भुलाना, नेगिन्ह कहा जो भौंह निसाना।
बेगि समुझि जना दौराये, ब्याध नग्र सबै धरि आये।

कहेसि चहूँ दिस जाल पसारेहु, औ तेहि ऊपर लै अंन बिथारेहु ।
पंछी पेम प्रीति जिउ गहा, लाइ नैन दुइ कुंअरहिं रहा ।
जाल फाँद भौ चित न आना, रही कुंअर मुख लाये ध्याना ।

छिन एक गौ सजग भै पंछी, उड़न को मनसा कीअ ।
कुंअर कहा जब येह उड़ि जाइहि, संग चलिहि मम जीअ ॥

रोपा जाल चहूँ दिसि घेरा, ठांव ठांव जो अंन बिथेरा ।
पंखी होइ तो अंनहिं लोभाई, यह भूली बिरहे बौराई ।
बहुरि उड़ै को चित दौरायेसि, खिनक उन्हारि आसरा पायेसि ।
पंखी उड़न को पंख संजोरा, कुंअर ठाढ़ भै हाथ मरोरा ।
कहेसि जौ येह जाइ उड़ाई, सिधि निधि मोरि येह साथ जाई ।

कहा कुंअर उड़ि जाइहि, हाथ धरौं मैं जाइ ।
धावत मटुक सीस तें उछरा, मोती गौ छितराइ ॥

मुकुता परा जाल ढहराई, देखि पंखी तौ द्रिस्टि फेराई ।
उड़न मनसा जौ चित आई, रही मुकुता ते खिन चित लाई ।
तबहि कुंअर अस कहा बिचारी, एह पंछी निज प्रान अधारी ।
अनबेधे मुकुताहल नीरिआ, मर्म येहि का पाव न धरिआ ।
धाये जन लै अनबिधे मोती, आनि बिथोर गँगन लहि जोती ।

तब मधुमालती मन गुना, पेम पंथ जिउ देउँ ।
आपु बँझाई जाल महु, चाह मनोहर लेउँ ॥

———

ताराचंद पंछी बझाई खंड

जौ मधु मालती निस्चै जाना, कुंअर जीउ मम हेतु समाना।
एक बरिस भा मोंहि येहि भेसा, पावा कतहुँ न कुंअरउ देसा।
बहुरि कुंअरि जी आसा होई, मकु येह कुंअर आह जो सोई।
अब मैं बूझि मर्म येह लेउँ, औ निज मर्म जीव कर देऊँ
मकु पावौं कछु प्रीतम चाहा, मरौं तो लहौं प्रेम पंथ लाहा

येह मन दीप पेमह परेउ, फलि गा भैं जाहि।
चार पाँय मधु अरुझाने, जिअत निकसि नहिं जाहि॥

पंछी बाँझतौ ब्याधा धाये, जाल सहित जिअत लै आये।
कहेसि कुंअर मन भौ हुलासा, सूर उदित औ कौल बिगासा।
पिंजरा एक कनक कर आना, ता महँ पंछी किआ मनमाना।
दिस्टिहुं ते खिन एक न टारौं, मनि मुकुताहल आगे टारौं।
जौ खाझी पंछिन्ह कं जानी, सबै कुंअर तेहि आगे आनी।

निमखि न पिंजरा परिहरै, और न काहु पतिआइ।
हिय ऊपर निसिबासर, पिंजरा लिये रहाइ॥

तीनि देवस बीता येहि भावा, कुंअर पछी तौ किछौ न खावा।
पुनि उपजा बालापन माहे, एहि मोहि लागि मरै केहि लाहे।
मिला राजकुंअर सुकुवारा, मरै तो हत्या चढ़ै कपारा।
यह गुनि जो कहै राजकुआरी, कौने अरथ तैं कुंअर दुखारी।
मोंहिं तोहिं दहु कैसी रीती, मानुस पंछिहिं कौन प्रीती।

आप जीउ जोबन येह, दुख लिखा बेसाहि।
राजकुंअर सुख भोगी, दुख केहि अरथ सहाहि॥

पुनि पंखी मुख अंब्रित घोला, कहै बचन रस भरे अमोला।
मैं पंखी तैं राजकुंआरा, मोहिं तोहिं कैसे पेम बेवहारा।

तुइ तौ राजकुंअर सभोगी, मैं बैरागी पंखी बिवोगी।
तौनि प्रीति आपनि मोरि जानी, तीनि देवस छांड़े अंन पानी।
रहिल रूप जो देखतेसि मोरा, जत कछु करतेहु तत सब थोरा।

रूप राज हरि लीन्हा, पंखि किया करतार।
औ पुनि और न जानै, का बिधि लिखा लिलार॥

हरखित पंखी कुंअर सुनि बैना, जिमि चकोर चांद देखु नैना।
पंछी बचन सुनि राजकुंआरा, रहा चक्रित मन करै बिचारा।
बहुरि सपत दै पूछेसि बाता, कहु आपनि सत बात निराता।
सपत तोहि औ फुर ना कहही, पसु पंखी कै मानुस अहही।
औ भा पंखी रूप जो तोहीं, सपत आह फुर भाख न मोहीं।

कौन नाँउ ठाँउ तोर और, कौन तोर है देस।
कौन पाप केहि अधरम, भैहु जो पंखी भेस॥

येह सुनि पंखी रुधिर भै नैना, रोइ रोइ कहै कुंअर सौं बैना।
जौ रे सपत दै पूछे मोहीं, कहौं मरम सब आपन तोहीं।
नग्र महारस बिक्रमराऊ, पिता राज अति बल बोसाऊ।
जंबूदीप भरथखंड राजा, औ जग पाट छत्र सिर छाजा।
मैं वोहि घर पुत्री औतरी, अचक अवस्था देखु यह परी।

नाउ मोर मधुमालती, राजा ग्रिह औतार।
जो रे लिलारे बिधि लिखा, सो को मेटै पार॥

पुनि पंखी सब बात जो अही, मधुमालती कुंअर सौं कही।
उतपति रैन जो भौ मेरावा, जत कछु आह कहा सतभावा।
औ जत दुख बिछुरे सहा, सो सब एक एक करि कहा।
औ पुनि कहेसि दोसरी बारी, मिले दुऔ पेम चित्रसारी।
औ जैसे सोवत बिहराने, तब जागे जब देस देस आने।

पुनि जननी पानी पढ़ि छिरका, लोग कुटुंब कै कानि।
सो सब आदि अन्त लगि, कुंअर सौं कहा बखानि॥

औ सब राजकुंअर की बाता, आदि अन्त सब कहा निराता।
आदि अन्त जिमि भौ चिन्हारी, औ जिमि बाचा बीच बिध सारी।

औ जिमि तजा पिता वर राजू, औं बूड़ा जिमि सहन भंडारू।
पेमहिं मिला आइ जेहि भांता, प्रीतम चाह पाये भा सांती।
तब अनंद बहु मान बधावा, राकस मारि वोहि लै आवा।

पुनि पेमै चित्रसारी, बिधि लै मेरवा हम दोउ।
खिन एक नैन पलक सौं लागत, बिधि हम किआ बिछोउ॥

पाप न भएउ कुंअर हम माहे, यह दुख परा न जानौं काहे।
राजकुंअर लै कहां दहु डारा, नहिं जानौं दहु जीअत मारा।
भा पंखी जब मो तन आई, पेम अगिन निसरी बौराई।
ढूंढहिं उदै अस्त संसारा, मिला न कतहूँ पेमपिआरा।
पहिले बार परा दुख भारी, तब अचेत जब जोबन बारी।

सकल सिस्टि मैं हेरी, पंखी के जो भेस।
कोइ न ऐसा मोहिं मिला, कहै जो कुंअर संदेस॥

आपन कर्म कुंअर जत अहा, लाज छोड़ि मैं तो सौं कहा।
जौ दयाल जिअ तुअ भेऊ, सकति आपु तुअ जाल बझायेउ।
देख तोहिं प्रीतम अनुहारी, बैसी जिअ धरि आस अटारी।
अब जौ छांड़ि देह मोहिं राऊ, पेम पंथ पुनि होउ बटाऊ।
कै ढूंढ़त मिलि जाइहि पीऊ, कै लागिहि वोहि मारग जीऊ।

मंझन चढ़ि कै पेम पंथ, करिअ न जिअ कर लोभ।
प्रीतम काज जो जिउ घटै, सो (इ) दुऔ जुग सोभ॥

सुनत राय पंडित दुख बैना, मया आंसु भर आवै नैना।
कुंअर सुनी आपन जिउ त्यागी, तोर दुख सुनत उठै उर आगी।
जनि चिंता करसि जिअ मांही, उठवौ सोइ उधरसि जाही।
अब संगम भौ बाला तोहि लागी, जिमि बुझाइ तोरे हीवर आगी।
मोर बौसाउ भाग तोर बारा, मेरवनिहार एक करतारा।

राज पाट सब परिहरि, दुख अंगरौ तोहि लागि।
मकु साहस सौं होहि सिधि, बुझै हीवर आगि॥

जहँ लगि सकौ जीव औ जाती, मेरवौ सोइ जाहि इहि राती।
प्रथमहिं नग्र महारस जाऊँ, पुनि हेरौंगै चितबिसराऊँ।

मकु मोहि जम दै घाल बिधाता, बहुरि मिलै तोहि पेम संघाता।
मिलै न जौ लगि प्रीतम तोहीं, तौ लगि सांति होइ ना मोहीं।
जौ लगि पहिल रूप ना पावहि, तौ लगि कुंअर काज ना आवहि।

नग्र महारस जाइ कै, पहिल रूप तोहिं देइ।
आनि कुंअर तोहिं मेरवौं, जो बिधि आउ न लेइ।।

कहि मरम बचन पंछी संतोखी लेउ बिदेस की आसिर जोखी।
पर सुख लागि दुख जीव भावा, परिहरि सुख दुख मन लावा।
काज आउ सुख सब परिहरा, दुख कर मोट अनि सिर धरा।
मैं बलि बलि तुअ चरनन्ह केरी, पर दुख दुखिआ जिन्ह फेरी।
कारन आपु दुखी सब होई, पर दुख दुखी बिरला जन कोई।

ताराचंद पर सुख लागि, लीन्ह आपु सिर भार।
पर सुख लागि जो दुख सहै, गनै तेहि संसार।।

धाये सुनि कै बात सँघाती, कुंअर मते धाये अधराती।
कहेसि परा मोरे सिर काजू, होइहौं परदेसी तजि राजू।
जौ तैं हसि संघाती मोरा, रहै जे मो पहँ तोर निहोरा।
यहि परोग मोरे सग आवसि, बाला प्रीति संग पहुँचावसि।
कहै न भला जात केउ मोरा, यहि ठाँ भे संग देउ न तोरा।

एक तैं बाल संघाती, ओ बंधौ हहि मोर।
आपु काज येहि औसर, लावो न आपन भोर।।

कुंअर सो हिरदै सुना सो बाता, सिर पाँवहु ते काँपा गाता।
कहेसि हो सो जिउ मोरा, देउँ सबै नेवछावरि तोरा।
जौ न आज तोरे संग जैहौं, पुनि केहि काज कालि मैं ऐहौं।
जो जिउ नेग न लागे तोरे, सो जिउ बहुरि काज ना मोरे।
तुह सग जौं न जाउँ यहि बेरा, इहाँ रहौं मैं भै केहि केरा।

तुह बिदेस कहँ गौनब, छाड़ि राज समुदाइ।
जो मैं रहौं तुअ परिहरि, को मोहिं भला कहाइ।

ताराचंद मधुमालती लै चला खंड

पुनिबध राजा थनवारू, राज कुंअर अधिराति हँकारू।
अग्या कुंअर प्रछि जे लेऊ, आये जोहार आगे भै बेऊ।
कहा कुंअर जे तुरै पलानू, साज होत जो सभ आनू।
नाँव क अरथ जो जानै जेही, सहसन्ह मो आनु उबेही।
पीठि घालि पाखर सोनवानी, तुरित तुरंगम साजु पलानी।

मरुत न पूजै ते सम, चरन रेन तुरि जाहि।
करै जो रोस जिउ धावै, निरखि निकट प्रछाहिं॥

दरब लादि गाड़ी दस लीन्हा, सुदिन साधि प्रस्थाना कीन्हा।
निज कुटुंब परिहरी सदेसी, परदुख लागि भौ बिदेसी।
जेते इहाँ रहे सँगवासी, भौ साथ जो सबै उदासी।
पुनि कुंअरन्ह के बेरहन बाटे, पौन बेग जो पंख न काटे।
धावत चरन लखा ना जाई, मन मो सौ दुइ पांव हेराई।

सुकल पछ सो बरसातै, सुभ लग्न कीन्ह पयान।
मधुमालती के पींजरा संग लै, उतरे जाइ मेरान॥

पूछत नग्र महारस जाहीं, इहै चिंता मन भीतर आही।
पहिल रूप जब पावै येही, तब ढूढ़ौं जो एहि क सनेही।
मधुमालती पिंजरा हिम्र लाई, चला जाइ बन मांझ जोराई।
जौ जौ पाव महारस चाहा, तौ तौ जिउ मो होत उछाहा।
देख नग्र महारस सोहावा, जरत हिम्रा जे अमी सेवावा।

पुनि जौना मालिनि बारी, उतरे राजकुमार।
मालिनि पुहुप लै भरि डाली, कीन्हा आइ जोहार॥

पुनि पूछै जौना के राऊ, बिस्मै नग्र कहौ केहि भाऊ।
हरखवंत कोइ काहु न देखी, कारन कौन दुखी सब पेखी।

जौने कहा सुनहु नर नाहा, बिस्मे नगर बात मोहि पाहा ।
बिक्रमराउ नग्र येहि राऊ, रानिहिं रूपमंजरी नाऊ ।
बिक्रम तेज अनल जे बरई, सूरजबंस कुल उधरई ।

पुत्री एक अंत के तेही, कुल लीन्हा औतार ।
नाम तासु मधुमालती, तीनि भुअन उजिआर ॥

बिधि चरित्र ऐस भा आई, वोहि के हाथ भई बौराई ।
वोहि माय सकती वोहि खोई, पंछी रूप ते कुटुंब बिछोई ।
ता दिन ते राजा औ रानी, बिस्मै बहुत तजा अंन पानी ।
नैन दिस्टि जो रोइ बिहाई, जग सौ हेरि हेरि ना जाई ।
राजा नग्र बिस्मै जे होई, हरखवंत नग्र नहिं कोई ।

सभ कर घट जो आहै, मधुमालती येहि गाँउ ।
सो जिउ गौ सरीर तजि, येह गुन नग्र बिराउ ॥

जौना कहे सुनह येह हाला, जा दिन ते गई वोह बाला ।
तब से नग्र बिसूरा परा, सुख अनंद घट घट ते रहा ।
माता पिता जे भौ बिभेसा, जस बिनु जीउ कया है सेसा ।
ता दिन ते मैं फूल न गांथे, फूल गाथि माधौ के माथे ।
जेहि निति गथै पुहुप कर माला, बिधि हरि लीन्हा पहिरनहारा ।

जौना बचन सबद सुनि, कुंअरी लीन्ह हंकारि ।
जौ तुह अग्या पावौं, तो सौं करौं चिन्हारि ॥

कुंअर कहा चीन्हत हौं तोहीं, कहेसि मोरि है बाल सनेही ।
मालिनि कुंअर निकट चलि आई, मधुमालती सौं भेंट कराई ।
तब जौना पिंजरा कंठ लाई, रोवत नैन सलिल खुटाई ।
मधुमालती गहबरि रोई, रूप हीन जो कुटुंब बिछोई ।
लोयेन दुनौ नीर लै बहे, रोइ रोइ दुख पाछिल कहे ।

पुनि गै राज कुंअर जे प्रजा, अब रोवै केहि ग्यान ।
तुअ दुख दुख ब्यापित भौ, परगासा सुख पान ॥

कहा कुंअर तौ जौनहिं राई, राउर चाह जनावहु जाई ।
गै कहु मात पिता सुख चाहा, औ जो लोग कुटुंब जत आहा ।

जौ मालिनि येह अग्या पाई, रहसत बार राजा के आई ।
रानी राय बैठे होत जहाँ, जौना चाह कही गौ तहाँ ।
बिक्रमराय बैठे रूपमंजरी, रहसे चाह सुनत रस घरी ।

चंद्र उदै मुख दुहु कर गहा, होतेउ जो दुख राहु ।
पुनि उभै प्रगास, सुन मधुमालती चाहु ॥

पुनि रानी मालिनि पाँव परी, कहेसि उहौ बिधि होइहै घरी ।
कस होइ है सो देवस बिधाता, जेहि देखब दुहिता मुख माता ।
पूछेसि नैन देखे तैं हही, के रे चाह सुनि आयेस कहहीं ।
मालिनि कहा चाह सुनि रानी, नैन जो देखेउँ कहौं बखानी ।
पंछी रूप तन मासु न मांसा, चीन्ही मोहिं तौ रायेन्ह पासा ।

आपन नाउ कहेउँ जब, तब लागी कंठ धाइ ।
हित जन कहं दहु का कही, सतुरौ देखि छोहाइ ।।

राज कुंअर मधुमालती रानी, औ एक संग कुंअर सुरग्यानी ।
भागिवंत अति कुल निरमला, सोमबंस सूरज की कला ।
औ जत सँग परिजन आहा, अरथ दरब बहु बरनौं काहा ।
दोसर देवस भौ मोर बासू, आपुन मोहिं पठौ तुअ पासु ।
कहेसि जननी से कहु जाई, डाइनि पुनि जग धीअ न खाई ।

अग्या दीन्ह तौ आयेउ, उठि चलहु तजहु बिखाद ।
देखु आइ गति ताहि की, हतेहु जो बिनु अपराध ।

सुनत बात रानी उठि धाई, पाँव चलि मालिनि घर आई ।
औ पाछे पुनि बिक्रम राऊ, राये उठा लागेउ दुइ पाऊ ।
राजा देखि कुंअर अगुसारा, आदर सौं आगे पगु धारा ।
पाछे जो रूपमंजरी चलि आई, जिन्ह जिउ ते काया बेगराई ।
प्रान गये जो देखी कया, छाया रही जीउ उड़ि गया ।

रोवत वोहि के सब रोवा, देखि उठे जो छोह ।
कुँअर नैन गहबरि आये, रूपमंजरी के मोह ॥

कहा कुँअर जनि रोवहु माता, स्रवन सुनहु कहौं जो बाता ।
पंछी एक मैं पकरन पाई, बोलत चित्र बिचित्र सुहाई ।

रही औग दिन तीनि न बोली, बहुरि कहेसि सबै सुख खोली।
कहे मोहिं मधुमालती नाऊँ, बिक्रमराय पिता जग राऊ।
मातहिं नाम रूपमंजरी, कठिन हिरदै निरदै धरी।

और सबै दुख आपन, कहा दुख सब रोइ।
सुनत बात सब वोहि कै, गई सुधि मम खोइ॥

सुनि दुख वोही उपजी दाया, छांड़ा लोग कुटुंब कै माया।
कहा न कछु चित चिंता करहू, करउं सोइ जासौं उधरहू।
उटवा धरम पंथ चढ़ि सोई, तुअ उधार जाहि ते होई।
छाँड़ा राजपाट सब चाऊ, उटवा दैय लागि बसाऊ।
बाचा बांधि पिंजरा सिर धरा, निसरि राजपाट परिहरा।

पुनि रानी के आगे, पिंजरा धरा कुमार।
देखि डंफोरि जो रोई, कोखि अग्नि कै झार॥

तौ पिंजरा उर लावा धाई, देखी दुहित न रही रोवाई।
खन खन नैर निरखै बारी, नैन नीर ना रही पनारी।
सखी कहा तजु रानि उदासा, करहु हरख मन पूजी आसा।
हती जौ दुख के दही निरासी, सूर उदै भा कौंल बिगासी।
दुख जो अति तनु तजि भाजा, सुख मजूर सिखर तजि गाजा।

घर घर नग्र बधावा, आनंदित परिवार।
पुनि मधुमालती नौ कै, आइ भैउ औतार॥

घर घर पुर पुर बात जनाई, गई हुती मधुमालती पाई।
हरखवंत सब नग्र उछाहा, पर आपन जहाँ लगु आहा।
नग्र जो रहा सबै दुख बौरा, जस बसंत ब्रिंदाबन मौला।
रानी कुंअर पाँव सिर लावै, चरन रेनु जो सीस चढ़ावै।
कहै पूत पुरखारथ तोरे, निसरत रहा जीउ घट मोरे।

बहुरि कुंअर के रानी, सहित सबै समुदाइ।
तजि मालिनि की बारी, राजा नग्र लै आइ॥

हरखित सबै कुटुंब परिवारा, जानहु आज औतरी बारा।
घसि चंदन मंदिल लिपावा, रात पटोर जे सबै छपावा।

आनि अनूप डंसावन डासे, सुरंग सोहाव सुबासित बासे।
कुंअर पाट बैसावा आनी, अंग न समाइ देखि जो रानी।
पुनि मधुमालती राजकुमारी, रानी आनि आगु बैसारी।

रूपमंजरी पढ़ि छिरका, मधुमालती मुख नीर।
पहिल रूप भौ मधुमालती, परिहरि पंखि सरीर॥

मधुमालती पंछी ते आदमी भई खंड

जब उघरे पंखी सौ बारा, लै दरपन ते बदन निहारा।
पहिल रूप जो आपन पावा, हाथ जोरि हरि के सिर नावा।
तब लै सखिन्ह तुरंत नहवाई, बस्तर अनूप आनि पहिराई।
सब अभरन पहिरावा आनी, अंग न समाइ देखि जो रानी।
घरी घरी सिर पानी वारौ, औ गहि गहि अंकम सारौ।

पुनि राजा जो रानी, दुहुं मत कीन्ह बिचारि।
ताराचंद कुंअर कहँ, दीजिअ राजकुमारि।

पुनि राजा सब कुटुंब हंकारे, एक मंत्र सब मते बिचारे।
सबन्ह कहा धो बैस जौ होई, पिता ग्रिह भल बोल न कोई।
दुहिता जौ संजोग भै आवै, मात पिता घर सोभा न पावै।
नासैं बहु धो कुल के नासे, घर धी भली न जम के बासे।
आठ बरिस लहि दुहिता बारी, नवएँ रहे पिता कहँ गारी।

सब गुन कुंअर सपूरन, औ कुलीन कुल केर।
एहि ते करिअ सगाई, तुरत न लाई बेर॥

कुंअर निकट आई जो रानी, कहा बात जो चित हुत ठानी।
कहेसि मोहि भौ कुल की आरी, आफौं तुह मधुमालती बारी।
येह सुनि कुंअर कहा सुनु माता, बाचा मोहिं तोहिं बीच बिधाता।
बाचा बहिनि मोरि दुहिता तोरी, जस जननी वोहि कै तस मोरी।
सुपुरुस बाचा प्रान संग जाई, जात जन्म तौ रहत रहाई।

जौ मैं बाचा किअ तोहिं से, मोहिं प्रतिपारै सोइ।
जौ एहि मिलै मनोहर, तब हम के सुख होय॥

माता सौं किछु कर उपचारा, बहुरि मिलै एहि पेम पिआरा।
देखा दुख अति जेहि की ताईं, ढूंढ़ा बहुत बिकट बन ठाईं।

जगत फिरी जाको मदमाती, वोह जो मिलै मोरे मन सांती।
अथा कै सब परिजन राये, राजकुंअर कहँ ढूँढ़न जाये।
पुरखन्ह ते बचन जो आहे, जौ चित मिलै जाहि जौ चाहे।

माता सौ कछु उटवहु, कुंअर मिलै जेहि भांति।
इन्ह दुहु तपत बुझाई, होखै मम जिव सांति॥

ताराचंद उतर सुनि नारी, आदि अंत लगि कहा बिचारी।
जा दिन चितबिस्राव क बारी, तुह जे दीन्ह दुनौ कंठ सारी।
ता दिन ते हम दूनौ प्रानी, दसौ दिसा आपन जिउ जानी।
रिस न कीन्ह मनै तीवाना, बुधि खोवा परि गौ ग्याना।
देखि न गा जो दुख भा भारी, वोह घर गौ येह इहाँ अंडारी।

बासर रैनि निहारै, लाइस नैन अकास।
सौरि उन्हारि समस्त निसि, रोवै परी निरास॥

सब दुख कुंअर परा जो आई, कहौं तौ सुनि पाथर बेगराई।
अपने करम कुंअर दुख पावा, अचक जानु बिधि टक्कर खावा।
मो सौं कछु कीन्हा निरमाई, जौ न करैं इन्ह कलि मो कोई।
हाथहु ते जो रतन अँडाई, ढूंढ़त बहुरि कहाँ सो पाई।
अब पेमा कहं काहि पठावौं, वोहि की खोज मकु कतहूँ पावौं।

ताराचंद कुंअर जो बोला, तुरत पठावहु काहि।
मकु वोह बिरह बिभूता, मिलि जा हो निरबाहि॥

तब रानी बारी हँकराये, सुबुधी ताकी जना दुराये।
समाचार जत इहां क अहा, सो सब लिखि कागद पर कहा।
पछी भौ जौनी बिधि बारा, फिरी मनोहर लगि संसारा।
जौ जिमि ताराचंद बझाई, औ संग नग्र महारस आई।
तेहि पाछे कुंअर की वोरी, मिलै तो ब्याही राजकुमारी।

जौ किछु बात इहाँ की, सो सब लिखा बिचारि।
औ पेमा को दै सहिदानी, तुरत पठावा बारि॥

मधुमालती का बारहमासा खंड

पुनि मधुमालती माता की चोरी, बारिन्ह सौं बिनवै कर जोरी।
पेमा सौं अस कहा बुझाई, मोरे हिये आगि तोरि लाई।
जगत फिरी सखी पिउ लागी, पै न बुझानी हीवर आगी।
मकु कतहूँ तुअ खोज कुमारी, मिलै तो मिलै जोग मम बारी।
पाछिल दुख जो आपन कहा, जत दुख कुंअर बिरह ते सहा।

पंछी रूप बरिस दिन, फिरी कुंअर की आरि।
सो सब तोसौं हे सखी, एक एक कहौं उघारि॥

सावन घटा जो घन घहरानी, सौंरि नेह चखु अँगवा पानी।
अगम दुख दिन जात न काढ़े, लोयेन गगन जमुन भै बाढ़े।
रकत आँसु धर परे जो टूटी, सावन भये ते बिरह बिहूटी।
सेज रौन जे पेम उजाहा, धन ताके जन जीवन लाहा।
मैं पिक रूप फिरी सब बारी, नैन रकत तन बिरहे जारी।

सावन घटा तरंग जल, दामिनि छया अनंत।
कठिन प्रान जो घट रहत, सखि हे बिछुरे कंत॥

भादौं भर्म भयावन राती, बिरह दौन मोहिं सेज संघाती।
सित्रमघा बरिसो झंकझोरी, पेम सलिल दुइ लोयेन बोरी।
आठौं भाव मदन के जागे, सातौं सर्ग वोनै के लागे।
चहुँ दिस घुमरि घोर घहराने, मैं निजु प्रान गौन कै जाने।
भादौं निसि जेहि पीउ न पासा, सखि तेहि जीवन कौन आसा।

मैं अरंन बन एकसरि, बिरह अधिक तन पीर।
निलज प्रान अति पापी, तजत नाहिं जो सरीर॥

नौ रितु परब कुंआर जनावा, सबै संदेसा सुमरि सुनावा।
सरद रितू ससि सीत अकासा, सबको परब मोहिं बन बासा।

निसुहिं निसि सार अमोले, सुरंग आइ संसार अमोले।
दरसु अगस्ति घटा जो पानी, औ अथाह लहरी अतिबानी।
औ अपरब पाख परब उजाहा, तरुनी जगत रितु माने लाहा।

सखी हे घट मों बिरह दुख, बकति न आवे मुख।
औ तापर लोयेन चुवे, लिखे न पावे दुख॥

कातिक सरद सताई बारा, अमी बुंद बरिसे बिख धारा।
बिगसहिं कौंल भाति ते बारा, जनि कुमुदिनी ससि उजिआरा।
सरद रैनि तेहि सीतल भावे, जेहि प्रीतम कंठ लागि बिहावे।
मोहिं तन आगि बिरह परजारा, सरद चाँद मोहिं सेज अंगारा।
ते बेलसहि येह देवस अमोले, जेहि सुख सेज रौन मीठ बोले।

सरद रैनि तेहि सीतल, जेहि पिउ कंठ नेवास।
सब के परब देवारी, मोहिं सखी बनबास॥

अगहन भरि जोबन जग सीऊ, बहु पावक हित कांपै जीऊ।
सुख दिन भांति घटत जो जाई, दुख जो निसि तिल तिल अधिकाई।
औ तापर जे जुग सम भारी, मोहि बनबास बाजु तुह बारी।
कठिन पीर जाने येह सोई, पेम बिछोह परा जेहि होई॥
येह बड़ि कुमति सखी जो भई, पिउ बिछोह दुख मरि किन गई।

यह कलंक सखि मोके, दिआ जो पापी प्रान।
जा दिन प्रीतम बिछुरे, सुनत न निसरु अपान॥

पूस रैनि अति दूभर भारी, मैं अबला नहिं जाइ संभारी।
किमि निरबहै जुबति की जाती, पहरहिं पहर चारि जुग राती॥
सब चित चाउ जो प्रीतम केरा, मैं अरंन बन ब्रिख बसेरा।
आइ पूस रितु बेलसे नाहा, धन जोबन दुपहरि की छाँहा।
जोबन तुरै जात दौराये, बहुरि न फिरि आये पछताये।

भाग फिरा जौ हे सखी, तौ मुख फेरा नाँह।
नातरि का मोहिं परिहरै, इस भरि जोबन माँह॥

दूभर माघ सखी सुन बाता, पिउ बिदेस जो बिरह संघाता।
किमि निरबहै दूभर सज्वाला, पिउ न सेज जे दूभर बाला।

किमि कै दुसह माघ मधु काढ़े, बिरह देवस जो तिल तिल बाढै।
बिरह डार पर बैसी बाला, रैनि गँवावै बरिसे सिर पाला।
माघ रैनि जो पिउ बिनु जाहीं, मरना भला न जिवना चाही।

सुख सखि पीउ संग गा, दुख जे रहा मोहिं पासु।
तापर काँती बिरह के, खन हाड़ खन मांसु॥

फागुन सखी बिपति सुनु मोरी, बिरह आगि जरि भौ जे होरी।
तरुअर पात कर रहा न नाऊ, जानेहु जरे बिरह के दाऊ।
भा पतझार जगत जनु बारी, झाँखरि भई सबै फुलवारी।
भा पंखी सब बन बैरागी, देखि ढाक सिर लागी आगी।
जगत माह अस बिछ न होई, केहि डार मैं लागि न रोई।

सखी हे अजहुँ न पिउ मिला, मुई बिसूरि बिसूरि।
जोबन था मोहिं लुहलुहा, झंख भई ते झूरि॥

चैत करह निसरे बनबारी, बनसपती पहिरी नौ सारी।
चहुँदिस भै मधुकर गुंजारा, पखुरी डार फूल अनुसारा।
फागुन ने जो तरु पतझारे, ते सभ भये चैत हरिआरे।
मोहि पतझार भौ बिनु साईं, सो न सखी मौला अँबराई।
कुसुम सीस डारन्ह ते काढ़े, तरुवर नौ साखा भै बाढ़े।

दुख दे गये जो पीतम, जननि दीन्ह बनवास।
और पिआ तौ भौ तपा, कै मम सिर प्रगास॥

सुन बैसाख सखि दूभर भारी, बन हरिअर मोहिं तन दौ जारी।
जेहि सुख सेज सखी है कंतू, तेहि अनंद बैसाख बसंतू।
पहिरि पुहुप जो रचै पिआरी, मैं बन डार डार गीव सारी।
बिरहा पलुहि पलुहि जिव दाहै, किमि कै मधु बैसाख निरबाहै।
बरन बरन निसरे तरु पाता, कोइ पीत कोइ हरिअर राता।

मोर जोबन फर गतसुन सखि, बाजु पिआरे नाह।
फूली धरती झरि परी, जेउ मालती बन माह॥

जेठ जीभ सखि पिउ पिउ जपा, सबिता सहस तेज भै जपा।
बिरहा गुपुत हिये दौ लावै, प्रगटि आगि रचि सिर बरिसावै।

गुपुत बिरह प्रगट रबि दहई, किमि दहु दग्धि राति निरबहई ।
जेठ सखी मोहिं निस दिन दहना, सीतल सेज सांइ जेंहि लहना ।
खिन बिस्राउ लीन्ह जहँ बारा, बिरह आगि तहँ उठै दँवारा ।

एक बिवोग दुसरे बनवासा, तिसरे कोइ न साथ ।
चौथे रूप बिहूनी, मरौं तो म्रितु न हाथ ॥

दूभर सखी असाढ़ जनावा, चंद न चमकि गगन देखरावा ।
कुंजल मेघ कीन्ह द्रिग फेरा, दामिनि जनु आंकुस तिन केरा ।
भई जोर झींगुर झनकारा, डाढ़ि उठी डाभ हरिआरा ।
सब बिरही कुंआर अनुसारा, पीअहीन पेम अंकुरा बारा ।
रंचि रंचि छिरके मंदिल अवासा, बिरख पखेरू कीन्ह नेवासा ।

मोहिं सखी गौ दुख महँ, बारह मास असाढ़ ।
अब किछु करु उपकार देअ लगि, जे मोर हो निस्तार ॥

तोरे खोज कुंअर जौ होई, एक एक कहेहु मोर दुख रोई ।
औ अस कहेहु नाह तुह लागी, नौ खंड फिरी आपन जिउ त्यागी ।
काहूँ खोज न पायेउं तोरा, निलज जीउ घट तजै न मोरा ।
जैसे बिरह रूप सौं राता, तू पै तैस बिरह सौं सांता ।
काया ना पहुँचै तुह ताईं, जीवन सुदिन तुह संग गोसाईं ।

जब सौं मैं तुह बिछुरी, मुई बिसूरि बिसूरि ।
जिउ तोहरे चरनन्ह तर, जौं सरीर हुती दूर ॥

जब सौं तोर प्रीति जिअ गही, सब सौं मैं परचै छांडही ।
तैसे मोर जिउ तुह पाहा, अपनो जिउ देखु मोहिं नाहा ।
पै येह पेम पीर हिय जेती, काढ़ि लेउ मम हीवर सेती ।
पेम समुंद बूडिउँ सुन बाता, तोहि बिन कोइ न धीर क दाता ।
चोरी नेह तुह लायेउँ साईं, प्रगट जीउ लिये बरिआईं ।

तन कोइला लोयेन रकत, जीभ ररै पिउ पीउ ।
जगत फिरिउँ पिउ क रूप होइ, हाथ लिये येह जीउ ॥

तब सौं नैन समानेहु आई, रोवत मोहिं निसि बासर जाई ।
अचरिज इहै जो संतत रोई, पै न गयेहु तुह चखु सौं धोई ।

चिंता जेती अहै चित माँहा, तुह चिंता सब बिसरी नाहा।
अब चिंता चित सौं भागा, जब सौं तुह चिंता चित जागा।
तेहि मारग बल्लभु पगु ढारहु, सोइ पंथ मोहिं रेनु के डारहु।

परग परग पै येह जिउ, कहहु तौ आरति देउं।
जौ बिधि घट मो यह जिउ सिरा, तौ मैं काह करेउं॥

राई रेनु मकु तुह पिउ ताईं, मकु लागै तुह पीर पराई।
पेम बिछोह देहु जनि नाहा, करहु जो तुह भावैं चित माहा।
जौ जिउ ते हू निसरै जिउ मोरा, जौ जिउ हुते दुख जाइ न तोरा।
जौ सौ हाथ मारहु पिय मोहीं, से जिउ देउं एक का तोहीं।
जौ कलि जीउ दिये निज मोरे, आजु देउं किन तोरे निहोरे।

तू हम जानहु बिछुरे, घटै बिराना नेहु।
जेंउ जेंउ बाढ़ै देवहरा, तेंउ तेंउ अधिक सनेहु॥

लिखि आफा दुख जहँ लगु अहा, और बहुत मुख आखर कहा।
पाँय लागि मधु बिनती कीन्हा, पुनि आयेस बारी कहं दीन्हा।
बारी देवस चारि मों गये, पेमा बार ठाढ़ि भै गये।
पेमहि गै प्रतिहार जनावा, मधुमालती कर बारी आवा।
पुनि मधुमालती राजकुमारी, उठि चलि आई जहाँ होती बारी।

आगै भै तब बारिन्ह, पेमहिं किया जोहार।
पुनि पाती दै मुख आखर, पेमा जो कस बेवहार॥

पाती पढ़त पेमा अति रोई, कोतेसि सेत स्याम अरु धोई।
बहुरि कहै बारिन्ह सौं बारा, जेहि दिन हुती कुंअर अंडारा।
तेहि दिन हुते मैं खोज न पाये, दहु है जिअत कि मारि अंडाये।
मधुमालती कोख की जाई, तेहि देखे मोंहि मोह न आई।
जे न किआ दुहिता पर छोहू, पर जिउ बधत ताहि कत मोहू।

जै तेहि दिन होइहैं जिउ उधर, वोहि सौं राजकुमार।
निस्चै आहिहि मोहि पहँ, जौ न परा जमधार॥

उलटे का मोहिं पूछि पठायेन्हि, उन्ह पूछौ गै कहां अँडायेन्हि।
जो रे जिअत होइहै जग माहीं, रहो न बिन आये मोहिं पाहीं।

रोवै कुंअर सांस उर काढ़ी, बात कहै बारिन्ह सौं ठाढ़ी।
वोइसहिं आइ सखी एक धाई, कहेसि कुंअरि आवा तोर भाई।
जोगी एक है कुंअर उन्हारी, अब बाहर भै चीन्हसि बारी।

मैं उन्हारि कुंअर एक देखा, धाई आइ तुअ पास।
निस्चै आइहि मनोहर, किछु रे भेद उदास॥

कुंअर नाम सुनतै उठि धाई, तुरित चलि तब बाहर आई।
पुनि जौ डीठ कुंअर पर परी, हीवर मोह आगि परजरी।
पेमा धाइ कुंअर पाँ लागी, छाती परी पेम की आगी।
दया चित तेहि देखत होई, परिछाहीं बिनु साथ न कोई।
मासु न रहा कया सखि रती, लागी जाइ हाड़ दुख काँती।

दुख दाधे बिरहे जरा, घट मों अहै मिलन अधार।
पेम बिछोह होइ जनि, काहु जन्म येहि संसार॥

सुनते राजकुंअर के आवा, बाला चितबिस्राउ बधावा।
पेमा सुनि कुंअर सौं कहई, आगे किये मंदिल लै आई।
कहेसि बीर अब काढ़हु कंथा सिध पूरी तुह गोरख पंथा।
सुख अगुसारि आसरौ कीन्हा, दुख के उठि तिल अंजुरी कीन्हा।
बीती तुह दुख निसि अंध्यारी, अब दुख अंतर सुख उजियारी।

संतरह पेम अमोघ दधि, जिअ अस गंथ अहेरि।
पार कुसल सौं उतरहु, सिधि साहस की चेरि॥

पुनि जो समाचार जत अहा, पेमैं राजकुंअर सो कहा।
औ मधुमालती लिखि पठावा, सो सब कुंअरहिं बात सुनावा।
पुनि कागद मसि मांगेउ बारा, पाती लगन लिखे अनुसारा।
प्रथम उतपति करता की बाता, औ पुनि राजकुंअर कुसलाता।
और बात नहिं कहा बिचारी, देखि जात हहि कहिहहिं बारी।

मैं का लिखौं कौन बिधि, कुंअर आव मन माँह।
मासा मासु न तन रहा, रती रकत ना देह॥

मैं जाना तेहि दिन तू मारा, कै परबत कै समुंद अंडारा।
मोहिं न कुंअर केर हुती आसा, बिधि लै आउ आजु मोहिं पासा।

मैं वोहि जिअत देखु निध पाई, येहि आँतर तुअ पाती आई।
अगिन माँह जस जरै परानी, अनचीते जनु बरिसै पानी।
तस दुख भौ कुंअर एहि बारी, तू का जानहि हे बरनारी।

जौ निस्चै जिउ माहे, तै उटवा येह काज।
आइ निकट भै उतरहु, सै अपने जो साज॥

जौ हम निजु जानौ सत भाऊ, एहि दिस पुनि करु नेवटाऊ।
तौ निस्चै जे करिहौ काजा, निकट आइ के उतरहु राजा।
येहि कलि माता कालिका साजू, सो सयान जो करि ले आजू।
पेमै पाती उतर लिखि दीन्हा, औ मधुमालती के कछु चीन्हा।
बहुरि कुंअर दुख बात सवाई, मधुमालती के लिखि पठाई।

कहा कुंअर बारी से, पाँव लागि करजोरि।
दिअहु गुपुत मधुमालती, लै दुख पाती मोरि॥

प्रथमहिं सुमिरौं नाम गोसाईं, जो भरि पूरि रहा सब ठाईं।
दूजे नाम लेउं तेहि केरा, उतरब पार लागि जेहि बेरा।
अब प्रीतम सुनु बिनती मोरी, जिउ घट रहा सो लीन्ह अछोरी।
काह करी जौ जिउ पर आवसि, तौ रे मोहिं भले देखै पावसि।
मैं तो ऐस अही जस दही, सो प्रतिपारु बचन जे कही।

मति भावंता बिछुरै, बरु जिउ तजै सरीर।
कोटि भ्रितु न पूजे, खन एक पेम की पीर॥

रूप क सिस्टि जहाँ लगु आई, मैं सब अपने जीउ देखाई।
सब परिहरि मैं तोके मन लावा, सबै सिस्टि तोहिं ऊपर पावा।
अस मोर लिपित भा जिव तोहीं, सुमिरन तोर बिसरिगा मोहीं।
अस भौ तोहिं चित रूप ध्यानो, घट मों संसे बात भुलानी।
तोर जीउ तोहि सेती बारा, का जानहु पर पीर की सारा।

तोर जीउ तोहिं सेती, का जानहि पर दुख।
कठिन पीर तिन्ह पै जाना, जो देखा तोर मुख॥

अचल अडोल है जग जेती, बर कामिनि जे पाथर सेती।
तोर जीउ पाथर सम बाला, पेम नेवास संतत किमि हाला।

चित धरि छोहु न होहु दुखारी, यह कठिन मो कुंअर रसारी।
नरिअर तैस प्रीति करु बाला, ऊपर करकस हिये रसाला।
जौ तोर दुख साथी है मोरा, तौ रे सहा कठिन दुख तोरा।

सपने जौ जिउ पावौं, बार तोहारे ठांउ।
जागे बहुरि न आवै, समुझि कया बिस्रांउ॥

जौ दरपन लै देखसि बारी, अपने दुख भै जाहु दुखारी।
आपु देखि ब्यापै तन पीरा, जरै बदन के आगि सरीरा।
अपने वोखध नाहिं बिकारा, अपने बिरह उठै तन झारा।
अपने फाँस परे गीव आई, आपु अपान देखि मुरछाई।
जौ आपन दुख देखहु बारी, तौ जानहु दुख बात परारी।

बदन देखाउ और के, सो दरपन लै देखु।
दहु तोर दुख के सहे, सब जग देखु बिसेख।

बारी पाती उतर लिखि पावा, हरखित भै सुख चाह जनावा।
सुनत मनोहर के कुसलाई, भई महारस नग्र बधाई।
ताराचंद कुंअर हंकराई, रानिहिं पाती बाँचि सुनाई।
पाती पढ़ि जो कुंअर कहा, बिधि सो कीन्हां जो चित रहा।
करि बेगि चलैं कै साजा, बिलंब न लाई कीजी काजा।

पाँच सबद धन बाजे, नेवता सब परिवार।
सुदिन साधि कीन्ह पयाना, बिक्रमराये भुआर॥

———

बिक्रम चले पेमा पास खंड

चले साजि दल बिक्रम राऊ, चहुँदिस परा निसाने वाऊ।
सबद निसान उठा अंदोरा, सेस सहस फन नांक सँकोरा।
सैंदर भौ कुंअर असवारा, आगे घोर धरे थनवारा।
रानिन्ह के साजा चंडोला, चली अनंद करत रस केला।
जननी कोरा मधुमालती बैसो, जरित माह जो नायेक जैसी।

चला सबै दर परिगह, परजा पौनि सवाइ।
येह जो दल के खेह ते, सूर्ज गये छपाइ॥

चलत देवस दस बात खुटानी, चितबिस्राउ आइ तुलानी।
ऊँचा दिआ तानि सरवाना, बाजा सबद उतंग निसाना।
किआ खरे सब महल जे अहे, कथा पढ़त जो मैन सराहे।
पुनि राजै सब लोग बोलावा, बड्डे राये सबै हँकरावा।
ताराचंद माझ बैसारा, सब मिल के घर करै बिचारा।

पुनि एक मत भै मंत्रिन्ह, कहा राय सौं जाइ।
चित्रसेनि औ पेमा, दुनहु पठावा राइ॥

राजै इहै मता जो भावा, चित्रसेनि के जन दौरावा।
गुपुत लिखा मधुमालति पाती, पेमा के बहु भांति बीनती।
औ जौ रूपमंजरी केरी, गोचर बिनती लिखि बहुतेरी।
पेमा कालि इहाँ तोहिं चाहौं, आवहु बेगि काज निरबाहौ।
पाती लै तहँवा गौ बारी, पिता ग्रिह जहाँ राजकुमारी।

जाइ जनावहु पेमहिं, सीस नाइ प्रतिहार।
लिये बिक्रमराये की पाती, खरे बारि है बार॥

पूछा बात भाति बेवहारा, पुनि बारी जो कीन्ह जोहारा।
पाती पुनि कर बारी दीन्हा, मुख सौं बात कहै जो लीन्हा।

तब जो कुंअर मनोहर राये, पेमै पढ़ि सुख चाह सुनाये।
तब पेमै जो पितहिं सुनावा, बिक्रमराये क धावन आवा।
जौ हम तुह पठवा एक राई, आपु निकट भै उतरे आई।

चित्रसेनि जो पाग्वरे, सुनत बिक्रम केर हंकार।
पेमा पुनि सब सखी संग, भै पालकी असवार॥

चित्रसेनि कै चले पयाना, औ संग सहस एक प्रधाना।
मंत्री महथा अमनैक चले, पंडित गनिक चले जो भले।
औ पेमा संग सखी सब चलीं, अगनित जो जोबन बली।
चित्रसेनि जबहिं चलि आऊ, गै रानिहिं प्रतिहार जनाऊ।
पुनि बिक्रम आउ दुआरा, भौ दूनहु त्रिप हेतु अँकवारा।

औ निकट पर बिक्रम, राजहिं दीन्ह नेवास।
पेमा जाइ मंदिल पैठी, जहाँ सबै रनिवास॥

औ राजै सब परिजन राये, पंडित गनिक गुनी जो आये।
तहाँ जो ताराचंद बोलाऊ, आनि सभा ऊपर बैसाऊ।
चित्रसेनि बिक्रम सौं कहा, पंडित कहा सुनहु हम पँहा।
जौ मति कै करी कछु काजा, निस्चै सिध्र काज तेहि राजा।
तौ हरिगन पांडे हंकराये, कहा देखि गनि रासि मेराये।

सभा जो सभै बिचारे, लग्न महूरत वार।
जन्म जन्म निरबाहौ, पेम प्रीति बेवहार॥

गनिकन्ह गरह कुंडली कीन्हा, बारह रासि ताहि में दीन्हा।
औ जो नौ ग्रह है जहाँ, लिखि बिचारि पंडितन्ह कहा।
जन्म दसा दुओ बिध सारी, अन्तर दसा जो गहा बिचारी।
सुभ महूत्र गनि कै दिन साधा, बार नछत्र बुध अनुराधा।
नौमी जेठ पाख उजिआरा, सुभ लग्न गनिकन्ह बिचारा।

राज सोहाग जो लछमी, सदा सुख निरबाहु।
गनि गुनि गनिक बिचारा, मधुमालती क ब्याहु॥

अस्वनि लग्न पंडितन्ह धरी, सुभ बिचार महूरत घरी।
पुनि जो राये महल मो आवा, रानी सौं कहि बात जनावा।

९

पुनि रानी कहु मंगलचारा, हरख निसान बजावा बारा।
पेमा संग सखी जो आई, ते सब सुरंग चीर पहिराई।
पुनि कह चित्रसेनि ते राजा, साजहु गै अपने दिस साजा।

बहु आदर से बिक्रम, चित्रसेनि बहुराउ।
रानी पुनि पेमा के समदी, बहु गोचर गिव लाउ॥

औ जेहि बार लग्न ठहराई, पेमा सौं सब कहा बुझाई।
चढ़ि पालक जे गौनी बाला, चित्रसेनि संग पिता भुआरा।
नग्र बजावत पैसे आई, रचा कुंअर के ब्याह बधाई।
राजा अग्या महल सवारी, कुसंभी पटोर दुकान वोहारी।
कंकन राजकुंअर के बांधा, औ परिजन जे राखा रांधा।

कुंकुह मेरै सुगंध जो, अबटन लावहिं गात।
सात देवस के लग्न में, कुंअरहिं बीतै जुग सात॥

ब्याह खंड

बुधवार जब नौमी आई, चित्रसेनि जो कटक बोलाई।
चलत सुभ सब आगे पावा, काग म्रिगा दाहिन देखरावा।
नारि आउ बालक उर लिये, बाभन तिलक द्वादस किये।
बायें खरहा दहिने पैसारा, महरि सीस लै दही पुकारा।
मंछ उछरि पानी देखरावै, कलस भरे आगे लै आवै।

खेमकरी जो लौआ, आगे भै दरसाव।
सिध होइ सब काजहिं, ऐस सगुन जे पाव॥

सैना साजी चली बराता, बाजन बाजा उठा अघाता।
बहु कौतुक किअ कागद केरा, तरुअरि नांव कोटि एक घेरा।
नावें बहुत कुसुंभी मढ़ी, तापर आवै पत्र चढ़ी।
किआ ब्रिन्दाबन अति सोहावा, औ कौतुक जो गनै न आवा।
बहुत ब्रिख किये फल फरे, ठाँव ठाँव अड़ा किआ खरे।

चली छतीसौ पोनि कुंअर संग, चित्र सेनि कुमार।
जोजन सात चहुँ दिस, भा अंजोर भिनुसार॥

महताब चरखी जो हवाई, बहु दोअठी जो गनै न जाई।
अंधकाल रजनी के नासा, अग्नि बान उजिआर अकासा।
अहनिसि दूनो लखा न जाई, कोइ बासर कोइ रैनि कहाई।
ताजी चढ़े भाट बहु चले, बचन सुभ मुख बोलत भले।
कंठहार मुकता मनि माला, कुंअर चढ़ि सुखासन चला।

चित्रसेनि लै चढ़े साजि दल, राजकुंआर बरात।
धन साहस धन सिध मनोहर, धन जननी धन तात॥

मधुरे सब रनिवास सँवारी, कुंअर चली ब्याहैं नारी।
पेमा संग सखीं सब केसीं, साठि सखी साठिउ एक बैसीं।

कोइ सुखासन कोइ चंडोला. कोइ बैस कोउ जोबन भोला।
जोबन उतम करैं रस केली, उठत कोपल जो बन बेली।
कौंल बदनि नौ तन बारी, नैन कटाछ जो हनै कटारी।

कोइ उनमद भरि जोबन, कोई बैस अभोल।
पाँच एकादसी कीन्हे, हीवर रतन अमोल॥

सांझ होत गौगुधरी बारा, आइ बरात राज दरबारा।
जनवासा जहँ राये सँवारा, तहवाँ आनि बरात उतारा।
मांड़व ऊँचा ञ्रिप किआ खरे, तेहि तर पाट पटोरा परे।
आले चोवा पात मंगाये, बंदनवार के चहुँ दिस लाये।
सगुन कलस ले दुइ जनी, आईं गावत नखसिख बनी।

पुनि नेवछावरि आरती, सासु जो दीन्ह पठाइ।
बारि कुँअर सिर पेमै, चहुँ दिसि दे छतराइ॥

पुनि बिक्रम दुइ बिप्र पठाये, लै कुंअरहि सुखसाला लाये।
कुंअर आनि मांझ बैसारा, बांए आनि ठाढ़ किहु बारा।
बेद भनैं बाभन बेदवासी, होम करैं आहुति चौरासी।
कुंअरहि लाइ पढ़ै बरनारी, जन्म गांठि दुहुँ आँचर सारी।
कुंअरि कुंअर के कंठ मेला हारा कुंअर हार मधु गीवा सारा।

पुनि दै भावरि पानि पढ़ि कै, कर कामिनि के राखि।
कन्यादान कीन्ह ञ्रिपबिक्रम, देव पित्र धै साखि॥

भा बिआह सांते दुइ हिया, धनि बिधना अस देवस किया।
बहुतै दुख बहुतै औसेरी, बिधना आस पुरी दुहु केरी।
धन धन पूर्ब करम जग जेही, अकसमात मिली जस हेरी।
लै उठाइ कुंअरहिं गौ तहाँ, सुरति सेन सिंघासन जहाँ।
बहुरि सखी बाला फुसिलाईं, सुरति सेन जो लै बैसाईं।

किछु आनंद मिलन कै, किछु भै हिये धरेइ।
प्रथम समागम बाल, दिस्टि न सौंह करेइ॥

कुंअर बाँह कामिनि गहि कहा, हिया सेरान जो रे दुख रहा।
अबहूं तज पाछिल निठुराई, परिहरि लाज लागु गीव धाई।

लाज छोडि कह रस सौं बैना, सौंह भये तब दुहुं के नैना।
अहे जो लोचन आस तिसाये, दुनहु पिआ रसरूप अघाये।
दग्धि दुनौ के हिये बोतानी, मिलन नाव जे तपत सिरानी।

नैन नैन ते लोभे, मन ते मन अरुझान।
दुइ हीवर जो एक भौ, औ भौ एक परान॥

सांते पिअत रूप चखु दोऊ, रबि ससि मिलि एक भौ दोऊ।
मुख मुख सैन सौंह ना करई, प्रथम समागम डर थरहरई।
कुंअर अधर अधरन्ह सौं जोरै, कुंअरि बिमुख भै भै मुख मोरै।
दीप भरम मुख फूकै बाला, अधिकौ करै रतन उजिआरा।
दुऔ कर ले लाजन्ह मुख झापै, अधर दसन के खंडित काँपै।

एक बोय परम पिआरी, औ भौ प्रीथि समंग।
तिसरे लाज व्यापेउ, पलकन्ह दुहुँ रति रंग॥

तौ बोलत भै सखी एक कहा, बाला किये कोक पढ़ि कहा।
चौंकी मधु सुनि बोल गत हँसी, पै बिनु लाज दुऔ बिच गँसी।
जा गुन लाज प्रगट रह खोवा, लाज करौ गुन हर गोवा।
यह उपखानि जानि मन हँसी, गारुर ससुर कुठाहर डँसी।
तब गज कुंभन्ह आकुंस परे, बिद्रुम अधर क्षीरा रस भरे।

जस जोबन औगाह देखिकै, ढाढस करै जो चित।
कनक कलस दुइ हीवर, लै जो लाज सरित॥

सुत पेम रस अंकम भरेऊ, रतन अबेध बेध जो परेऊ।
कंचुकि तरकि तरकि उर फाटी, बोधसिस मांग औ पाटी।
सेंदुर मिलिगा तिलक लिलारा, काजर नैन पीक रतनारा।
कंठहार गिवहार जे टूटे, दलिमल दलै देह सौं छूटे।
बहुरि फूटिगौ अंब्रित खानी, भौ सांती जो मालति रानी।

काम सकति डर जीतिये, कही एक न टार।
तब गै दुऔ साँति भौ, जब गगन ते छिटका धार॥

सुनत सैन सुख रैनि बिहानी, बिरह दगधि हिये बुतानी।
राजकुंअर उठि बाहर आवा, कै अस्नान मलै तनु लावा।

मलया लाइ फिरायेसि बागा, दीन्हा पुन्य जानि किछु त्यागा।
बाला पुनि सखिन्ह जगाई, निसरी जनु दुख समुद नहाई।
लै सब सखिन्ह सिंगार कराई, भूखन बस्तर आनि पहिराई।

पूछहिं सखी पीरम रस, रस रस लहरै लाइ।
कहु हम सौं रस बातें, रैनि कि सपत सूर कहाइ॥

पेमा पूछ दुऔं कर गही, कहु सो बात रैनि निरबही।
औ सब सखी पूछैं फुसलाई, कहहु प्रीतम किमि लाई।
लाजन्ह कहौ करहु मुख खोली, किमि पिअ सौं भौ प्रीति नवेली।
कुंअरि मांथ तरहुँड कै जोवै, कहै न बात लाज मुख गोवै।
तौ तौ सखी करै बहु आरी, कहहु न बात पेम रस बारी।

बहुति भांति फुसलवहिं, पूछैं कै कै आरि।
हम सौं गोइ सब बातैं, पुनि केहि कहेहु उघारि॥

पुनि बर नारि अमी रस खोला, सुनहु कहौं सब बात अमोला।
भेद न आपन दीजै काहू, बौरिहु का खति दै जो लाहू।
धरा गोवाइ पेम को सूरी, जनि कहि भेद चढ़ै जग सूरी।
देउं भेद आपन सब ताही, कहिहौं महल भेद लै काही।
फूटे कुंड भरै जो पानी, खिन खिन बुंद बुंद कै हानी।

लिखनी लकरी बन की, देखहु बोइ का कीन्ह।
जौ लगि माथ रहा धर ऊपर, भेद न काहू दीन्ह॥

दाएज खंड

ताराचंद महथ औ राजा, भोर होत तौ दाएज साजा।
पीठि बाहि पाखर सोलखानी, आये है सं सहस पलानी।
औ गज मैंमत सिंघ समाना, दाएज दीन्ह जगत सभ जाना।
अभरन सभ जरावन जरा, झाँपि सहस झापि कै धरा।
सोन रूप बहु लादि चलावा, मानिक मुकुता गनत न आवा।

कपरा नाउँ जहाँ लगि, जो मोहिं कहै न जाइ।
बसह सहस दस लादि कै, आगे दिआ चलाइ॥

चेरी सहस तौ संग चलाई, जेहि देखि परै चाँद मुरछाई।
औ संग भौ ते साठि सहेली, लरिकाईं संग साथ जो खेली।
बरियाती जत गोहने लागे, बागा सौ सौ तिन्ह सभ पाये।
भाजन सोने रूपे को दये, पाट पटंबर गनत न आये।
पालकी आठौं टूक जरावा, सुरंग पटोरे बीनि उचावा।

अग्र कपूर जो प्रमल, कुंकुम सादि जवादि।
बदाम छुहारा और चरौंजी, बसह सहस दिय लादि॥

दायेज सब जौ लादि चलावा, उठि कै कुंअर कुंअर पहँ आवा।
पूछै कोन महल तोर आई, हम सँग चलहु देखावहु जाई।
नैन धरौ दुइ पावन्ह लाई, चरन लेंउ दुइ नन चढ़ाई।
मैं आपन जिउ वोहि पर वारौं, चरन रेनु बरुनिन्ह सौं झारौं।
एइ लागि हम सहि दुख भारा, मैं अब करौं जीउ बलिहारा।

देखि रहेउ किछु नाहीं, जा आरति लै जाऊँ।
जिअ अति किंचित थोरा, आरति देत लजाउँ॥

यह सुनि ठाढ़ भये तौ बारा, कुंअरहिं लै आई जह तारा।
ताराचंद उठि भौ खरा, धाइ मनोहर पाँव लै परा।

जौ जौ ताराचंद उचावै, धाइ धाइ सिर भुइँ लै लावै।
कहै किहे तैं मोहिं लगि ऐसा, कलिजुग मो कोइ करै न ऐसा।
छांड़ेहु राजपाट मोहिं लागी, जरत सेराये होवर आगी।

तुइ सिर जिउ ले आये, परिहरि आपन राज।
जौ मैं जीउ करौ न आरती, तौ आवै केहि काज॥

बिनता एक करौं कर जोरी, पुरवहु कुंअरि आस तैं मोरी।
जौ लगि कुंअर की आयेस पावहिं, एकहिं ठाँव मैं दिन बहलावहिं।
बिधना रखे इहाँ जब नाईं, हम तुह दुनौ रहैं एक ठाईं।
सब कोइ इहाँ अहै संदेसा, हम दुनहू जन पै परदेसी।
जौ रावरि अग्या मैं पावौं, गै राजा सौं बात जनावौं।

ताराचंदहिं बात सुनि भई, संग मिलि दुनौ कुमार।
रहसत आये दुनौ जन, राजा बिक्रम के दरबार॥

कुंअरन्ह की आयेस सुनि बारा, सो आये चलि राजदुआरा।
तौ गै कुंअर बिनती औधारी, कहै राउ मन इछ्या तोहारी।
नग्र महारस चितबिस्राऊँ, घर तोहार अहै दुऔ ठाँऊँ।
मन मानै पुनि तोहरौ जहाँ, मिलि कै रहौ दुऔ जन तहाँ।
इहाँ नैन दुऔ तन जोती, उहाँ नैन सीप गज मोती।

तुह दुऔहू कर जिव जहँ मिलै, तहँ तुह संग रहाहु।
ई सभ राज पाट दुऔ कर, सुख सौं केलि कराहु॥

जौ राजा सौं अग्या पाई, दुऔ कुंअर बहुरे सिर नाई।
माता पिता सौं मिली बारी, चढ़ी चलन चंडोल कुमारी।
पाछे चला ते साठि सहेली, जन्म सघातिन्ह साथ जे खेली।
अगनित सखी जोबन बारी, सबै चलीं जो साथ कुमारी।
जोबनहू ते संग जो आईं, चित्रसेनि घर पंसुब जाई।

करुना मैं न बखान, समदति राजकुमारि।
दुऔ कुंअर जब चलिहैं, तब जो कहब संवारि॥

पैसि नग्र बरात जब आई, छतिसौं पौनि आरती लै आई।
घर घर बाजै नग्र बधावा, सुरस कंठ जो गायेन गावा।

बाहर नग्र पटोरन्ह राता, भीतर केरि कहौं का बाता।
मंदिल जहँ सुख सेन सँवारी, मधुमालती लै तहाँ उतारी।
सुखसाला भल महल उतारा, तहँ लै ताराचंद उतारा।

भीतर मधुमालती जो पेमा, दूनौ सुख बेलसाहिं।
बाहर ताराचंद मनोहर, दूनौ केलि कराहिं॥

अहेरा खंड

भोग भुगित जे प्रीति नवेली, दूनौ जन मानत रसकेली।
खाइ खेलि जो दिन बहलावै, रैनि नींद सुख सेज जे पावै।
निमिख न आपुस महँ बेगराहीं, संतति दुनौ एक संग रहाहीं।
कबहीं वोइ रे होड़ लगावहिं, कबहीं वोइ जिउ बहलावहिं।
पेमा जो मधुमालति बारी, भीतर दूनहूँ रची धमारी।

सदा दुनौ सुख बेलसैं, दुख न जानैं बात।
बाला सजि नौ जोबन, कै सिर ऊपर तात॥

दिन एक कुंअर पारधी राये, राजा हँकार सुनत उठि धाये।
कुंअर पारधी सौं अस कहा, इहाँ अहेर निअर कहुँ अहा।
कहा इहाँ सौं कोस अढ़ाई, अति अनेग सावज हैं राई।
झख म्रिग महिख बराहा, साबर लगुना रोझ जे आहा।
कहा कुंअर जन पाँच पठावहु, घात होइ तौ आइ जनावहु।

जैसे कालि पहर एक, मन आवहिं बहलाइ।
जाइ पारधी अस कहु, कालि न कोइ कहुँ जाइ॥

सब पारधी आये सबेरा, घात भये उठि चले अहेरा।
सुनत सबै अहेरिआ आये, सोनहा बाघ जे चित चलाये।
बागुर जाल कहारन्ह कांधे, धनुखवार चले सर सांधे।
हाकि कंदला सावज बाहे, अरु आगे जो धनुख उजाहे।
भीतर हाकन्ह कीन्ह करेरे, बाहर दीन्ह बागुर चहुँ फेरे।

पेड़ पेड़ गै धनुख लग, औ लावा बन आगि।
धनुखन्ह के सिर ऊपर, आये जन्तु सब भागि॥

सब धनुकार जे कांड बिसारा, मारे जन्तु जो भवैं बिकरारा।
कतहुँ गैंडा घाव बौराने, कतहुँ रोझ लोटै महुराने।

भवँ बघायेन्ह बिकरारा, परे महि खंड रही घुरघारा।
बहुत म्रिगा बघचीते मारे, सोनहा बहुत बराह पछारे।
बहुत जंतु जिअत लै आये, बहुत मुये माहुर महुराये।

पहर एक खेलि अहेर, सबै कटक घर आइ।
दुनौ कुंअर जल क्रीड़ा, लागे सरित नहाइ॥

कहहिं तेज अति है रबि केरा, अबहिं जबै घर सीतल बेरा।
जल क्रीड़ा जो रहे लोभाई, पेमा इहाँ कुंअरि पहँ आई।
कहा आजु कुंअर घर नाहीं, चलहु चित्रसारी झूलहिं जाहीं।
आजु मोर मन अस भा आई, झूलहिं गै जो पेम अघाई।
पुनि हम दाउँ कहाँ अस पाइब, बहुरि कि नैहर झूलै आइब।

पुनि मधुमालती रहसो, उठि गौनी लख राउ।
संग सखी सब धाईं, सुनि झूलन कर नाँउ॥

पहिले पेम चढ़ि पेंगे बारा, गावै सुरस कंठ झनकारा।
झूलत चिहुर काहु के छूटहिं, काहु के हार उरहिं जो टूटहिं।
उघरि सीस बहुतन्ह के जाहीं, बहुतन्ह उर आँचर बिहराहीं।
झूलहिं धरे पेम की डोरी, करो जो लाइ टूक दुइ जोरी।
झूलत दिस्टि मो आवै कैसी, जनु बेवान पर सुरहिनि बैसी।

नौ जोबन उर उपनत, बालापन के साधि।
झूलहिं सब लड़बावरी, कटि अंबर कसि बांधि॥

चौथ पहर सीतल भौ बेरा, भौ नितेज तेज रबि केरा।
ताजी साजि आनि थनवारा, दूनौं कुंअर भए असवारा।
अस दुहु तेज तोखार चलाये, राजा बार निमिखि मो आये।
कहाँ गईं दुऔ राजकुमारी, झूलन गईं दुऔ चित्रसारी।
सुनेन्हि राजकुंअर घर नाहीं, सूने मंदिल कहेन्हि कत जाहीं।

पुनि एक संग दुनौं जन, चलि आये चित्रसारि।
सखी साथ तहँ झूलै, बिक्रमराय कुमारि॥

तब दूनौ चलि आये बारा, उघरा देखेन्हि पौरि दुआरा।
धाइ मनोहर उतर दुआरी, काहु न देखा गौ चित्रसारी।

इहाँ न काहू वारों पावा, जान न कोउ कुंअर कब आवा।
वोइँ सब अपने रँग बौरानी, झूलहि गाइ गाइ पिक बानी।
झूलहिं सब जोबन मदमाती, आँचर उड़हिं न झांपहि छाती।

झूलहिं पेम डोरि कर गही, बीरी चमकहिं दांत।
जानहु सुरहिनि सरग सौं, आवहिं चढ़ी बेवान।

पाछू होत ताराचन्द राऊ, धरत पोरि भीतर दोउ पाऊ।
गं दिस्टि पेमा पर परी, पौघत आहि पेम बर खरी।
झूलत उर आँचर बिहराने, देखत कुंअर चित चेत हेराने।
परत दिस्टि जिउ लै गौ हरी, बिनु जिउ कया पुहमि खसि परी।
सैन जो अहैं उठत उर ऊभे, बरबस नैन कुंअर के चूभे।

जीव परबस भा धरती, परा अहै बिसंभार।
जस कोइ साँप डँस बिसंभर, बकति न सकै पुकार॥

सखी एक गइ हुते दुआरे, देखी कुंअर परा बिसंभारे।
मधुमालती सौं कहा पुकारी, झूलहिं का उठि लागु गोहारी।
ताराचंद बाहर है परा, कै दानौ कै चुरइल छरा।
कै सिर वह कै तांवरि आई, की पीत दुख परा मुरछाई।
कै रे डीठि लाग है काहू, लोटै परा लाइ गहि बाहू।

लोयेन पलक न लागहीं, रकत न रहा सरीर।
बिनु सुधि परा धरती महँ, जानि न जा के पीर॥

सुनतं उठि मधुमालती धाई, बीर बीर कै रोवत आई।
सुर उचाइ कं लिहेसि कोरे, बिधना सौं बिनवै कर जोरे।
पंछी रूप भै जननि निसारी, तैं मनुसाइ कै हौं निस्तारी।
तैं मोहिं लागि जीव प्रछेवा, मैं न घटी किछु तोरी सेवा।
का तोहिं भौ बीर परदेसी, कत छांडत हहु मोर गवेसी।

नैन उघारि पीर कहु, जिअ के औगुन सरीर।
सो उपकार करौं तो कहँ, जौ निपावौं पीर॥

आन निरास पूरि गौ मोरी, मैं न सेव किछु कीन्हा तोरी।
राजपाट तजि मोहिं लै आये, अनमिल रहे आनि मिलाये।

पंछी रूप जननि बनवासा, तैं मोहिं बीर दीन्ह घर बासा ।
जननी मोहिं गुन काटि बहायेउ, तौ मोहिं बीर तीर लै लायेउ ।
दुख समुंद मो वार न पारा, बही जात बिनु बाजु अधारा ।

जहाँ जात मोर बेरा, बिनु गुन बिनु कंडहार ।
महा धार महँ बूड़त, तुह मोहिं दीन्ह अधार ॥

कुंअर मनोहर तहँ चित्रसारी, सुनी मोर चलि आउ दुआरी ।
देखत ताराचंद की भांती, गौ मधुमालति जहँ सुख सांती ।
सीतल नैन नीर दुहुँ लावा, बड़ी बार कै घट जिउ आवा ।
तैं जो लिये ऊभि कै सांसा, चखु उघारि देखा चहुँ पासा ।
जब जाना किछु जी सुस्ताना, पालको बाहि मंदिल तौ आना ।

जहँ लगि अहे सयाने, नग्र मो सबके परा हंकार ।
सुनत राइ की अग्या, चलि आये सब बार ॥

सब गुनीजन मिलि आये तहाँ, मोहा कुंअर सहारस जहाँ ।
देखा गुनिन्ह नाटिका गही, बेदना कछु कया महँ अही ।
देखा रुहिर देह गा सूखी, रबि ससि दुऔ कया निरदोखी ।
औ पुनि मलक नैनन्हि सौं लागै, मोहा मोह न कैसहु जागै ।
कहै येहि का जी कतहूँ लागा, जौ तेहि पाव तबहिं पै जागा ।

कहेन्हि जाहि सौं हेतु है, पूछहु रस लहरै लाइ ।
लिहै नाम जेहि राता, और न किछौ उपाइ ॥

पुनि निअरे आई बर नारी, रस रस आइ कहत अनुसारी ।
एकसर आइ कुंअर पहँ बैसी, पूछै बीर पीर तोहिं कैसी ।
जौ तोर जिउ लागा कहुँ होई, मेरवौं आनि जान ना कोई ।
चौथ न कोइ जान एह बाता, कै तै कै सों जान बिधाता ।
कै हँसि बकत बतावै मोहीं, कैसे कहौ पीर ना तोहीं ।

जो मोर जिउ हरि लै गौ, तेहि का न जानौं नाउँ ।
ऐसी बात तोहिं आगे, मैं पुनि कहत लजाउँ ॥

बीर लाज मोसे कस तोहीं, परिहरि लाज बात कहु मोहीं ।
जौ मैं तेहि का नाव सुनि पावौं, सरग सुरहिनी आनि मेरावौं ।

कहेसि देखु मैं झूलत ठाढ़ी, परत दिस्टि जिउ लै गौ काढ़ी ।
चमकै नैन दुश्रौ उजिश्रारे, जनु पुनीव उगे देवस दुश्रारे ।
तौ खिन कसु नहिं कान दै बैसी, कहौं तोहि सौं देखेउँ जैसी ।

जस मैं नैननि देखा, तस जीभ कही न होइ ।
सहस भाउ महँ भाउ एक सुनहु सराहौं सोइ ॥

———

सिंगार खंड

उतपति सुनौ बरनौं के अंगा, असि वर जानौ सीस पर लागा।
मैं जनु ताहि खरग कर मारा, भौ टूक दुइ देखत बारा।
दीवा टेमि रैनि जनु बारो, लुहलुहात सिर देखा ठाढ़ी।
तापर चिहुर नाग धै खावा, गारुरि कहा जो लहरि बुझावा।
देखि लिलारा चौंधे बारा, अजहूँ नैन सूझ अंधियारा।

जस रबि किरनि तेज खर, सौंह न चितवै जाइ।
तस लिलार देखि वोहि के, आँधि परा मुरझाइ॥

भौंह बान अनिआर बिसारे, मारहिं ताकि जीउ हत्यारे।
नैन दिस्टि जो तन फिरि हेरा, जिव हरि लीन्ह तबहिं वोहि केरा।
बरुनी बान नात्र कर लेखा, दिस्टि न आव लागु सुरेखा।
देखि नासिका रहै अमोला, का बरनौं सब सिस्टि क मोला।
अधर बिंबु अंब्रित रस पूरे, बीरहिं पिअत रुधिर अस सूरे।

आनि बरन होइ अंब्रित अधर, उपजा देखि बिकार।
अमिअ न जानौं केहि कहँ, मो कहँ भौ अंगार॥

चौक चमकि देखि मैं न संभारा, परा मुरछि जस बीछु क मारा।
ता महँ बसै जीभ अमोली, बोलत अति खानी ता बोली।
परत दिस्टि सुनहु सत भाऊ, भौ जैस तिल बिनु सिर पाऊ।
देखि कपोल झलक लोनाई, निति उठि मकुरे छार मुख लाई।
बकत बिरह स्रवन दुइ वोरा, बीजु छुटा जस भौ अंजोरा।

नैन रेख कज्जल की, देखी सोभा कस देइ।
जानहु लोयेन स्रवन सौं, आइ जो मता करेइ॥

गीव पटतर गा काहु न लावा, जनु बिसकरमै आपु बनावा।
तीनि रेख मधु गीवनि रासी, भौं तेहि त्रिगनैनन्हि फांसी।

सेंदुर कुंकुह मेरे पिसावा, सूझ न फटिक गीव सोभा पावा ।
बिबि कुच स्वामछत्र बिधि देते, गढ़े आइ नैंननिह अनचीते ।
लरते दुऔ बीच गीव हरिआ, जौ न हार होत बिचधर हरिआ ।

पौन कलस अंब्रित रसपूरे, बिबि कुच कठिन कठोर ।
जोबन बल उमगत देखा, बिप्रित कनक कचोर ॥

भुअ पटतर जग जोहेउ नाहीं, केहि दै जोर सराहौं बाँही ।
मै मतिहीन बरनि ना आई, कै बिधनै तुअ सीभु उचाई ।
काहू जल म्रिनाल बखानी, काहू कर लिखा मनमानी ।
देखि कला मोर चित मोहा, कनक परे तेहि मांह जे सोहा ।
दुऔ हथोरी सूझ न कस दीसा, फटिक सिला जो इंगुर पीसा ।

गहि कर पल्लौ डोरि, झूलत हहिं सखि संग ।
कर बारी नख सारेउ, जनु फरहद केर सुरंग ॥

अबटन लाय पेट सम कीन्हा, आसन पाइ ता महँ चीन्हा ।
नाभि कुंड अमोघ अथाहा, परे आइ नहिं पाई थाहा ।
पौढ़ि पेम चढ़ि लेत उभूका, कटि जनु होइ चली दुइ टूका ।
गुरु नितंव भै मैन संभारा, जनु बिबि गिरि बांधा इक बारा ।
बिप्रित कनक कदली संग मा, जिअ देखि जांव जामै कामा ।

बीरहिं मारि लतारे, उन्ह हतिआरे जात ।
परगट देखि रकतारेउ, तरवा तिन्ह कर रात ॥

जौ कुंअरहिं बात सिरानी, सुनि कै रही औंध भै रानी ।
मनहीं गुनै औ करै बिचारा, काहि देखि येहि भा बिकरारा ।
औ असि सखी मोरि ना कोई, पेमा मकहुँ होइ तौ होई ।
कहेसि करहु बीर मन धीरा, मैं उपचारौं जाइ तोर पीरा ।
मधुमालती निस्चै कै जाना, पेमा छांड़ि होडि न आना ।

मैं सब सखी हँकारि कै, पूछौं खोज कराउँ ।
कै कुमारि कै ब्याही, तस तोहिं आइ कहाउँ ॥

मधुमालती उठि कै घर आई, कहा कुंअर सौं बात बुझाई ।
जन किछु कहा कुंअर सौं अहा, आइ रौन सौं रानी कहा ।

सुनत कुंअर मन भौ हुलासा, कहेसि कौन दहु एकर आसा।
जब राकस हनि आना तोहीं, तहिअे उन्ह दोतौ हति मोहीं।
तब न लिआ मोहिं चांड न आही, अब लै कुंअरहिं देऊँ बिआही।

येहि कहि दुऔ संग भौ, चित्रसेनि के आइ।
महल एकांत बैसि कै, मधुरी लिआ बोलाइ॥

कुंअरि ठाढ़ि भौ दुइ कर जोरी, कहेसि पिता एक बिनती मोरी।
आयसु होइ तौ बिनती करऊँ, कहेसि पिता सौं बात लजाऊँ।
राजै कहा मैं आयेसु देऊँ, कहा तोहार अछि सिर लेऊँ।
जब दूनौ मिलि बात उघारी, ताराचंद कुंअर कुल भारी।
गरुअ गरिस्ट मानगढ़पती, पंडित पर उपकारी सती।

राजदुलारी तोहारि, बाचा बहिनि है मोरि।
कै तौ ताराचंद सौं देहु गांठि दुहुं जोरि॥

———

पेमा का ब्याह खंड

सुनि कै राजकुंअर सुख चाहा, कहेसि मोहि वोहि पूछहु काहा।
राकस हनि जब लीन्ह अंजोरी, तेहि दिन की वोह चेरी तोरी।
जहां तोहार मन मानत अहा, देहु हाथ धै तहॉं मैं कहा।
बोल छांड़ि जब राजै दीन्हा, दुहूँ बधाई आइ घर कीन्हा।
कुंअर जोतखी तुरित बोलाये, दुहूं क रासि बरागन गनाए।

नग्र कुटुंब जन नेवता, औ परिजन परिवार।
घर घर बधावा बाजेउ, पुर पुर मंगलचार॥

पसरा काज बिआह जनावा, तेरसि सोमवार दिन पावा।
घर घर नग्र बधावा बाजा, पुर पाटन नेवता सब राजा।
सोमवार तेरसि जब आई, चित्रसेन जेवनार कराई।
डासन आनि अनूप डँसाये, राय सभा लै तहँ बैसाये।
बैसी सभा पसरी जेवनारा, जन जन आगे सहस प्रकारा।

बाँभन लोग राये औ राने, पंचअंब्रित जेवनार।
एक एक जन के आगे, सहस सहस प्रकार॥

जेंवन उठा लोग बहुराये, जन जन कहँ पान देवाये।
तेहि पाछे कहँ सब गनक हँकारे, आनि तौ माडौ तर बैसारे।
ताराचंद लै पाट बैसारा, होम अगिन आहुती प्रजारा।
बायें कुंअरि औहु लै ठाढ़ी, जानहु चांद चीरि कै काढ़ी।
पेमहिं पठै कुंअर सौं लाई, गांठि जोरि सत फेरी फेराई।

सकुचत उरत कुंअर गीव, पेम जो मेला हार।
कुंअरहु पुहुपमाल कर गहि, लै कामिनि गीव सार॥

चंदन कुहुक बाहि पिसावा, अगर मेलै सब मंदिल लिपावा।
भीतर बाहर भौ चहुँ ओरा, लावा भीतन्ह लाल पटोरा।

सैन आनि तेहि मंदिल डसाई, कुंअर अनंदित बैसा आई।
कै सिंगार आइ ब्रज नारी, सुरत सै कै लै बैसारी।
पलक पसेउ कांपै तन सांसा, उपजा दुओ प्रथम संग बासा।

बोलु मान ना परिहरै, बल्लभु लालि कराइ।
घूंघट वोट कोट भास, कै निअरैं को आइ॥

उठा कोह जो मन्मथ दापा, मन ढीला भौ गात बिआपा।
बज्र समान आह जो ब्यापा, भौ रवि उदै सोर भै थापा।
कुंअर चपरि कै अंगुरी चाँपी, सघन स्याम जनु दामिनि काँपी।
बहुरि जो कर कुच मर्दत गये, सकुचित सांस उसांसित भये।
नौल नेह तौ जोबन अंगा, रैनि बिहानि दुओ रति रंगा।

राजकुंअर कहं रजनी, तिल तिल सुख बिहाइ।
पेमा बिरह ब्याकुली, सूर सुरची लजाइ॥

रैनि दुऔ सुख सुरति बिहानी, भोर सखी आई लै पानी।
ताराचंद बाहर उठि आई, मधुमालती पेमा पहं जाई।
पूछै सखी कहहु दहु मोहीं, कैसे भौ पिअ सौं रग तोहीं।
पेमा पहँ जो पूछि मैं रही, तुइ न बात कछु मों सौं कही।
जो कछु हमहि निसि निबंहा, सो सखो जीभ न आवै कहा।

दुओ जीअ बीच लार बह, सखो हे भौ एकंत।
सो कैसहु न आवै, सखो हे जीभ कहंत॥

दूनौ राजकुंअर है हिली, खेलहिं हँसहिं एक संग मिली।
दूनौ रहैं हँसत एक संगा, नौ जोबन तन उदित अंगा।
राज सुख औ जोबन बारी निमिखि न बिछुरै पेम पिआरी।
मिलैं दुओ एक संग भीना, जिमि बारी प्रिथमी का मीना।
होय प्रीति मुख कहै न जाई, जिमि प्रीति कमुदीनि मिखाई।

मधुमालती औ पेमा, राजकुंअर दुइ बीर
पावस काल सुख बेलसहिं, पुनि गरजा घन नीर॥

पुनि पेमै सब सखी हँकारी, एक बार सुनि आइ सो नारी।
अति सुंदरि रूपवती कुमारी, नाव सुरेखा जोबन बारी।

संग अपने के लालच ताही, कुंअर सुहिरदै दीन्हा ब्याही।
जानेसि दुनौ संग मिलि रहहीं, दुख सुख एक संग निरबहहीं।
बाल संघातो जोबन चाही, दूनौ एक बाग की छाहीं।

जानेसि ससुरे कोई, हित मोरे संग नाहिं।
जासों कहब लाज जिउ केरी, यह गुनि दीन्हा ब्याहि ॥

बहुर खंड

पावस गत जो भोग बेलासा, रितु कुंआर सोहित कबिलासा।
भौ अकास सूझ निरमला, सुरज सहस जासो रह कला।
सिमटे मेघ गगन जो आहे, भौ अथाह जलहर औगाहे।
बैसि दुनौं मति कीन्ह बिचारा, नीर घटा जो रित उजिआरा।
कै मति दुनौ राउ पहँ आई, चित्रसेनि जौ महथ बोलाई।

दुनौ कुंअर कर जोरि कै, बिनती ठाढ़ि कराहिं।
कहेन्हि देहु जो अग्या, देस अपने कहँ जाहिं॥

हरख मयारे आयेस पावौं, साधि सुदिन प्रस्थान करावौं।
अग्या होइ तौ गौन कराई, अपने जन्म भूमि कहँ जाई।
गौन करैं कर साज कराई, अपने जन्म भूमि कहँ जाई।
गौन करैं कर साज कराई, मधुमालती के संग चलाई।
उन्हकी सेवा करि उन्ह बेरा, चाँद सताइस जोउन्ह केरा।

जस भिनुसारे दीपक, पिअरि धूप जस छाँह।
तस जीवन्ह केर, मास पाख दिन माँह॥

गौन बचन सुनि ञिप चुप रहा, तरहुँड माथ पुहमी को गहा।
रहा अचक जे काम न काजा, पलक न परे टकटकी लागा।
जीउ सरीर ते गयेउ उड़ाई, बड़ी बार ऊपर सुधि आई।
कहा राय बिक्रम पहँ जाई, गौन करैं कर साज सजाई।
जौ आयेसु आफौ तुह राजा, लै गौनहुँ अपने दिस साजा।

चित्रसेनि चित चिंता, पुनि मन कीन्ह बिचार।
जा संतति दुहिता रहे, अंत बहुरि परारि।

कहा रस बचन कुंअर बहुराई, आप राय बिक्रम पहँ आई।
राजा सौं गे कहा बुझाई, कुअरन्ह गौन क साज कराई।

सुनि यह बात अचक भै रहा, पुनि अस चित्रसेन सौं कहा ।
जा दिन बिधि हम मेरवा आनी, ता दिन दुख परा नहिं जानी ।
अब रखबे के नाहीं काजा, गै साजहु अपने दिस साजा

चित्रसेनि मनमारे, बिस्मै सौं घर आइ ।
कहा आइ कुंअरन्ह सौं, राजा बिनती कराइ ।

सुनत बात बाहर भेउ अहा, तिन्ह गै कै मधुरा सौं कहा ।
रहो अचक मधुरा सुनि बाता, कहेउ कहा जो भौ बिधाता ।
मुई गइ जो राकस हरी, अचक गाज कहवाँ सौं परी ।
अब बिछुरन मोहिं भौ भारी, बरु न ब्याहतीं रहति कुमारी ।
नैन आंसु भरि मधुरै रोवा, कहेसि मरन कठिन बिछोवा ।

प्रथम बार राकस हरी, मेरै आनि करतार ।
अब बिछुरे ना मिलना, एहि जन्म संसार ॥

गौन खंड

सुनी कुंअर कर गौन अवादा, भौ त्रिप दूनौ घर बिसमादा।
सुनतहिं बात रूपमंजरी, भौ अचेत मुरछा गत परी।
बिक्रमराय बैसि समुझावै, धी के रहे जस नैहर पावै।
ससुरे धी कर हो निरबाहा, मैंके काज न धीकर आहा।
नैन भौ जल चित उदासा, गौ रानी मधुमालती पासा।

मधुमालती सौं रानी, कहा बात मन लाइ।
कुंअरि चलिहु तेहि देस को, जहँ सौं कोउ न आइ॥

रूपमंजरी पेमा राइ, मधुमालती के संग बैसाइ।
मधुरे नैन दुऔ भरि पानी, आई जहाँ कुंअर औ रानी।
लागी धिअ को देन उपदेसा, कहो तजी चलि कुटुंब बिदेसा।
तोहिं नाह तहाँ लै जाइहि, जहाँ क संदेस न कोई लाइहि।
जहाँ केर न पाइअ संदेसा, चलिहि नाह तोहिं लै बिदेसा।

कौनि भांति हम राखब, तुह बिछुरत जे पीउ।
अब जो देवस दुइ चारि मों, लै गौनिहि तुह पीउ॥

सांई सेवा करब चित लाये, जनि डोलै चित दहिने बांये।
महा दुस्ट जो पुरख क जाती, चित परखत रहबै दिन राती।
कहेहु सेवादि न जानेहु जैसे, सगरी रैनि गोड चापब वैसे।
जौ धै बांह उलारे संगा, बेलसि सेज सुख मानेहु रंगा।
औ सो पिअ जो करी न माना, कहेहु रंग प्रीति अनुमाना।

जिन्ह धनि अपने कंत सौं, मान कीन्ह अधिकाइ।
तिन्ह तौ साईं आपना, सौतिहिं दीन्ह मनाइ॥

साईं सेवा किये सुख होई, साईं सेवा दुख जा सोई।
जौ पिउ के मन दुखित जानेहु, तहवां किछू बिलग ना मानेहु।

कियेहु सेवा साईं की ऐसी, तन मन लाये ध्यान रह बैसी।
तौ पैहौ जो निस्चै पीऊ, कहेहु प्रीति प्रभु दै कै जीऊ।
साईं सेवा जीवन राखेहु, पूछत बात मधुर सौं भाखेहु।

प्रीति जो करब सांइ सौं, सेवा के बर जानि।
साईं सेवा नित नई, जानौ मन अनुमानि॥

जौ जानहु अति रस मो साई, बरबस के सेइब बरिआई।
सेवा के बर पीअ मनाइब, पीउ क सेवा बहुते सुख पाइब।
सोइ सोहागिनि दुइ जिउ माहा, जो सेवा के राखा नाहा।
जौ पिउ के मन दुखित अहा, चित अनतै मुख हमसौं कहा।
पीउ क सेवा कियेहु सुख सारे, साईं सेवा परतर तोरे।

साईं सेवा कीजिए, कै जिउ अपने हानि।
साईं सेवा जो जिउ बँधा, सो चारौं जुग रानि॥

रूप मंजरी मधुरा रानी, देइ धीउ को सिख बुधि जानी।
सुनहु कुंअर तुह दूनौ बारी, स्रवन कियेहु उपदेस हमारी।
राजकुंआरी कुल उजिआरी, कियेउ काम जे आव न गारी।
धीउ बिछुरे रानी दुख होई, कोखीभार दुख सहै न कोई।
अब ना भेंटब कबहूँ बारा, लै जाइह तुह सायेर पारा।

निज जानहु अब रानी, धीउ जो भई परारि।
तब कुंअरिहिं कंठ लायेउ, रोयेउ घालि डंफोरि।

कुल अपने कर करबै लाजा, सेइब स्वामी छांडि सब काजा।
सासुहि उतर न दीजै काऊ, मै दुइ जूनि पखारब पाऊ।
हंसि के पेलब सासु के गारी, उलटि उतर ना दीजै बारी।
सासु क बोल अछि सिर लीजै, ऊँच बोल सुन उतर न दीजै।
सौतिन्ह सौं जो करब मिताई, रहब एक जनु जननी की नाईं।

ऊँच बोल जनि बोलहु, रिस राखेहु मन मारि।
संतति लाज धरब जिउ, कुल नहिं आवै गारि॥

सुना सखी मधुमालती चली, सुनते मया मोह जिउ जरी।
जो जेसहिं सो तैसहिं आई, रोइ सखी सब अंकम लाई।

रोवैं सभ गले लाइ सहेली, सौंरि सौंरि सँग साथ जो खेली।
काहू सुख बाले सँग माना, वोह सुख एहु दुख दुनौं बिसाना।
सुख अंब्रित रस खेलि जो पिआ, वोह सुख यह दुख कैसे जिआ।

तुम हम एक संग माना, बालापन कर रंग।
अब कैसे जिउ राखब, तुह गौंनहु पिअ संग॥

समुझि समुझि सँग साथ जे खेली, अब बिछुरन कठिन दुहेली।
बरु संतति बिधि राखत बारे, सकति आनि तिन्ह जोबन घाले।
जो न रहत जोबन तन गोवा, हम तुह होत न ऐस बिछोवा।
आजु सखी तुह गौन सभागे, कालिह बहुरि एहि मंदिल आगे।
जोग जोग मिलै त पिआरा, नातरि जोबन जन्म असारा।

जो बिधि जोबन बदलि कै, पुनि बालापन देइ।
सो जोबन देइ बाला, बाल अवस्था लेइ॥

जौ जोबन ना उपज तरंगा, सदा रहत बालापन अंगा।
जोबन उमगत भौ बिछोहा, अब लहते पाउ संग सोहा।
पिउ के संग नारि पै लहई, पिउ की प्रीति अंत निरबहई।
वोह कौन दिन अहे सभागी, वोहि तोहि पेम प्रीति जो लागी।
मन मैला सुनि कठिन बिछोवा, बिधि किन्ह पेम रहे ना गोवा।

सब सौं सुरति सयानपु, जब बिछुरे दिअ जोग।
मुकुति प्रान सौं पै गत, एहि सौं और न भोग॥

जौ बिछुरन दुख जनतिउं एहा, कत करतेउँ बालापन नेहा।
अब तुह करौ बिदेस पयाना, हम कैसे घट धरब पराना।
जौ हम तुँह न होत चिन्हारी, एत दुख आगे न आवत भारी।
तोहिं नाह तहँवा लै जाइहि, तहाँ क सँदेस न कोई लाइहि।
समुझि समुझि सँग साथ जे खेली, अब बिछुरन कठिन दुहेली।

तुह बिदेस कहं गौनब. हम अब इहाँ रहाहिं।
पेम लजावन पापी, जिव जो निकसत नाहिं॥

देखि कुंअरि कै कुटुंब बिछोवा, पर आपन जे गहबरि रोवा।
जेइ देखा सो हिये कर रोवा, नैन सलिल रकत तन धोवा।

पाथर केर हिआ जेहि केरा, आंसु न रहा नैन तेहि बेरा।
देखत ताहि हिआ चरराना, चला उड़ाइ जात कर प्राना।
सुख अंत्रित रस खेलि जे पिआ, एह सुख बोहि दुख बिधिनै दिआ।

दूनौ चलिहहिं ससुरे, राखे रहहिं न काउ।
चलिहिं कंत सँग लके, हम कछु कहत न भाउ॥

मिलहु मोहिं सखी गीव लागी, उपजा मोह मया उर आगी।
कालि सखी पिउ धरिहै बाँहा, चलिहि देस अपने लै नाहा।
लोग कुटुंब तजि पर भुंइ जाइब, पुनि बिधि मेरइहि आनि मिलाइब।
अंकम देहु लाइ गलेबाँही, जिअत मिलन पुनि होइहै नाहीं।
मधुमालती कर देखि बिछोवा, ऊँचे सबद सखिन्ह सभ रोवा।

बहुतौ रोवहिं पाँव परि, औ बहुतौ गीव लागि।
कोई रोवै पुहमी परि, मया मोह उर जागि॥

समदन खड

भोर होत सविता प्रगासा, भा अंदोर किछु गा न अवासा।
पूछहिं सबै ऊभि के बाहा, कस अंदोर हो राउर माहा।
जेइ जाना तेइ कहा बुझाई, मधुमालती ससुरे कल जाई।
सुनत अंदोर राउर मो परा, आइ लोग सब राउर भरा।
पर आपन जहां लगु अहा, राजग्रिह सुनि आये तहां।

सुनत गौन मधुमालती, परा महा असरार।
राज कुंअर तब रोइ कै, समदा सब परिवार॥

समदै सब परिजन परिवारा, समदै फिरि फिरि दरबारा।
समदै पालक सेज तुराई, समदै राज मंदिल गीव लाई।
समदै सब पाटन पट सारा, समदै रोइ रोइ परिवारा।
निसि सोवै जहँ राजदुलारी, समदै पाँव परी चित्रसारी।
निसरत जीउ थके मधु बोला, तौ समदै गीव लाइ खटोला।

सब घर बार समदि कै, पुनि समदै परिवार।
समदै सब जन परिजन, जो किछु जग बेवहार॥

मधुमालती छांड़ा घरबारू, छांड़ा सब परिजन परिवारू।
छांड़ी पुतरी भरी पेटारी, छांड़ी सब संग खेलनिहारी।
जेहि संग संतति मानै केली, छांड़ी ते सब बालि सहेली।
छांड़ा मया मोह जत आवै, अति मरोह घर छांड़ि न आवै।
कै गिआन अपने चित बारा, तब उठि चली छाँड़ि परिवारा।

छांड़ा सब परिवार आपन, जन परिजन सब कोइ।
छांडा लंक भभीछन, जो भावै सो होइ॥

बिनवै दुऔ कुंअर सौं रानी, चलेहु लेइ मोर प्रान परानी।
बिनती करहिं कोख का आगी, येह दूनौ तोहरे जिव लागी।

इन्ह दूनौ कर हित ना कोऊ, तुह जिउ लागि अहैं एह दोऊ ।
कर्म न होइ माय बाप के हाथे, भूजहिं लिखा देअ जो माथे ।
मात पिता कर एतनै अहई, सुत दुहिता प्रतिपारत अहई ।

तेहि पाछे जो बिधि लिखा, छठी कि राति लिलार ।
सो भूंजहि गै आपन, भल मंद सिरजनिहार ॥

कुंअर जननि पां लागी धाई, रानी गीव उठाइ कै लाई ।
कोख की आगी सहि न बिछोवा, डाडि बाहि रानी तब रोवा ।
अस कहि धी लागि गीव रही, छांडि न सकै मोह की गही ।
जननि कंठ नहिं छाँडै बारी, अधिकौ दै दै अंकम सारी ।
जननि असीस दीन्ह मन जानी, सदा सोहाग राज घर रानी ।

जौ लगि धरती गंगा जल, औ ससि सूर अपार ।
तौ लगि राज सोहाग तुअ, राखौ सिरजनिहार ।

बहुरि पिता पाँ लागी बारा, राये हेतु सौं अंकम सारा ।
राजा चखु नहिं रहा पनारा, निसरी बिकट आँस की धारा ।
कहै बिधि कत जग धी औतारा, कोइ न सहत एता दुख भारा ।
राये कहा जनि होहु निरासा, पर भुइँ देअ दीन्ह तुअ बासा ।
रहिहहिं जात परिजन मोरा, खेम कुसल लै एहहिं तोरा ।

पिता कंठ नहिं छांड़े, कैसहु राजकुमारि ।
जौ जौ लोग छोड़ावैं, तौ तौ गहि दे अँकवारि ॥

देखि कुंअरि के कुटुंब बिछोवा, सगरो लोग नग्र कै रोवा।
रोवै नग्र छतीसौ जाती, बार बूढ़ रोवैं अहिवाती ।
नग्र क जीव काढ़ि कै लीन्हा. बिन जिउ कया सून सब कीन्हा ।
कुंअरि कुटुंब समदा सब जैसे, पेमै पुनि समदा सब तैसे ।
रोवै ठाढ़ सबै परिवारा, जीउ लै चला राखि को पारा ।

रोवै लोग कुटुंब जन परिजन, परजा पौनि सवाइ ।
कंत चला ग्रिह अपने लै, कोइ न सकै बिलँबाइ ॥

पुनि गौ कुंअरि राज सभागी, दौरि रोइ मधुरा पाँव लागी ।
कहेसि समदु माँ मोहिं गीव लाई, मैं परदेसी आजु पराई ।

वोहि मास मोहिं जन्म निहोरा, तैं प्रतिपाल कीन्ह सब मोरा।
छांड़ा बाप भाइ घर बारा, आजु गौन परदेस हमारा।
मधुरै अस गहबरि के रोवा, नैन नीर सम नीर न चोवा।

दुऔ कुंअरि सब कुटुंब समदि के चढ़ी सुखासन धाइ।
छाड़ेन्हि सब परिवार अपना, बहुरि न देखै पाइ॥

पुनि दुऔ त्रिप जहाँ हैं खरे, दुऔ कुंअर गै पायेन्ह परे।
कंठ लाइ कह दुऔ भुआरा, इहाँ रहेहु हमरे सिर भारा।
हम सब घर कर प्रान अधारा, अहा सो तुअ नेवछावरि सारा।
बिनती बहुत कहे नहिं जाई, तुह जानहु औ कुल की बड़ाई।
तुह चरनन्ह तर माँथ हमारा, कियेहु जैस मन भाव तोहारा।

काढ़ि प्रान परिवार कर, हम तुह संग चलाउ।
राखि जो सोल हमारी, कहेहु जो देक्स कराउ॥

सुना कुंअर ससुरन्ह कर कहा, पिता ऐस तुह बूझित अहा।
मातै हम जन्मै होत बारा, माय बाप जे तुह प्रतिपारा।
यह परिवार गोसाउनि रानी, पित्र तरे इन्ह अजुरिन्ह पानी॥
येइ ससि हम कुल उजिआरे, येइ मनि हम इन्ह ते मनियारे।
कसत कसौटी कंचन लीका, तस हमरे कुल महँ येह टीका।

इन्हकर सोच करहु जनि, जिअ आपने नरेस।
अग्या देहु गोसाईं, गवनहिं अपने देस॥

———

बिछोव खंड

भये पंथ सिर दूनौ बारा, औ संग दूनौ राज कुमारा।
औ दाएज जत ससुरे पावा, सो सब कुंअरन्ह लादि चलावा।
चारि मेलान मिले सँग आई, तहवाँ ते दुइ मारग भाई।
ताराचंद नैन भरि पानी आयेउ जहाँ कुंअर औ रानी।
कहै बीर उठि समदहु मोहीं, समदौं महूँ लाइ गीव तोहीं।

दुसह पीर बिछुरन की, जग जानै सब कोय।
सब दुख सेती कठिन दुख, बिधि जनि देइ बिछोह।।

पुनि सुनि कुंअर मनोहर नाऊँ, धाइ गहेसि ताराचंद क पाऊँ।
इन्ह पुनि हेतु सहित कंठ गहा, लागि गीअ रोइ अस कहा।
जेहि दिन बिधि हम मेरवा आनी, तेहि दिन येह दुख परा न जानी।
दुऔ कुंअर लागि गीव गये, कहेसि दैअ हम कत रे बिछोए।
अस दुहु हेतु हिये उदगारा, एक न छोड़ एक के गरा।

रोइ रोइ गीव लागहिं, नैन चुअहि जलधार।
निज जानहु अब नाहीं, मिलना एहि संसार॥

दुऔ कुंअर रोवहिं गीव लागी, बिछुरि न सकै बिरह की आगी।
मधुमालती गै कठ छोड़ाये, दुऔ जना रोवत बेगराये॥
कहेन्हि कि तुह जन परिजन साईं, कस रोवहु मेहरिन्ह कै नाईं।
धीरजवंत जो पुरुखा भारी, थोरे दुख जनि होहु दुखारी।
हम अबला की चित बुधि थोरी, थोरेहि दुख जाहि भै बौरी।

मधुमालती दुऔ बेगराये, बहुतै दुख संदेह।
तब दुऔ नैन बालधर, पाछिलि समुझि सनेह॥

हम देखहु तुह अबला जाती, सहा बिवोग बज्र कै छाती।
हम दुख जन्म न जानहिं कैसा, अब जाना जब सिर चढ़ि बैसा।

धुआँ होत जब आगि के बारे, तब आवत चखु लोर हमारे ।
मात पिता जन सब संसारा, भूंजब जो किछु लिखा लिलारा ।
तुह पुरुख भै रोवहु ऐसे, धीरज धरहि हम अबला कैसे ।

तुह पुहमी पति चाही, बज्र क हिरदै तोहार ।
हम अबला दहु किमि सहहिं, बिछुरन दुख अपार ॥

मधुमालती लोयेन जल भरी, ताराचंद के पाँव लै परी ।
कुंअर हेतु सो कुंअरि उचाई, समुझि बिछोह कंठ लै लाई ।
मधुमालती रोइ रोइ कह बाता, तैं मोर जन्म जीवन कर दाता ।
मांय बाप हम जन्म अंडारी, बीर मोहिं लै तौ प्रतिपारी ।
मिलन भी जीवन होती आसा, तैं मोहिं मेरै दीन्ह घर बासा ।

राज पाट सब आपन, तैं छोड़े मोहिं लागि ।
तपत नीर बुझायेहु, जरत हिये की आगि ॥

ताराचंद अपने देस को चले

कैसे एह जमु भरिहौ भारी, तुह मोहिं नग्र चले जीव मारी।
जैसे पाख भा मो तन आई, मरतिउं कतहुँ जाइ बौराई।
पुनि कत मांय बाप घर औतिउँ, कतहुँ जाइ कै जीव गवाँतिउँ।
मोहिं घर बास बीर मोहि दीन्हा, पंछी रूप सौं मानुस कीन्हा।
घट जिउ रहत बिरह दुख देखै, आजु उजार जगत मोहिं लेखै।

परिहरि सब परिवार आपन, बोरन पर भुइँ जाहिं।
अब बिछुरे मोहिं तोहि सौं, आस मिलन की नाहिं॥

जननी पंखी कै मोहिं बनबासी, बहि जाती तोहिं बिरह उदासी।
एहि अंतर जौ देखौं तोहीं, उपजा पूर्ब पेम हिअ मोहीं।
आस लागि मैं बैसी आही, बाभी सकति लाज तुह आई।
तैं मोहिं लागि जे साहस कीन्हे, राज सोहाग रूप मोहिं दीन्हे।
किछु आसा जिउ हुती मोहीं, बीर सिध सौ साहस तोहीं।

धौरि बहुरि फिरि पकरेसि, तारा चंद के पाँइ।
कुंअर लाइ उर समदै, जस समदै बहिनी के भाइ॥

समुझि समुझि बिछुरन घेरा, कैसे जन्म निरबाहब बीरा।
अब प्रदेस नहि संग जाइब, आस नाहिं जो जिअत मिलाइब।
दहुं केहि घाट पिआवै पानी, को मिलाव बिछुरहु ते आनी।
का बिधनै जो लिखा लिलारा, कहाँ जाइ खेइब जमुआरा।
रहेहु बीर मोर लेत गंवेसी, मैं तजि कुटुंब भई परदेसी।

मैं कैसे जिउ राखब, तुह बिछुरन घट बीर।
कैसे जन्म निबाहब, येहि बिवोग जे पीर॥

पुनि दोउ राजकुंअर बर नारी, रोवहिं मिलि दै जो अंकवारी।
सौंरि सौंरि बालापन नेहा, बिछुरत भौ बहुत संदेहा।

निज जानहु दुहु जिउ माहीं, बहुरि बिछुरि ते मिलना नाहीं।
कीन्ह आजु हम मिलन निबेरा, आजु उदधि मो बिरहा बेरा।
आजु देश्र हम दुँहु बेगराई, आजु कुटुंब तजि भई पराई।

अब बिछुरे दहु मिलिहैं, किमि कै बांधब धीर।
कैसे जन्म निबाहब, एहि बिवोग के पीर॥

पांव पकरि रोवै बर नारी, बही नैन दुइ नीर पनारी।
कहै किमि कै सहइ दुख दोऊ, मिलते रही आस गौ सोऊ।
येह बेदना जौ होइ सरीरा, सो जानै जेहि पेम की पीरा।
आपनि आदि प्रीति जो जानी, करती हम जो कत नित पानी।
जीव जानि भौ जन्म बिछोवा, कंठ लागि जे कुंअरिन्ह रोवा।

मास देवस पर हम दोऊ, मिलत रहीं एक बार।
सोउ आस अब टूटिगै, जीवन कौन प्रकार॥

मोह उठी पेमा उर आगी, रोइ मनोहर के गीव लागी।
कहेसि समझु बिछुरन पीरा, कैसे जन्म निबाहब बीरा।
जब तुह रूपमंजरी डारी, ता दिन रोइ गँवावा बारी।
पै जिउ आई मिलन के आसा, मिले आइ जो घट हुती सांसा।
अब बिछुरन ते आस न मोहीं, जिअत बहुरि ना मिलबै तोहीं।

कुटुंब बिवोग न जानौं, जब देखा तुअ पास।
अब तुह बिछुरे बीरन, मैं जो भई निरास॥

आजु क दिन बिधि कत निर्माये, जो बिछुरन के नाम सुनाये।
पेम प्रीति जबहीं बिछुराहीं, सो दिन आनु जिअन मो नाहीं।
लोग कुटुंब जौ बिछुरा मोहीं, बीरन रही लाइ गीव तोहीं।
तुह अब चले मोहिं परिहरी, जीउ घट रहत न देखौं घरी।
धीरज करौं देखि तोर पासा, आजु बीर मैं भैंउ उदासा।

बिछोह तिल तिल मरन है, जग जानै सब लोग।
येह बिध काहु देइ जनु, जीव संग बिवोग॥

लै दानौ हौं तेहि बन डारी, अति असूझ देव अंध्यारी।
मोहिं लागि सहे दुख भारा, मारे सो राकस बरिआरा।

मारि निसाचर मोहिं लै आये, बिछुरा सब परिवार मिलाये।
अब तुह चले बीर हम डारी, जीवन जन्म दुऔ असारी।
औ बिछोह मोहिं तोहिं बीरा, मैं केहि देखि करौं मन धीरा।

येह कंठ छोड़ि कुंअर कंठ, मधुमालति कै लागि।
बिछुरत जन्म संघाती, हीवर जरी जो आगि॥

दुऔ कुंअर रोवहिं गीव लागी, आदि प्रीति जो बिछुरन लागी।
कीन्ह आजु मिलन निबेरा, आजु उदधि महं बिहरा बेरा।
आजु दैअ हम दोउ बेगराई, आजु कुटुंब तजि भई पराई।
बली जो दैअ एक संग राखी, औ जीवन तौ दह दिस भाखी।
मिले ते अस कछु भा आई, कोउ पूरब कोउ पछिम जाई।

सखी दिन गयेउ एक संग दिन, बालापन सुख चाउ।
मोहिं तोहिं आजु बिछोवा, सूझत नाहिं मेराउ॥

दसयें दिन हम मिलते दोऊ, आजु इते आस गौ सोऊ।
रहा जीउ लागा तोरि ताईं, कब मैं तैं बैठब एक ठाईं।
खेलत गये जो कबहिं अटारी, कबहिं गै खेलहिं चित्रसारी।
कठिन प्रान मनुसे कर आहा, तोहिं मोहिं बिछुरे कठिन बिछोहा।
कुंअरन्ह गै दोउ कंठ छोड़ाई, रोवत तेहि पालकी चढ़ाई।

मधुमालती कन्या गिरि, पेमा परबत नेरि।
चलिहि नाह संग दुनौ, तजि नैहर जो सेरि॥

ताराचंद मानगढ़ ताका, कुंअर ठाढ़ कनै गिरि हाका।
चलत बरिस दुइ पंथ वोराना, आइ कनैगिरि गढ़ निअराना।
कनक पत्र मंदिल लसाये, जगमगाहिं तै अति रे सोहाये।
बावन सहस्र कंगूरा गरहा, सो सभ रतन जरावन्ह जरा।
सुरज जोति जौ लागै आई, अधिकौ सौंह देखि ना जाई।

भीतर बाहर कोसली, बसती गढ़ बिस्तार।
दस जोजन लगि देखी, बरत मंदिल मसिआर॥

एहि मो राजा क महथ भंडारी, गुननिधान जो नाम तेवारी।
सुरजभान सौं बिदा कराई, पूरब जात होत गंग नहाई।

कुंअर पंथ आवत होत जेही, महथा जात होत मारग तेही।
परत दिस्टि जो भौ चिन्हारी, दूनौ उतरि दीन्ह अंकवारी।
पूछत मात पिता कुसलाई, और कुसल कुटुंब कै पाई।
मात पिता कै कुसल सुनि, मन मो भौ उछाह।
सुनि कै आनंद जिअ भा, परा स्रवन सुख चाह॥

जब सौतुम्र गयेहु परदेसा, राजा चिंता जो तजा नरेसा।
राज की बात न जानै राजा, हम अगुआ सब सारैं काजा।
राजा कपरा पहिरा झारे, जन परिजन रहे मनमारे।
सगरौ नग्र रहे बिसमादा, सुनी न कंठ नाद कै स्वादा।
जा दिन ते तुह गौने राजा, नग्र न कतहुँ बाजना बाजा।
अहिआ सौं परदेस कहँ, गौनेहु राजकुमार।
तब से राज चित छोड़ा, सुरजभान भुआर॥

महथा रैनि इहै सँग रहा, होत बिहान कुंअर सौ कहा।
अग्या देहु राजा पहँ जाई, कहौं जाइ राउर कुसलाई।
लै अग्या जो महथा धावा, जोजन सात पहर मों आवा।
महथै जाइ राजा सौं कहा, कुंअर कुसल सौं आवत अहा।
सुनि येह बात राउ औ रानी, तपत मीन जस पावै पानी।
नग्र महा रस रानि, बिक्रम राजदुलारि।
कुंअरि ब्याहि लै आवा, मधुमालती बर नारि॥

सुनि कै राजकुंअर सुख चाहा, घर घर नग्र अनंद उछाहा।
राज बार लै बाजन धरे, चहुँदिस घाव निसाना परे।
भौ अंदोर म्रिगमद बाजा, जानहु जलद गगन ते गाजा।
कौला देइ चखु पलक न लाई, रैनि सबै निसि जागि सिराई।
सुर्जभान ते दरिसन आसा, जस पानी सरवै पिआसा।
गायेन सुरस कंठ बहुरूपी, आये राजदुआर।
बहुत कथक नट नाटक, बहु बिध करैं केवार।

कुंजल साजा राज दुआरी, कनक जरित जो परी अँबारी।
ताजी तुरै जो लाखहु लहई, पौन बेगि जो उड़बे चहई।
जो जाकर होत अधिकारा, ते सब आपनि कीति सँवारा।

नई कला जो महथ बोलाये, जगमगाहि ते अति रे सोहाये।
बाहर भीतर पौरि पगारा, सुरंग पटोरे सबै वोहारा।
कनक जरी ते मंदिल, महल मनोहर बास।
ते सभ वोपि सुफरकै, राजकुंअर के अवास॥

सबिता उदै कुंअर घर आवा, सौ दायेज जो ससुरे पावा।
औ संग मधुमालती चंडोला, चढ़ा सुखासन कुंअर अमोला।
कुंअर पिता पाँ लागा आई, नैन जोति जनु अंधरे पाई।
पुनि गै कुंअर जननि पाँ परा, कँवलै पूत कंठ गहि धरा।
रही लाइ गरे कुंअरहि रानी, सूखे धान परा जनु पानी।
जब रे कंठ गहि लायेउ, रानी राजकुमार।
तब कौंला के अस्थन सौं, निकसु दूधकी धार॥

अमर न होइ कोई कलि मारै, मरि जो मरै तेहि म्रितु न मारै।
पेम की आगि सही जो आँचा, सो जग जन्मि काल ते बाँचा।
पेम सरिस जे आपु उबारा, सो तो मरै न काहू के मारा।
एक बरिस जो मरि जिउ पावै, काल बहुरि तेहि निअर न आवै।
सुफल फल अंम्रित भै गया, निस्चे अंमर ताहि की कथा।
जो जिउ जानहु काल भै, पेम सरनि कै नेम।
फीटै दुहु जुग काल भै, सरनि काल जग पेम॥

उतपति जग जेती चलि आई, पुर्ख मारि ब्रज सती कराई।
मैं छोहन्ह येहि मारि न पारेउँ, सहीं मरिहि जे कलि औतारेउँ।
सत सुनौ संसार सुभाऊ, जो मरि जिऐ सो मरै न काऊ।
सकति काल तेहि निअर न आऊ, सो जग पेम सजीवन पाऊ।
पेम अमिअ जे पाइअ बासा, सेस काल तेहि आव न सांसा।
जेहि भौ पेम अमी सौं, परिचै करै क पार।
औंधी सहसदल कली सो, त्रिअहिं पेम अधार॥

इति श्री मधुमालती पोथी समाप्त है। जो देखा सो लिखा मम दोख नह दीयते सवत १७४४ समै नाम जेठ सुदी दुजी को तैयार भई बार बुधवार को पंखित जन सौं विनती मोरी टूटा अछर मेरावहि जोरीः गुफतार मिआँ मंझन कितः राममलूक सहाय लिखितं गहिराम।

परिशिष्ट

एक

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	पाठ	शुद्ध पाठ
३	१	पीति	प्रीति
३	२	बुद्धि	बुधि
४	६	जगत	जगत
४	१६	मउं	माउं
४	१७	जीउ	जिउ
५	६	जगत	जगत
७	१	जगत	जगत
७	१६	गाही	गही
८	६	आपारा	अपारा
८	८	माया	मया
११	२०	सिस्ट	सिस्टि
१२	१६	सुने	सुंन
१३	४	सरसती	सरसाती
१७	१५	बारा	बार
१७	१६	विचारी	बिचारी
२०	२	आयु	आउ
२०	२०	कुँवर	कुँअर
२१	५	त्रिमुअन	त्रिभुअन
२४	१६	लख राउ	लखराउ
२४	१६	राज कुँवर	राजकुँअर
२४	१८	जो बन	जोबन
२५	४	भाति	भांति
२७	३	दिशा	दिसा
२८	३	खंडन	खंजन
२८	११	मैन	मैं न
२८	२३	सीर	सिरा
३०	५	जौन	जौ न
३०	२०	आनि	आति
३०	२३	तरुनापापा	तरुनापा
३०	२५	कलि सिरे	कलिसि रे (कलसि रे)
३१	१३	करि	कटि
३२	४	धनख	धनुख
३३	७	त्रिया	त्रिआ
३३	१२	कहु	कहहु
३७	३	दुख	दुख,
३७	३	भरि	मरि
४४	१२	बिस	बिसु
४५	१५	ब्याधि	ब्याधि
४६	२८	दुख	दुख
५५	१२	भेसते	भेस ते
६०	१४,२०	चित बिसाउँ	चित- बिसाउँ
६०	२३	परबो	पंखी
६२	१	रुटे	रूटे
६५	५	आयु	आउ
६७	१३	भौं	भौ
७४	६	विरह	बिरह
७८	६	सक	संक

पृष्ठ	पंक्ति	पाठ	शुद्ध पाठ	पृष्ठ	पंक्ति	पाठ	शुद्ध पाठ
८८	२२	अहै	आहै	१३४	११	फुसलवहि	फुसलावहि
९१	२६	ता सौं	तासों	१३५	२२	जह	जहँ
९६	२१	धाई	धाइ	१४०	१६	धरती	धरति
१०४	७	सौतुरव	सौतुख	१४१	२५	का	क
१०४	२०	जी	जो	१४४	२४	होडि	होहि
११५	१६	पासु	पासू	१४६	३	जहाँ	जहँ
११६	२२	पछी	पंछी	१४६	२२	कुहुक	कुंकुह
१२२	१५	फागुन ते	फागुन हुते	१४६	८	मयारे	मया रे
१३१	२	जो बन	जोबन	१५१	४	धोकर	धो कर
१३२	२६	बाल	बाला	१६२	१३	आजु इते	आजुइ तें
१३३	७,२५	डर	उर	१६२	२२	तै	ते
१३३	२०	सुत	सूत	१६४	५	सौ	सो

दो

संशोधित पाठ

(मात्रा एवं अर्थ के विचार से प्रस्तावित शुद्ध रूप)

पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	संशोधित	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	संशोधित
३	५	न	ना	६	२८	प्रम	परम
३	१५	जा	जो	१०	५	आठौं	अठौं
२	१७,१८	प्रगट	परगट	१०	८	प्रबत	पर्बत
४	१	सारहीं	सारहिं	१०	१३	प्रगासा	परगासा
४	११	जाये	जाय	१०	१४	बुधि	बुद्धी
४	१४	पंक	पंख	१०	२६,२८	प्रगट	परगट
४	१७	जीउ	जिउ	११	१४	प्रगट	परगट
४	२१	प्रवान	परवान	११	१७	जीउ	जिउ
४	२५	लागि	लगि	११	२०	विना	बिन
६	२	सत्यगुर	सतगुर	११	२३	बुधि सिधि	बुद्धि सिद्धि
७	३	क्रिति	कीर्ति	१३	१	बीनानी	बिनानी
७	६	उतर	उत्तर	१३	१२	जानहु	जनहुँ
७	०	प्रवाना	परवाना	१४	२२,२३	सभ	सब
७	६	दखिन	दक्खिन	१५	६	भई	भाई
७	१०	पछिव	पच्छिँव	१५	८	राजा	राज
७	१४	ध्रुअ	ध्रुव, ध्रुव	१५	१०	आउ	आयु
७	१५	हुंडार	हुआर	१५	१२	नित	नित्त
८	१२	दिस्टि	सिस्टि	१६	१०,१२	सेवा	सेव
८	१७	जीव	जीउ	१६	२१	सुध	सुद्ध
६		कोउ	कोऊ	१७	२	माता	मात
६	८	काहु	काहू	१७	३,४	बिना	बिन
६	८	पीअतौ	पिअतै	१७	५	क	कै
६	६	कोइ	कोई	१७	८	ब्रिध	बृद्ध

पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	संशोधित	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	संशोधित
१७	१८	प्रवानी	परवानी	३४	१२	जैसे	जैस
१७	२२	पुनिव	पुनिम	३५	१५	सुनत	सुनतै
१८	१	पुधवार	बुद्धवार	३५	२७	सौरौं	संवरेउ
१८	१४	सब	ते सब	३६	७	भौ	भय
१९	१३	कुँअर	कुँअरहि	३६	७	कौने	कौन
१९	१८	अनेग	अनेक	३६	१०	निर्भम	निर्भ्रम
२०	६	रहसानै	रहसाने	३६	१४	न तोहि	न होहि
२०	१०	राजा	राज	३६	१५	दुख	दुःख, दुक्ख
२०	१०	आनंद	अनंद				
२०	१४	पछ	पच्छ, पक्ष	३६	२३	सुख	सुक्ख
२०	२८	पुनीव	पुनिम	३७	२१	जै	नै, नहिं
२२	२	प्रदेसी	परदेसी	३८	३	राक	राँक, रंक
२२	२	दखिन	दक्खिन	३८	११	अनेग	अनेक
२२	३	त्रित	त्रित्त, नृत्य	३८	१५	जस	जैस
२२	१८	जन	जनि	३९	१७	अकलंक	कलंक
२३	३	यही	येही	४०	७	खोइहि	खेइहि
२३	११	हमारे	हमरे	४०	१६	तैं मूल	मैं फूल
२३	१३	जहां	जहँ	४०	२७	कैऊ	करेऊ
२३	१६	चित	चित्त	४१	११	अधर	अधरन
२४	११	यह ससिहर	वह ससिहर	४२	७	पहिरा	पहिर
२५	३	जाला	उजाला	४२	९	उधसी	उदशी
२६	५	बघुली पात	बगुली पांति	४२	११	अधर	अधर मो
२७	१०	भवौं	भवैं	४३	५	रौन	रवन, रमन
२८	१३	सरूप	सरूप न	४३	२१,२२	सपना	सपन
३०	७	के	कै	४४	१	त्रितु	मृत्यु
३१	२३	देखा	देख	४४	२३	पाइ	पाई
३१	२४	चित	चित्त	४५	६	जाउ	भाउ
३२	१	जमुआनी	जमुहानी	४५	२३	सभै	सबै
३४	३	देखि	देखे	४६	२४	पंथ	पथ
३४	२७	पुनिव	पुनिम, पूनिम	४६	२६	मानिक कै	मानिक
				४७	१६	दर्ब	द्रव्य

पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	संशोधित
४७	२२	जनित	जानित
४८	२१	बिद्या के	बिद्या
४९	२१	परानी	प्रानी
५०	४	अलछुन	अलच्छुन
५०	४	सुलछुन	सुलच्छुन
५०	१९	खाट	खट, पट
५०	२४	धरुनी	धरनी
५०	२६	ते	के
५१	३	बुधि	बुद्धि
५१	६	सास्तर	सास्त्र
५१	२३	क	कै
५४	६	रछ्यक	रच्छक
५५	१७	से	तें
५७	९	नौल	नवल
५७	९	राजकुँअर	राजकुँअरि
५७	१७	पुनीत्र	पूनिम
५७	१७	दूजि	दुइज
५७	२१	जेउँ	ज्यों
५८	६	देबस	देवस
५८	१६	करवत	करवट
५८	१८	संजग	सजग
५९	८	दर्बे	द्रव्य
५९	२४	भौंत भौंत भँवत भँवत	
६०	३	निरभम	निर्भ्रम
		चित	चित्त
६१	४	चूँबि	चूमि
६३	१४	सुकवारी	सुकुमारी
६८	३	इसत्री	स्त्री
६८	४	वोट	ओट
७२	२९	झुलाना	भुलाना
७४	२१	हनिवंत	हनुमंत
७५	२८	अतरिछ	अतरिज, अचरिध
७६	१५	संघ	संग
७७	१५	कहौ	कहै
७८	१३	अंबर	अमर
७९	२-३	अंत्र	यंत्र
७९	७	मइ	मैं (मुइं
७९	१५	बिप्रित	बिपरीत
७९	२४.२६	आउ	आयु
७९	२५	भख	भक्ष,भक्ष्य
८०	२	सर्न	सरन
८०	१४	अंमर	अम्बर
८०	२४	धेनि	धनुष
८२	६	गति	गत
८२	२४	आउ ग्रिहि	आयु गृह
८६	३	जो	औ
८८	१७	बोताई	बुताई
८८	१९	उठा	उठी
९०	१०	अत	अति
९०	२२	क	कै
९१	२	नींख	सीख
९१	१९	खत	क्षति
९३	१०	वोरी	ओरी
९३	१९	बोताइ	बुताइ
९४	५	मअंक	मयंक
९४	१५	जाका	जाकर
९६	१६	मइ	मैं
९६	२२	पलक	पलकन
९७	५	गरे	गर
९७	११	बिदवा	बिद्वा
९७	२०	हम	हमरे

पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	संशोधित
९७	२५	बैसु	बैसा
९९	४	बहु	हहु
९९	१५	कुसुंब	कुसुम
१००	८	अंत्रिछ	अंतरिक्ष
१००	१५	बार	बर
१०४	२३	दरसन	...दसन
१०५	४	उपनेउ	उफनेउ
१०६	६	करु	कर
१०६	६	चिरुआ	चुरुआ
१०६	८	होई	भई
१०६	१०	सग्र	सगर
१०६	१७	सहस	रहस
१०७	२८	बेगि	बेगी
१०८	१७	दिथोर	बिथोर
१०९	२	देसा	देखा
१०९	३	आस्रा	आसरा
१०९	११	टारौं	डारौं
१०९	११	प्रीती	पिरीती
१११	२२	उठवौ	उटवौ
१११	२८	हेरौं गै	हेरौ गै
११२	५	आउ	आयु
११३	२	प्रछि	परछि
११३	७	प्रछाहिं	परछाहिं
११३	९	सदेसी	स्वदेसी
११३	१३	पछ	पच्छ, पक्ष
११३	१९	सेवावा	सेरावा
११४	१	बिस्मे	बिस्मै, बिस्मय
११५	२	होत	हुते
११५	१२	सतुरौ	शत्रुऔ
११५	१८	चलहु	चलि

पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	संशोधित
११५	२०	चलि	चली
११६	८	उधार	उद्धार
११९	४	सौ	सो
१२१	२२	व्रिख	वृक्ष
१२२	१०	केहि	जेहि
१२३	२१	जिउ	जीउ
१२२	२६	पिउक	पिउ
१२४	१०	तोरे	तोर
१२४	१७	होती	हुती
१२४	८	वोखध	औषधि
१२८	३	सैंदर	सिंधुर
१२९	२, २८	राये	राय
१२९	१६	सिध	सिद्धि
१२९	२३	महूत्र	मुहूर्त
१२९	२३	बुध	बुद्ध
१२९	२५	सुख	सुक्ख
१३०	९	वोहारी	ओहारी
१३०	११	अबटन	उबटन
१३१	१२	किआ	किया
१३१	२३	बैसीं	बयसी
१३२	७	राये	राय
१३३	११	वोय	वै
१३३	११	प्रोथि	प्रीति
१३३	२१	वोधसिस	उदसिस
१३४	५	सपत	सप्त
१३५	२	है	हय
१३५	१३	अग्र	अगुरु
१३५	१३	प्रमल	परिमल
१३६	६	कुँअरि	कुँअर
१४०	३	झाँपहिं	ढाँपहिं

पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	संशोधित
१४०	११	जीव	जिव
१४४	२८	रौन	रवन, रमन
१४६	१३	राये	राय
१४६	१४	प्रकार	परकार
१४६	१९	फेरी	फेरि
१४७	१७	सखी	सखि
१४९	७	अपने	अपन
१५१	८	राइ	राई
१५१	८	बैसाइ	बैसाई
१५२	१४	कुँअर	कुँअरि
१५३	२२	न	ना
१५६	७	डाडि	ढाढ़ि
१५६	१३,१६	राये	राय
१५६	१७	एहहिं	ऐहहिं
१६१	२४	भेउं	भयउं
१६२	१०	पछिम	पच्छिम
१६२	१९	दुनौ	दूनौ
१६४	२१	सत	सत्त, सत्य
१६४	११	अस्थन	स्तन

—::o::—

तीन

कोष्ठकों में रखे शब्द

(मूलप्रति में न होने पर अपनी ओरसे रखे गये उपयुक्त शब्द)

पृष्ठ	पंक्ति	शब्द
४१	२०	घा (व) = घाव
५१	१०	(रे) = रे
५१	१६	(तुम = तुम
७८	१९	जंबुक (हिं) = जंबुकहिं
८२	१६	गै (उ) = गैउ
८५	३	लि (ख) = लिख
६४	१२	जीव (न) = जीवन
१०३	२२	हो (स) = होस
१११	१९	सो (इ) = सोइ

———

चार

पुनरावृत्ति

पृष्ठ	पंक्ति	विवरण
३३	१६, १८	कै मूरि गुन ग्यान लखाई
३६ ४३	१८ १३	तिल एक सुख के कारन, जनि आपुहि नसाउ ॥
५१ ५६	८ – १५	कै रे गूद तोर सिर फिरेऊ। कै र सिस्टि जग बाउर सिरेऊ ॥
५१		दोहा संख्या २ एवं ३ एक-से हैं।
५२ १५ २०	३ १० २	आयु सूर पियर जस घेरा।
५६	६	'कै रंग मद मातान संभारेसि' की दो बार एक ही पंक्ति में आवृत्ति।
६० ७१	८ ३	प्रीति बास मोहि तोसे आवै।
६१		दोहा संख्या १ एवं २ एक से हैं।
११०–५,१६		का विधि लिखा लिलार।
१४६ – ६ – १०		अपने जन्मभूमि कहं जाई।

पाँच

कहावतें, मुहावरे, उपाख्यान या कहतूतें

क्रम-संख्या	पृष्ठ	पंक्ति	
१	१०	२	हिय का अंधा सोइ गँवारा, जस उल्लू दिनहीं अंध्यारा
२	३१	२६	पैठि पाप की बोबरी सबै होत मुँह कार
३	४६	१२	धन खोये बौराइ जोलाहा
४	५०	२४	गये नाग का धरनो ठठावसि
५	५०	२६	गाँठी बाँधि अंगार
६	५१ ५६	८ १५	कै रे गूद तोरे सिर फिरेऊ
७	६६	१७	कुँवर करेज औंटि भा लोहू
८	७४	२	कनक आगि जो परा सोहागे
९	७४	३	जरत आगि घ्रित परि गैऊ
१०	७५ ६८ १२०	१७ ५० ६	जनो बीस एक बरिस देवस एक
११	८०	६	रिसन्ह जरा सिर पाँव ते गाता
१२	९१	२७	उन्ह बातन तौ उतरै पानी
१३	९१	२८	अस को बरै धूरि कर तागा
१४	९२	९	धाइ के आगे पेट छपाइहि
१५	९२	१०	संगी सन की चोरी फाबै
१६	१०२	१९	कार होइ सो निस्चै, कारे संग जो बसाइ
१७	१०३	२०	बुझो आगि ऊपर घृत दीन्हें
१८	१०७	२२	बूडत आस धाइ तिनु लेई
१९	१०७	२३	ओस पियास न त्रिखा बुताई
२०	११२	८	दुख कर मोट आनि सिर धरा
२१	११२	२०	सिर पाँवहुँ ते काँपा गाता
२२	१३३	१६	**यह उपखान जान मन हँसी, गारुर ससुर कुठाहर डँसी**

छह

दोहों में अधिक या न्यून मात्रायें

आदर्श दोहा—१३-११ मात्रायें

१—अधिक मात्रायें

[क्रमशः पृष्ठ संख्या, दोहा संख्या, चरण (कोष्ठकों में)]

३–३ (१), ७–२ (२), ९–२ (२), ९–४ (२), ११–२ (१) ११–३ (१), ११–४ (१,३), १२–२ (१,४), १४–१ (३), १८–४ (३), २२–१ (१), २३–१ (४), २३–२ (१), २३–४ (२,४), २४–२ (३), २६–३ (२), २९–३ (२), ३४–३ (१), ३५–१ (१), ३७–१ (१,३), ३७–४ (१,३), ३८–१ (२,४), ३८–२ (१,२), ३८–३ (१), ३८–४ (१), ४१–१ (१), ४१–३ (३), ४४–४ (४), ४५–३ (४), ४६–२ (३,४), ४६–४ (३), ४७–१ (३), ४८–३ (३), ५१–४ (१), ५८–४ (२), ६०–२ (१), ६९–३ (३), ६९–४ (१), ७१–३ (४), ७४–२ (२,४), ७५–३ (१), ७८–१ (२), ७८–३ (३), ८५–२ (१), ८८–२ (१), ८८–४ (१–२), ८९–१ (३), ९०–१ (१–२), ९१–१ (३), ९२–४ (१,३), ९३–१ (१), ९३–२ (१), ९३–४ (३), ९४–२ (४), ९४–४ (१), ९८–१ (३), १०३–१ (१), १०३–२ (३), १०३–३ (१), १०३–४ (३), १०४–३ (१), १०५–३ (१), १०६–१ (१), १०६–२ (१), १०८–१ (१,३), १०८–२ (३), १०९–१ (३), ११०–२ (१), ११०–४ (१), १११–१ (२,३), ११३–२ (३), ११३–३ (३), ११४–४ (३), ११३–३ (१), ११५–१ (१), ११५–४ (१,३), ११७–१ (३), ११९–४ (३), १२२–४ (१), १२३–२ (३), १२४–१ (३), १२४–३ (३), १२४–४ (१), १२५–२ (२,४), १२६–४ (३), १२७–३ (३), १२९–१ (२), १३१–२ (१–२), १३१–३ (१,३), १३२–३ (१), १३३–३ (१), १३३–४ (४), १३४–१ (४), १३४–३ (३), १३५–२ (१), १३७–१ (१,३), १४०–१ (१), १४१–२ (२), १४१–३ (१), १४३–२ (१), १४४–१ (१), १४६–१ (३), १४६–३ (३),

१४८–१ (३), १५१–२ (३), १५२–३ (१), १५६–३ (४), १५६–४ (१,३), १५७–१ (१,३), १६०–१ (१), १६०–२ (४), १६२–२ (१), १६४–२ (३),

२—न्यून मात्रायें

[क्रमशः पृष्ठ संख्या, दोहा संख्या, चरण संख्या (कोष्ठकों में)]

४–३ (१) ८–३ (१), १२–१ (३), १२–२ (३), २२–१ (३), २३–४ (१,३) ३१–१ (१), ३१–३ (१), ३८–१ (१), ४१–४ (३), ४२–२ (१), ४६–३ (२) ६३–१ (४), ६५–३ (३), ७०–४ (२), ७६–२ (१), ७६–४ (१, ३) ८०–३ (४), ८०–४ (१), ८४–३ (१), ६७–२ (४), १०४–४ (३), १०६–१ (२), १११–४ (४), १२६–२ (१), १३१–२ (३), १३६–४ (१), १३६–१ (१), १४७–३ (३), १४६–२ (३), १४६–३ (४), १६१–४ (४), १६३–३ (१,३).

———

सात

चौपाइयों में न्यूनाधिक मात्रायें

१—अधिक मात्रायें

[पृष्ठ संख्या, पंक्ति संख्या पूर्वार्द्ध या उत्तरार्द्ध (क्रमशः १,२) कोष्ठकों में]

२९–२० (२), ३०–८ (२), ४४–१५ (१,२), ४८–४ (१,२), ५५–१६ (१), ७३–१ (२), ८२–२३ (१), ८७–२४ (२), ८९–२ (१,२), ९८–९ (२), १०६–२ (२), ११२–६ (१), १२२–२ (२), १३८–११ (१), १३९–८ (२), १४६–५ (२), १५२–२४ (२), १५६–२ (१), १५८–८ (२), १५९–८ (१)

२—न्यून मात्रायें

[पृष्ठ संख्या, पंक्तिसंख्या, पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध (क्रमशः १,२)]

४–२२ (१), ८–२७ (२), ८–२८ (१), ९–१४ (२), ९–२७ (२), १०–७ (२), १३–९ (१), १४–१ (१,२), १६–५ (२), १८–८ (१), १९–२४ (२), १९–२८ (२), २०–७ (२), २८–६ (१), २८–२२ (२), २९–६ (१), २९–९ (२), ३०–९ (१), ३०–१४ (१), ३१ २ २), ३१–१५ (२), ३१–२३ (२) ३३–१६ (२), ३३–१८ (२), ३९–१३ (१,२), ४०–१७ (१), ४२–१६ (१), ४३–१७ (१), ४४–३ (१), ४४–१० (१), ५९–२४ (२), ६९–३ (२), ६९–१७ (२), ६९–२१ (२), ७०–७ (१), ७६–३ (१), ७६–२८ (२), ७७–१ (१), ८०–२१ (१), ८०–२२ (२), ८१–२२ (२), ८२–२७ (१), ८५–१३ (१), ८५–१६ (१), ८७–८ (१), ८७–२८ (१) ८८–१ (१), ८८–१३ (१), ९१–९ (२), ९१–२१ (२), ९२–६ (२), ९३–१० (१), ९४–१ (१,२), ९५–३ (१,२), ९७–६ (१,२), ९७–८ (१),

६७–१३ (२), ६७–२७ (१), ६८–१६ (१), ६८–२४ (१), ६९–२ (१), ६९–१७ (१), १००–३ (१), १०१–२३ (१), १०३–६ (१), १०३–१३ (२), १०३–२१ (१), १०३–२७ (१), १०६–१५ (१), १०७–२ (१), १०७–१४ (१), १०९–८ (२) ११०–२२ (१), १११–१४ (१), १११–२२ (१), ११३–१ (१), ११३–४ (२), ११४–३ (२, ११४–२३ (१), ११५–१७ (१), ११६–३ (२) ११८–५ (१), ११९–३ (१), ११९–९ (२), ११९–२४ (१, १२०–३ (१), १२१–१ (१), १२३–८ (२), १२४ २(१) १२७–१६ (१), १२७–१७ (१), १२८–८ (२), १२९–८ (२), १२९–१० (१), १३१–२ (१). १३१–३ (२),

न्यून मात्रायें (क्रमशः)

१३१–१९ (२), १३१–२२ (२), १३२–३ (१), १३२–१० (१), १३३–१५ (२), १३३–२१ (२), १३४–२ (१), १३४–७ (२), १३५–२३ (१), १३६–२३ (१), १३९–१ (१), १४०–२१ (१), १४३–१६ (१), १४३–१८ (१), १४३–२३ (२), १४४–८ (१), १४४–९ (१), १४४–२० (१), १४६–१५ (२), १४७–२ (२), १४७–१७ (१), १४७–२१ (२), १४७–२२ (१), १५०–९ (१) १५०–१० (२), १५१–८ (१), १५२–९ (१), १५३–६ (२), १५३–१४ २), १५३–२८ (२), १५५–५ (१), १५५–८ (२), १५६–१७ (१), १५७–१६ (१), १६०–१५ (१), १६१–१४ (१), १६२–२ (२), १६२–३ (१), १६२–७ (१), १६२–१० (१), १६३–६ (१), १६३–८ (२), १६३–२४ (२), १६३–२९ (१), १६४–१६ (१),

—:०:—

आठ

शब्दों पर विचार

(१)

क्रमाङ्क	शब्द	उपयुक्त प्रयोग	अशुद्ध प्रयोग
		(संख्यायें क्रमशः पृष्ठों एवं पंक्तियों की हैं)	
१	प्रगास	३-२	१०-१३, ७७-४
२	प्रगट	...	३-११, ३-१८, १०-२६, १०-२८, ११-१४, ३८-२३
३	परगट	३-८, ३-२०, ४२-१२ ६-३	
४	प्रवान	....	४-२१, ७-६ (प्रबानी) १७-१८ (प्रवानी)
५	प्रथम	२०-१७, ६६-१४	८-१४
६	प्रम (पद) (परम)	८-२१, ६-२१	६-२८
७	सिधि	८-२३, ८-२६	११-२५, ३३-१६
८	बुधि	३-२	१०-१४, ११-२५, १२-२०

शब्दों पर विचार

(२)

१ अनेग ३-६, १८-१७, १६-१८, ३८-११, ५५-२८, ७६-१७
(अनेक)

२ गरुश्र ८-१६, ७१-१५, ८-२८ (गरुश्रा). ७-७ (गरु), ७-८ (गरुवे)
(गुरु)

३ सपत ३३-१२, ४०-१६, ४०-२७, ७५-२७, ६०-७, ८, १७
(शपथ)

४ दर्वं ४७- ६, ५६-८
(द्रव्य)

५ जनी २३-१७, २३-२३, ६४-६, ७५-१७, १०३-२८
(जन का स्त्रीलिंग)

६ धिश्रा ३५-८, ७५-६ (धिश्र), ६१-२२, ११८-६ (धी)
(पुत्री, कन्या)

७ निर्भम ३६-१०, ५७-२०, ५८-१५, ७१-१०
(निभ्रम)

८ भर्म २३-१४, ३४-२ ७६-१०
(भ्रम)

९ पुनिव १७-२२, २०-२८, ३४-२७, ४६-१७, ५७-१७, ६१-१६
(पूर्णिमा)

१० सभ १४-२२, १४-२३, ४२-२३, (सभै), १०२-२४ ११४-११, सब) १२२-१५ १३२-३, १३५-४ (सभै), १५३-१

११ सीभु ४-२३, २४-१३, ३०-१३, ३३-१२, १४४-७
(शंभु)

१२ दहु ४-३, ५०-१४, ५०-२७, ५६-८
(धौं, हो-न-हो)

१३ बिरला ३-१७, ६-३ (बिरुला), ७१-१०
(विरला, कोई एक)

१४ बाजु ३-१२, ४४-१७, ५२-१, ६५-२४, ६८-२३, १४१-३
(कोई-कोई

शब्दों पर विचार

(३)

विशिष्ट प्रयुक्त शब्द (कोष्ठकों में अर्थ दिये हैं)

१ पहिराउरि पाये १८-१४ (वस्त्र)
२ नैन मलगजी आई ४२--१० (आलस्य)
३ सौतुख सपन न जानौ ४३-२१, २२, ४५-२३, ४६-१,२, ६६-६, १०, ११, १२, १०४-७ (टोना, जादू)
४ सकस केरि सुना संमाना ८०-२० (शब्द)
५ कुँअर सरीर सो औनुम ५१-४ (निकृष्ट)
६ के चिल्हवास सत्रु ताहिं दीन्हा ५६-८ (एकान्त एवं दूरस्थ वास)
१० सौंरा बौसाऊ ८१--२८, ११०-१५ १११-२४ (पराक्रम)
अपने बल बौसाऊ ८७-२५
११ हींवर सारा ८२-२८, ८३-४, ८८-१३, १११-२३, २६, १२०-३ १२५-७ (हृदय)
१२ हिआरि ६१-८, २३; (हृदय)
१३ सुनि न रहा जिउ ठाहर भोरा ६०-१८ (स्थिर)
१४ तिन्ह धनाधन धाइ के ६६-२१ (तीव्र गति से)
१५ जौ खाभ्भी पंछिन्ह के जानी १०६-१२ (खाद्य पदार्थ)
१६ फिरो कुँअर की आरि १२०-६ (अड़,-पास-पास सहारे)
१७ रस रस आइ कहत अनुसारी १४१-२० (धीरे धीरे)
१८ देखत ताहि हिया चरराना १५४-२ (विदीर्ण होना)
१९ सहीं मरिहिजे कलि औतारेव १६४-२० (स्वयमेव)
२० इहाँ न काहू वारौ पाये १४०-१ (अवसर)

नव

व्याकरण

१—सर्वनाम

(कुछ उद्धरण)

१ मैं हम ता दिन ते तोहिं मइ मोहा ६६–१६ (मैंने) कर्त्ताकारक
ताके अंत्र परे मइ पाये ७६–७ ,, ,,
हौं एहि नग्र जे राजदुलारी ८४–२३ (मैं) ,,
तैं मानुस कै हौं निस्तारी १४०–२२ मुझको कर्मकारक
लहरि मैं तोरी ३७–२०, २१ (मैं) कर्त्ताकारक
हम हहिं सब संसार बिनानी २३–१४ (हम) बहुवचन कर्त्ताकारक
काल गह आयेउ हम ठाऊं ७६–२१ (हमारे) सम्बन्ध कारक
हम तुह दहु परिचै केहि केरी ३७–२३ (हमारा) ,, ,, अथवा
(हम) कर्त्ताकारक
मोहिं तोहि को पारैं बेगराई ३७–२२ (मुझको) कर्मकारक
अरु मो सौं तुअ प्रगट नाऊँ ३८–२३ (मुझसे) करण ,,
ते मोहि मों तैं सार ३८–२५ (मुझमें) अधिकरणकारक
महीं पिता घर संतति बारी ३५–६ (मैं ही) कर्त्ताकारक
समदौ महूँ लाइ गीव तोही १५८–५ (मैं भी) ,,

२ तू, तुम तू निरासन्ह को आस ८०–४ (तू) ,,
आप तै को कहाँ ते आवा ५८–२३ ,, ,,
सरबत तै १२–६, ३३–१५, १६, १७, १८ (तू) ,,
बीर मोहिं लै तौ प्रतिपारी १५६–६ (तूने) ,,
कै तुह इन्द्र सभा के देउता ३३–१३ (तुम) ,,
तौ तुह पूत विदेस सिधावहु ५३–५ ,, ,,
हम तुह दहु परिचै केहि केरी ३७–२३ ,, ,,
तुह प्रतिम मदमाता ३६–३ ,, ,,

मोर जीव तुह चौगुन राता ३६–३ (तुम पर) अधिकरण कारक
मोख मुकुति तुह कैसे पाई ८६–२८ (तुमने) कर्त्ताकारक
मोंहिं तोहिं का पारै बेगराई ३७–२२ (तुझे) कमकारक
तुहहु उन्ह रस बातन्ह बौराई ३८–२० (तुमने भी) कर्त्ताकारक
सपन कहौं तो सौं तुह ६६–१२ (तुझसे) करणकारक
तुअ अस्तुति सारौं ३–२ (तेरी) सम्बन्ध कारक
तुअ पासा ७०–२० (तेरे) ,, ,,
सकल सिस्टि मों परगट तहीं १२–६ (तैं ही, तू ही) कर्त्ताकारक
हम तोहरी छाँहा ४०–१४ (तुम्हारी) सम्बन्ध कारक
एह दूनो तोहरे जिव लागी १५५–२३ (तुम्हारे) संबंध कारक
तोहिं सेती मोर फबै न चोरी ४३–१६ (तुमसे)
कहु तोर जीव के हरि लियेऊ ४८–१६ (तुम्हारा) सम्बन्ध कारक
विधि तो कहं जै देय गोसाईं ८०–३ (तुझको) कर्मकारक
आपु अपान रूप ४–५, १२–२१, १२–२३, ३५-१५ (स्वयं) आदर-सूचक आत्मवाची
आपु ते आपु १२–२२, २४. (स्वत:)........मुहावरा
देस अपन कहँ जाहिं १४६–७ अपने सम्बन्ध कारक

३ वह, वे सै के खोव जे अपान ३५–१८. (सो वह) कर्त्ता कारक
से दुइ जून परवाव पाऊँ १५२–२१ (उसके) सम्बन्ध कारक
साल तिन्ह कै जो देख ३१–५ (उनको, उनके) कर्म कारक
उन्ह क सुभाउ ३१–३ (उनका) सम्बन्ध कारक
वोह घर गौ यह इहाँ अंडारी ११६–१० (वह) कर्त्ता कारक
ताके अंत्र परे मइ पाये ७६–७ (उसके) सम्बन्ध कारक
ते छाँडा दुइ जुग संगरहा ६–२३ (उन्हों ने) कर्त्ता कारक
जेइ सेवा सो लागा तीरा ९–६ (वह) कर्त्ताकारक

४ कौन पापी के होई ४०–२. (कौन) कर्त्ता कारक
कहु तोर जीव के हरि लियेऊ ४८–१६ (किसने) कर्त्ता कारक
तैं को, कहाँते आवा ५८–२३ [कौन] कर्त्ताकारक
भा ऐस का कर बौरावा ५८–२३ [किसके द्वारा] करण कारक
जो कोइ खोव सोई पै खोवा १२–१० (जिसने... उसने)
धरम दुदिस्टिल जो औतरा ८–२ विशेषण की भाँति प्रयुक्त

जो सो जो निधि का भरा १२-६ ,, ,, ,,
परम तंत लौलीन जे मानै ८-२७ (जो) कर्त्ता कारक
जे सिस्टिक गेहा १२-३ ,, ,,
धन्य सिस्टि जे सिरजा ५७-१४ (जिसने) ,,
सो का खोव जो कुछ खोवा १२-१० (वह) ,,
गरुआ हो सो लावै पारा ८-२८ (वह) ,,
सो सिख गुरू सिस्टि जो पालै ८-१२ [वही] ,,

अपवाद—मैं हरिनाँव जापौं जे तरऊँ (जिससे)

———

नव

२ जनि, जै = न

विधि जनि देहु बिछोउ ७५-३
नीदहिं जगत जन निदंहु भाई २२-१८
मोहि आपुन जै जानु निनारा ३७-२१
जिय भरोस जै करहु हमारा ५३-१
पेम बिछोह जै देहु गोसाईं ७५-३
जाहु भरम जै मानहु बारी ७८-३
मोहि लागि जीव जै देहा ७७-१६
मोहि लागि जै नासु अपाना ७७-१७
बेगि होहु जै बिलम्बहु ८१-२५

नोट— निम्न उद्धरणों में जै का अर्थ जय या जीत है।

जो जै पत्र देत बिधि मोहीं ७८-२
कुँवरहि तैं जै देहि गोसाईं ७६-२८
बिधि तो कहं जै देय गोसाईं ८०-३
कुँअरहिं जै ना राकस हानी ८०-२७

———

नव

३. सैती, से =से, में, के कारण

तेहि सेती परिजाचौं तोहीं ४-१०
तोहिं सेती मोर फबै न चोरी ४३-१६
प्रान जो प्रान सेति मिलिगैऊ ७८-२०
चित सेती दुख परिहर बाला ८४-२
बिरह आगि से तन मन जारा ५५-१७
सब दुख सेती कठिन दुख १५८-७

—:०:—

नव

४—क, का, के, कर, की

सम्बन्ध कारक

क=भोगीक अनवन रूप ३–१०, सिस्टिक चाऊ ४–२६, रूपक नाम ५–५ क्रितिक नाऊँ ७–३, गाइक पूँछि ७–१६, सपूतक बात १७–५, कुँवर क जिउ ४७–७६

कर=भेदीकर भेद ४–२०, नीर खीर कर होइ विचारा ७–१६ पेम सुरा कर माता ५६–१७

केर=मोहिं न कुँअर केर हुती आसा १२५–२८

का=निधि का भरा १२–६

अपवाद—जीउ का जानसि १२–३ सो का खोव १२–१० मैं का कहौं २२–१३

की=धूर जो पाँव की ४–२८, सब को लिखा जोहार ८५–१६

अपवाद कहेन्हि की यह प्रेम पियारा २४–१३, रांक दुखी की आहि भुआरा १०३–७

के=मन के घर बिखम अपारा ८–२८, गुरु के बचन ६–२८

अपवाद— पंडित के बैसारेउ राऊ १६–७

के=बचन के पति १०–१७ करैं कुंवर के सेव २०–२६

कैसन मधुपुर कै बाता १०३–६

अपवाद=सबै कुवर ठाकुर कै जाना २०–२३

देखा रूप अधिक कै दोऊ २४–६

कै रे बिरह दुख हते मलीना १०३–८

को=जब रे दान को हाथ उघारै ७–२३

अपवाद=माँग पंथ चलन को पारा २६–११

———

दस

१—क्रियाओं का लिंग विचार

१. पुनि रस बचन सुहागिन बोला ३५-१३
२ एहि विधि गा रैनि तुलानी ८०-२७
३ सुनत कुँवर के चिन्ता आवा ८१-२७
४ उठा पेम की पीर ८८-१६

नोट—सुहागिन स्त्रीलिंग है अतः 'बोली' क्रिया होना चाहिये किन्तु वचन पुल्लिग है अतः क्रिया का पुल्लिङ्गरूप (बोली) प्रयुक्त हुआ है। अथवा कर्ताकारक चिन्ह 'ने' अनहिंत समझा जाय।

तुलानी गा = तुला गई = बीत गई

चिन्ता आवा = चिन्ता आई

उठा पीर = उठी पीर

५ पुनि बर नारि अमी रस खोला १३४-१३
६ ताराचन्द बाहर उठि आई १४७-१४

उठि आई = उठि आयो

७ अपने जन्मभूमि कहं जाई १४६-६, १०
८ सखी एक गइ हुते दुवारे १४०-१३

गइ हुते = गइ हुती

२—क्रियाओं के विशिष्ट प्रयोग

(कोष्ठकों में क्रियाओं के अर्थ दिये हैं)

१ बाकी अंगुरी करकै ४–२७ (टूटना, शब्द करना)
२ बसरहिं भगती बीनानी १३-९ (बसते हैं)
३ येइ पाविन संसारा भोरावा १३–१८ (छला)
सब संहार भोरै येइ खावा (१४–५)
४ कबि मंह लेब छपाय १४–२६ (छिपा लेंगे) भविष्यत काल
रबि ससि रूप छपान २३–१९ (छिप गया या छिपा हुआ है)
भूतकालिक वर्तमान
दिन सूर निस चाँद छपाना २३–२७ ,,
इहै रूप तौ अहै छपाना ३८–१ (छिपा हुआ है) वर्तमान काल
मृगमद ना रे छपाई ३८–२८ (नहीं छिपता) वर्तमान काल
बौरी पेम को छपै छपाये ६२–१५ (छिपाये छिपना) वर्तमान काल
रात पटोर जे सबै छपावा ११६–२७ (छिपा लिया) भूत काल
५ सबै पटोर पेन्हाये १८–२२ (पहिनाया)
६ औ जो बोल कुँअर औरावा ०९–०४ (दुहराया, अभ्यास किया)
पिंगल कोक कंठ औरावा १९–१४
तब जो कुंवर सरो औराई १९–२१
७ नींद पीरम सुख बिधनै सिरी २२--१२ (सृष्टि की, रचा)
ये दुख सिरा अनूप २४--५
अस कपोध बिध सीर सोहाये २८--२३
जो बिधि सिरा जुवा अनूपी ३१--२१
कैरे सिष्टि जग बाउर सिरेऊ ५१--८, ५९–१४
सिरी अमा पुनिव ससि सिंगारी १६--१६
८ जो जिअतै धै मार अंडारा २२--२२, (१२५--२७ फेंक देना)
इन्द्र धनुष दे पनच अंडारी २७–२३ ,,

कबहीं पेम घाव मारि अंडावै ४१--२०
बरु हम पूत अंडारहु मारी ५२-१
त्रिध बैस जनि जाहु अंडारी ५२-१
लहरि कुँअर के तीर अंडारा ५४--१८
तब बन लै कुँअर अडावा ४५--१
हाथहु ते जो रतन अंडाई ११६-१६
माय बाय हम जन्म अडारी १५६--६
उन्ह पूछहु गै कहाँ अंडायेन्हि १२४--२७
६ निसि अंध्यारी कुच मोकलाये २७--० [मुकुलित किये, उठाये]
बहुतै सीस केस मोकलाये ६४--३ [बिखराये हुये]
धी की जाति बिधि मोकलाई १११--१७
मुकुलत केस रही अंधियारी १०४-२४
१० कै मधुमालती चिकुर खिड़ारी २७-७ (कस कर बाँध लिये)
दिन एक कामिनि चिकुर खिड़ाये २७-६
११ पुनि धरती मों मारि लंडारी २७-२१ (मार कर गिरा देना)
कुँवरहिं तीर अचेत लंड़ाई ५४-१६
निमिख माँहि मोहिं मारि लडावै ६६-८

१२ सगबगाहिं परतख मनियारे २६-२३ (सकपकाते हैं, शंकायमान)
१३ देखत जा हिये सर निफरै २७-२६ आर पार हो जावे)
१४ देवता देखि कपोल तवाहीं २८-२४ (मूर्छा आना)
कवहुँ सीस धै कसै तँवाई १०३-१५
१५ अंग मरोरि अति जभुआनी ३२-१ (जम्हाई लिया)
१६ पुनि जो कुँवर देखु अँगिराई ३३-३ (अंगड़ाई लेकर)
अँगिराने भुअ डंड पसारे ५८-१७ अंगड़ाई लेकर)
१७ बकतैं लागि सोहागिन ३५-२५ (रो रो कर बोलना)
१८ मैं जिय दै तोर दुख बेसाहा ३६-१५ (मोल ले लिया)
१६ एहि रूप छहदरे जे माहीं ३७-२८ (छला)
२० सपत बाचा मोहि तोहिं किन्हारी ४०-१३ (चिन्ह)
२० उधसी माँग वेनि सिर छूटी ४२-६ (उदस गई, मिट गई)
२१ बोधसिस माँग औ पाटी १३३-१७
मेरवौं चाँद चकोर ४८-२१ (मिला दूँ, संयोग करा दूँ)

आनि मेरावौं सोइ ४८–२२ ,, ,,
दुख उदास बैराग मेराऊ ५५–६ [मिलाप]
काहे न मेरवहु जो जेहि राता ७५–२ [मिला देते हो]
दिहे मेरै मधुमालती ७६–१६ [मिला दिया)
धै मेरवौं माटी ७८–१८ [पकड़ कर मिला दूँ]

२२ अजहूँ जीवन कली न मोली ५८–२० [प्रस्फुटित हुई]

२३ को बेगरावै पार ३८–२६ [पृथक पृथक करना]
डरना आपुस मो बेगराहीं ६४–१४
जो विधि बेगराये ७०–१४
अस बेगरा जनी १०३–२८
जिन्ह जिउ ते काया बेगराई ११५–२३, ११६–१३

२४ पापी जिय निकसै ना जाई [निकल जाना] ६४–२३

२५ देखि बदन चित उठा छाहाई ६६–१३ [११५–१२] [मोह आ गया]

२६ मकहुँ आज बितीतू राती ६६–१० [व्यतीत हुई]

२७ निससत बात कहना नहिं पावे ६७–३ [निकलती हुई]
बाँझि रहे ना निसरैं ७०–१२ [नहीं निकलते]
निससत कह सुन राजकुमारे ६८–१३ [निकलगे]
निससत कहो ऊँभि के सांसा ७७–१५ [निकलती है]
निसरीं सबै सकात ६–४७७ [निकलीं]
जेहि दुख ते निसरे एहि भेसा ६८–१७ [निकल पड़े]
निसरै देउ न तोहिं ६८–१६ [निकलनें]
प्रेम अगिनि निसरी बौराई १११–८ [निकली]

२८ जौ न मोहिं पतीजसि बारी ६२–१७ [विश्वास करना]

२६ बाँझि रहे ना निसरैं ७०–१२ [बंधे हुये, फँसे हुये]

३० खुरकहिं बारम्बार ७०–१२ [आहट करना]

३१ मोहिं सहस नयन रकत तिसाई ७०–८ [कड़ू लगना]
मो रकत तिसाये ६६–२२

३२ निज यह खोरि न खूँदैं काऊ ७२–१३ [कुचलना, पाँव रखना]
खूँदैं कुँअर रूप परिछाहीं ७५–१०

३३ आई उफर एक कन्या मोरे ७६–१० (जन्म लेना)

३४ रोई घालि डफारि १५२–१६, ६२–२६ [गला फाड़कर]

जानहु दसन डंफोरत खाला १०४-२३
देखि डुँफोरि जो रोई ६२-२७ ८८६-८२
३५ बरकै पेम कंठ छोड़ावा ६२-२७ (अलग होकर]
३६ हरकी औ परबोधि समुझावा ६२-२७ (मना करके)
३७ एक मूठि सौं खांड पवारा २८-१० (फेंक दिया)
मारेसि चक्र पबारि ८२-१२
चाक रिसाइ पबारा ८२-१३
३८ जीउ समुझि घर पैसा जीऊ ३५-२२ (भीतर घुसा)
तब फिर हम जिउ पैसा आई ३७-८
सहज भाव चित पैसा आई ५८-१६
काहू डर जो चाहहिं पैसे ६३-१५
मुँह पैसे धावैं ६३-२१
चित्रसारि गै पैठी ६३-२६
धरती महँ पैसि समाई ७७-१३
३९ भौंत भौंत मैं आवा ५६-२४ (घूमते घूमते)
सखी साथ बारी मैं आवौं ६१-५, १०३-१७ (घूम आऊँ)
जो जियतै धै मार अंडारी २२-२२ [मारकर फेंक देना]
४० केहि सराप धरनी धै डारी ५८-७
जनु सुरपुर धै आनि बसावा ६८-२८
धै मेरवौं माटी ७८-१८
४० दुखी लोग बैसाइ जेंवावा १८-२१ [बैठाकर]
पंडित के बैसारेउ राऊ १९-७ [बैठाया]
आपनि ठाँव राज बैसावा २०-१६ [११७-२]
अमिय छिरकि बैसारेउँ ३६-१२
मैं आपन चित बैसा खोई ५१-२० [खो बैठा]
बैसा गोरख भेस ५३-१४ [बैठ गया]
बैस साधि जे मौन ५५-१९ ,,
सेज नियर भै बैसा जाई ५८-१४ [जाकर बैठ गया]
चूँबि कोर बैसाई ६१-४ (बैठाया]
तैं पुनि बैसि निमिख एकु ६६-५ [बैठो]
जो बैसा जिउ जोबन खोई ७२-६ [बैठ गया]

जेहि धरा बैसाइ ७९--१८ [पकड़कर बैठाया]
बैसहु चित्त संभार ९५-४ [बैठो]
बैसी सभा पसरी जेवनारा १४६-१२ [बैठ गई]

४२ तुइ बैसहु मैं उन्ह धौरावौं ०२-० [दौड़ाऊँ]

४३ ते खेलत उन्ह बरज न कोऊ १०२--३ [मना करना]
मधुरा बरजि रही बहु भाँती १०२--८
बरज न माने गो चित्रसारी १०२- ९

४४ अनबेधे मुकुताहल नीरिअ १०८--१६ [सामने डाल देना]

४५ आपु बँझाई जाल महुँ १०८ -१९ [बंधवा देना, फँस जाना]
पंछी बाँझतौ ब्याधा धाये १०९--८
सकति आपु तुअ जाल बझायेउ १११--१४ ,,
जौ जिमि ताराचन्द बझाई ११९- २३ ,,

४६ कतहुं रीझ लोटै महुराने १३८--२३ [विषाक्त होकर]
बहुत मुये माहुर महुराये १३९--३ ,,

४७ बीरहिं मारि लतारे १४४--१८

४८ जो धै बाँह उलारैं संगा १५१--१८ [लेटाना]

३—जाब (जाना)

क्रिया के विविध रूप

१ जोय न जा किछु उपमा लाये २८–२३
बरनि न जा जे उपमा लाई २९–१३
उनही जा बिसंभार ४४–६
संयुक्त क्रिया के रूप में, जोय नजाना, बरनि न जाना, आदि (वर्तमान काल)

२ जाके जग गा दुर ओतारा ८–२२ दुर जाना आदि [भूत काल]
अबहिं नींद गा उठि जागेउँ ३४–२० उठ जाना
जागे जीव धरम गा जागी ३९–२८ (भूतकाल)
दहु को गा मोहिं मार ४३–से २१
प्रीति लाइ मोहिं गा अहेलो ४४–८ (भूतकाल)
मन अरुझा गा तेहिं ठाइं ४५–१७
हरख अनंद रहस गा धाईं ४६–१४
मंत्र सकति सौं गा बहुरावौं ४९–१
कुँकुभारि गा भागि ८०–२६
एहि बिधि गा रैनि तुलानी ८०–२७
गा सो भरम जा चित मों अहा ८४–७

३ राजकुँवरि गै सखी जगाई ४३–८ (गई, जाकर)
जीव भैउगै परबस मोरा ५०–१४ [हो गया] भूत काल
तिल पर दिष्टि जो गै परी ७०–७ [पर गई]

४ कौंल कमल जल बूड़ न गये ६७–१८
मुह काला कै बन गई ५७–२१

५ दिष्टि पन्थ गौ हिये समानी २८–८ [भूत काल]
जानहु रसिक गौ रति मानी ४३–४
बदन फूल जस गौ कुँभिलाई ४५–१०
प्रान पीतम संग गौ ८५–२०

जिव लै गौ सो प्रान पियारी ४६–१०
धाई हर्ष आनन्दगो ४६–१०
चित गयन्द गौ फेरिन आना ५०–१५
कर सौं गौ करुआरि ५०--१६
फाटि गौ छाती ६७–१२
रस बातन्ह गौ दुओ भुलाई ७८–२१
बान हिये गौ लागि ८०–२५
कया प्रान परिहरि गौ भागी ८२–२४
एक निमिख मैं गौ तहाँ १०२–६
देखि न गा जो दुख भारी ११६–१०
वाह घर गौ येह इहाँ अँडारी १०६--०७
मिलि जा हो निरबाहि ११६--१६

दस

४—होब = (होना)

क्रिया के विविध रूप

१	औ जत अरिजन है मोरा ८८--८	वर्तमानकाल
	देखौ बोलति है कोह हाला ९२--७	,,
	ध्यान धरती है बारी ९४--६	,,
	सपत है तोरी	,,
	है निलज्जु तुह कानि न मानै १०२-१६	,,
	मधुमालती पेमा हैं जहाँ १०२--१६	,,
	नग्र लोग हौ अनन्द बधावा २०—१०	,,
	सीखति हौ जो नैन धुताई ६२—८	,,
	पूछति हौं कछु आपनि भावा ६५—२८	,,
	हम हहिं सब संसार बिनाना २३—१४	,,
	कत छाँडत हहु मोर दुवारे १४०—२४	,,
	आपुन हहिं बसे ८६—१२	,,
	पूछेसि नैन तैं देखे हाह ११५—८	,,
	मेरवौं ताहि जाहि हहि राता ४८—१७	,,
	उर हस अभिमान ४६—१८	,,
	माया रूप धरे हसि फेरी ५८—६	,,
	जौं तैं हंसि संघाती मोरा ११२—१५	,,
	को हसि मानुस भूत बैतारा ५८—२५	,,
	रूप धरे हसि डाइनि ५६-२५	,,
२	कै तोहिं आह प्रीतम मदमाता ५६—६	,,
	पेमा आहि जे राजदुलारो ८६—८	,,
	बूड़ा राजपाट जत आहा ५४—७	,,
	दीपत पेम जो माथे आहा ४२—२	,,
	अरुझा फाँद पेम कर आहा ३७—२५	,,

जग उपखान जो कहियत आहा ८६-१७ ,,
साबर लगुना रोभ जे आह १२८-६१ भूतकाल
को आहहि तैं देव कुमारा ३३-६, ६०-२० ,,
राज साज बूड़ा जत अहा ३४-२२ ,,
सुना जहाँ लगि अहा ६६-६ ,,
गा सो भरम जो चित मों अहा ८४-१ ,,
और अहै जे अरथ भंडारा ५५-२३ वर्तमान काल
कफ पित बात अहै बिकरारा ४८-८ ,,
सुख दिन जे अहै ३ -२७ भूत काल
तुह जिउ लागि अहैं एइ दोऊ १५६-१ वर्तमान काल
माता पिता कर एतनै अहई १५६-३ ,,
रूप मंजरी बैसो अही १०१-१५ भूत काल
और जे अहे सब राज अथाई २२-५ ,,
मैं आहौं परदेसि बटाऊ ५६-२१, २२ वर्तमान काल
परा अहौं बिसंभार ५४-२० ,,
मकु डाइनि आहै एहि ठाईं ५६-१३ ,,
सुर नर नाग जहाँ लगि आहीं ४-१ ,,

३ जमु था जम रहै ३-११ भूत काल
जोबन था मोहिं लुहलुहा १२२-१२ ,,
छाँडेहु अर्थ दर्ब जत आथी १०६-१६ ,,

४ चलि आई जहाँ होती बारा १२४ १७ ,,
रानी राय बैठ होत जहाँ ११५-२
पूरब जात होत गंग नहाई १६२-२८
कहा बात जो हुत ठानी ११८-१५
सखी एक गइ हुते दुवारे १४०-१३
जौ सरीर हुती दूर १२३-१६
पेम हुती जो रकत तिसाये २८-२७
हुती जो आपु मो परिचे ३७-२६
गई हुती मधुमालती पाई ११६-२०
हती जौ दुख कै देही ११६-१६
कै रे बिरह दुख हते मलीना १०३-८

हती जो बारि अयानि १०५–४

५ बारह बरिस भा सेवा तुम्हारी १६–१२ भूत काल = हुआ
भा कुँअर सयाना ११–१५
आवत कुँअर ठाढ़ भा राऊ–२०–१५
जगत भा अंधकाल २७–४
जाके भा सो जान ५६–१२
भा भिनुसार ५७–१
राकस बेर नियर भा आई ७८–२१
चक्रित भा जिय माँहि ७८–२

६	रूप भै खेला ४–५	पूर्वकालिक क्रिया = है, होकर
	राकुँअर भै आव संजोगू १६–६	,,
	सहज भाव भै जीव समाना २६–४	,,
	सन्मुख भै केलि जो करहीं २८–३	,,
	मौन भै बकतै बानी ७२–१६	,,
	पाँचौ तत एक भै जैहहिं ७२–२३	,,
	जीव भै जाहीं ७२–२४	,,
	कया रूप भै प्रगट देखाहीं ७२–२४	,,
७	आदि न भौ अन्त न आही ४–१६	भूत काल = था
	बरहे दिन बरहे भौ भारो १८–२०	,, = हुआ
	रुधिर करेज औटि भौ पानी २८–८	,, = हो गया
	सब भौ जगत मीठ बोला २९–२२	,, =
	सजग भौ म्रिग चहुँदिसि हेरा ३३–२	,, =
	भरमित भौ जो बरनारी ३३–४	,, = हुई
	निरभै भौ तजि कहसि न बाता ३६–७	,, = भय छोड़कर अपवाद
	कैसे सिस्टि भौ मानुस करा ६५–२३	,, = हुई

—::o::—